अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

ॐ

आमुख

अपार उलझनों को सुलझाते हुए, 'विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना.' की उक्ति को पचाते हुए 'संगीतांजलि' का छठा भाग इष्टदेव श्रीराघवेन्द्र के कृपा-प्रसाद का प्रकाश पा रहा है।

श्रद्धेय गुरुदेव पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के अमर आत्मा की असीम आशीष और महर्षि भरत की निगूढ़ प्रेरणा से यह ग्रन्थ ग्रथित होकर विश्व के सामने अवतरित हो रहा है। साथ ही जिनके घोर परिश्रम, आत्मसंयम और गुरुसेवा की भावना से इसका प्रकाशन संभव हो सका है, वह मेरी नितान्त प्रिय छात्रा चि० डा० प्रेमलता शर्मा भी मेरे अन्य प्रकाशनों की भाँति इस प्रकाशन के श्रेय की अधिकारिणी हैं। मुझ जैसे गुरु के कठोर विनयन (discipline) का परिपालन, एक बार लिखे हुए को पुनः-पुनः संशोधित, परिवर्तित, परिवर्द्धित कराने की मेरी प्रवृत्ति में शिष्यजनोचित सहयोग— ये असाधारण गुण मैंने इनमें पाए हैं। इतने दीर्घ काल के सहकार से अब मुझ में और उनमें इतना तादात्म्य-भाव स्थापित हो गया है कि विचार और वाणी में, भाव और भाषा में संपूर्ण अभिन्नता आ गई है। अतः मैं अब विश्वासपूर्वक अपने सारे अनुसन्धानकार्यों की विरासत उन्हें सौंप कर निश्चिन्त होता हूँ। मेरे जीवन के पश्चात् जो भी कार्य शेष रहेगा उसे वे शास्त्रीय सिद्धान्त-पक्ष को अविचल बनाए रखते हुए, सफलतापूर्वक पूर्ण कर सकेंगी और मेरे जीवन-कार्य को व्यापक तथा समृद्ध बना सकेंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अब भविष्य के प्रकाशन मेरे ही नाम से न होकर युग्म-नाम से होंगे, यह घोषित करते हुए मैं अपार आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। यद्यपि इनकी निष्काम गुरुभक्ति और अवैतनिक सेवा भावना के कारण आज तक कभी मेरी ओर से इस प्रकार के प्रस्ताव का प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ, तथापि अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझसे जो ज्ञान, विद्या और मेरे कार्य में योगदान से जो योग्यता इन्होंने अर्जित की है, उसके लिए उचित श्रेय भी इन्हें मेरी ओर से आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त हो। अतः आगामी प्रकाशन विषयक उपर्युक्त घोषणा में अपने गुरुपद की पूर्णता मान कर मैं असीम आत्म-तुष्टि का अनुभव कर रहा हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय में पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध प्रकाशन का यह छठा पुष्प है जिसमें बी० म्यूज़, (संगीतालंकार) के पाठ्यक्रम की पूर्णता होती है।

इस ग्रन्थमाला के अन्य भागों की भाँति यह भाग भी दो खण्डों में विभक्त है—प्रथम खण्ड में शास्त्रीय विवेचना और द्वितीय खण्ड में क्रियात्मक (Practical) पाठ्यक्रम के नौ रागों से सम्बन्धित विषय रखे गये हैं। द्वितीय खण्ड बहुत पहले मुद्रित हो चुका था और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा विद्यार्थी उससे लाभ भी उठाते रहे। किन्तु प्रथम खण्ड के पूर्ण होने में नाना विघ्न-बाधाओं के कारण इस ग्रन्थ का प्रकाशन दीर्घ काल तक टलता रहा। कुछ अनिवार्य कारणों से इसमें 'परिशिष्ट' का समावेश नहीं किया जा सका है।

हमें यह कहते हुए नितान्त हर्ष होता है कि यह ग्रन्थमाला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय के विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि तथा क्रम-विकास का साधन बनने तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु भिन्न २ परंपराओं के कलाकार, विभिन्न संस्थाओं के अध्यापक तथा विद्यार्थी एवं सामान्य संगीतानुरागी भी इससे विपुल मात्रा में लाभ उठा रहे हैं। इतना ही नहीं, अन्य पक्षावलम्बियों ने भी इन ग्रन्थों द्वारा प्रसारित सत्य के आलोक के सामने अपने पक्ष के आग्रह को त्याग कर इनका स्वागत किया है। इनकी उपयोगिता की इस स्वीकृति के लिए हम सभी के आभारी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के शास्त्रीय खण्ड में मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'जाति' तथा राग-वर्गीकरण है। स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना आदि विषयों का विशद निरूपण 'संगीताञ्जलि' के प्रथम पाँच खण्डों में किया जा चुका है। भरतादि प्राचीन ऋषियों ने इन विषयों का जो प्रतिपादन किया था, वह कालक्रम से नितान्त दुरूह हो गया था, और उसकी जटिलता के कारण उसे आधुनिक लक्ष्य से अतीत मान लिया गया था। किन्तु उन्हीं भरतादि ऋषियों की कृपा और प्रेरणा से उन सब विषयों को स्पष्ट और सुलझे हुए ढंग से इस ग्रन्थमाला में प्रस्तुत करके आधुनिक लक्ष्य का प्राचीन परम्परा के साथ अटूट सबन्ध स्थापित किया जा सका है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विशिष्ट 'स्वर-सन्निवेश' के रूप में 'जाति' और 'राग' का परस्पर सम्बन्ध, 'जाति' का स्वरूप, राग और राग वर्गीकरण का ऐतिहासिक विवेचन तथा भिन्न २ राग वर्गीकरण पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन—ये विषय लिये गये हैं। पञ्चम भाग में 'संगीत के शास्त्र ग्रन्थों का ग्रन्थ परिचय' शीर्षक के अन्तर्गत जो सामग्री प्रस्तुत की गई थी, उस में आधुनिक युग के ग्रन्थों का विवरण नहीं था और प्रस्तुत भाग में वह विवरण देने की योजना थी। किन्तु अनिवार्य कारणों से उसका समावेश आगामी भाग के प्रकाशन तक स्थगित करना पड़ा है।

'जाति' के प्राचीन ग्रन्थोक्त विवरण को स्पष्ट करने में, सुलझाने में, आज के लक्ष्य की भाषा में उसे प्रत्यक्ष प्रतीतिगोचर बनाने में हमें अपार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। 'जाति' के विषय—प्रतिपादन की दृष्टि से, मतंग के परवर्ती ग्रन्थकारों (शार्ङ्गदेव से लेकर आधुनिक युग तक के संगीत ग्रन्थ लेखक) को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—एक वे जिन्होंने भरत अथवा मतंग के जाति विवरण को ज्यों का त्यों, किसी टीका टिप्पणी या स्पष्टीकरण के बिना, उतार लिया है और दूसरे वे जिन्होंने इस विषय को छुआ ही नहीं है। इस परिस्थिति में आधुनिक काल के अनुसन्धान-कर्त्ता को भरत मतंग के बाद 'जाति' के विषय में कोई मार्गदर्शन या परम्परागत सूत्र उपलब्ध नहीं होता। इसलिए आज दो ही मार्ग सुलभ हैं कि या तो गतानुगतिक भाव से अन्य ग्रन्थोक्त विवरण जैसा का तैसा उद्धृत करने में अथवा उसका भाषान्तर प्रस्तुत कर देने मात्र में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लें और या फिर इस विषय को out of date (प्रचारातीत) कह कर इसके संबन्ध में मौन सेवन करें। किन्तु हमें इन सुगम मार्गों का अवलम्बन न ले कर बीहड़ और कण्टकाकीर्ण पथ चुनना पड़ा है तथा उलझी हुई ग्रुत्थियों को सुलझाने में वर्षों का कठोर परिश्रम करना पड़ा है। तात्कालिक विफलताओं के अनन्त अवसाद तक वितर्कों के थपेड़े, स्वयं किये गये निर्णयों में पुनः पुनः शंका और स्वयं उत्थापित शंकाओं के समाधान में मुहुर्मुहुः यत्न —इन सब कारणों से इस विषय को लेखबद्ध करने में हमें दीर्घकाल अतिवाहित करना पड़ा है। इतना करने पर भी अभी हमने 'इदमित्थं' कह कर किसी बात को 'अन्तिम' नहीं बताया है और अपने यत्नों की 'इति' नहीं की है। जो भी सुलझनें जैसी भी उपलब्ध हुई हैं, उन्हें भिन्न २ विकल्पों के रूप में प्रस्तुत किया है। अनुसन्धान-कर्त्ता इन दिशाओं में आगे भी विचार कर सकते हैं। जितना भी यत्न सुष्ठु, सम्पूर्ण और सुसंगत होगा, उनके प्रतिपादित सिद्धान्तों को विद्वज्जन अवश्य स्वीकार करेंगे। हमारी ओर से इस विषय की विविध उलझनों, ग्रुत्थियों का यथावत् निरूपण तथा उन्हें सुलझाने का कुछ दिशासूचन—ये दो कार्य यदि विद्वज्जन सम्पन्न हुए समझेंगे तो हम अपनी साधना को सार्थक मानेंगे।

'जातिगान' के 'पुनरुद्धार' की बात आजकल कहीं २ सुनने में आती है। 'पुनरुद्धार' के नाम पर ... कलाकारों एवं सामान्य जनता की अबोधावस्था का लाभ उठा कर, स्वकल्पित बातों को भरतादि प्राचीनों के 'सिद्धान्त' के रूप में प्रचारित किया जाना भी देखने में आ रहा है। हम स्वर-श्रुति-ग्राम-मूर्च्छना का अविच्छेद्य सम्बन्ध ... प्रतिपादित कर चुके हैं, उन्हीं की आधारभूमि पर, विशिष्ट स्वर-सन्निवेशों के निर्माण की दिशा में 'जाति' का आविर्भाव हुआ और उसी का 'राग' के रूप में विकास हुआ। अतः 'जाति' की परम्परा 'राग' के रूप में विकसित होकर आज हमारे संगीत में पूर्णरूप से सजीव है, उसे किसी 'पुनरुद्धार' की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि 'जाति' के वास्तव स्वरूप को समझ कर हम उसमें निहित 'रागों के जनकत्व' को भलीभाँति पहचान सकें, उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति पा सकें और भरत के 'यत्किञ्चिद् गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्' —इस वचन की सार्थकता को आत्मसात् कर सकें। जाति गान के 'पुनरुद्धार' की दुहाई दे कर आत्म प्रचार करने से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

'राग' के विकास का संक्षिप्त इतिहास दे कर हमने मतंग से लेकर आधुनिक काल तक प्रचार में आई प्रमुख राग-वर्गीकरण-पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। साथ ही आधुनिक लक्ष्यगत रागों के शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए एक सुसंगत, पूर्ण और वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता की ओर भी संकेत किया है। यह अपेक्षित वर्गीकरण-प्रणाली हम 'प्रणव-भारती' के द्वितीय भाग (रागशास्त्र) में प्रस्तुत करेंगे।

द्वितीय (क्रियात्मक) खण्ड के विषय में दो शब्द। प्रस्तुत कक्षा के विद्यार्थियों के लिए 'राग' के स्वतन्त्र विकास का अनिवार्य महत्त्व है। इसके लिए मुक्त आलाप-तानों की विशेष उपयोगिता है। राग का नियमबद्ध ढाँचा तथा उसके अन्तर्गत स्वतन्त्र विन्यास का मार्गदर्शन—अभ्यासी विद्यार्थी को इन दोनों का बोध देना, यही मुक्त आलापतानों का प्रयोजन है। तालबद्ध आलापतानों को इस कक्षा में स्थान नहीं है, फिर भी तालबद्ध तानों के विभिन्न उठान और मुखड़े पकड़ने के विभिन्न प्रकारों के बारे में मार्गदर्शन कराने के उद्देश्य से कुछ तालबद्ध तानों का समावेश किया गया है। इस पूरी सामग्री से शिक्षक तथा विद्यार्थी लाभ उठाएंगे ऐसा विश्वास है। भिन्न २ तालों और भिन्न-भिन्न लय विभागों में इन मुक्त आलाप-तानों के आधार पर स्वतन्त्र विकास करने में प्रस्तुत कक्षा के विद्यार्थी कोई कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे ऐसी आशा है।

राग विवरणों में स्वरों के सूक्ष्म भेदों के लिए तीव्रतर, अतिकोमल आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। उन्हें समझने के लिए पाठक कृपया स्वर-संज्ञाओं की सारिणी देख लें।

इस ग्रन्थ-माला के आगामी दो भागों में एम० म्यूज० (संगीताचार्य) का पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जाएगा। उक्त पाठ्यक्रम में अनेक अप्रचलित रागों का भी समावेश है। इन भागों के प्रकाशन के पूर्व प्रणव भारती के द्वितीय भाग (राग शास्त्र) का शीघ्र ही प्रकाशन करने का विचार है।

प्रथम खण्ड तारा प्रेस, वाराणसी में और द्वितीय खण्ड सरला प्रेस, वाराणसी में मुद्रित हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अत्यधिक विलम्ब के अनेक कारण हैं जिनमें सरला प्रेस की शिथिलता का प्रमुख स्थान है। फिर भी दोनों प्रेसों के संचालकों तथा कर्मचारियों को हम धन्यवाद देते हैं।

लंका, वाराणसी
शनिवार, पौषी पूर्णिमा
वि० सं० २०१८,
२० जनवरी, १९६२ ई०

निवेदक—
ओम्कारनाथ ठाकुर

अकारादि क्रम से गीत सूची

संगीतलिपि चिन्ह परिचय

१—त्रिस्थान के चिन्ह

सरिगम मध्य स्थान
सरिगम मन्द्र ,,
संरिं मं तार ,,

२—विकृत (कोमल तीव्र) स्वर—रि, म

३—कण या स्पर्श स्वर सा रि नि स

४—आन्दोलन या कम्प*—ध॒

५—मीड—सां प

६—ताल के स्तम्भ—मोटी खड़ी रेखा ताल के विभाग स्तम्भ को दिखाती है और पतली रेखा एक मात्रा की अवधि को। यथा—

| स रि | ग | म | प | ध | नि | सां |

एक मात्रा के स्तम्भ में जितने भी स्वर लिखे हों, उनकी संख्यानुसार वहाँ लय की गति समझकर उच्चार करना होगा जैसे—यदि एक, दो, तीन, चार, छः, आठ, बारह व सोलह स्वर एक मात्रा के स्तम्भ में लिखे हों तो क्रमशः १, ½, ⅓, ¼, ⅙, ⅛, १/१२, १/१६ लय विभाग समझना होगा। इसमें भी एक मात्रा के अन्तर्गत भिन्न भिन्न स्वरों अथवा गीत के अक्षरों का लय विभागानुसार मात्रांश-मूल्य समझने के लिए (—) तथा (‿ या ⌣) चिन्हों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे—

स रि – ग	म – प रि	ग – ग	ग – म प – प
¼ ¼ ½	½ ¼ ¼	½ ½	⅓ ⅙ ⅓ ⅙
गरि म म प	रि ग मग ध	गम पध नि	म प ध निसा
⅛ ⅛ ¼ ¼ ¼	¼ ¼ ⅛ ⅛ ¼	⅙ ⅙ ⅙ ⅙ ⅓	¼ ¼ ¼ ⅛ ⅛

*प्रस्तुत ग्रंथ के दो खण्ड दो प्रेसों में मुद्रित होने से आन्दोलन का चिह्न दोनों खण्डों में भिन्न २ लगा है। प्रस्तुत चिह्न प्रथम खण्ड का है। द्वितीय खण्ड में अन्य भाषा की भांति वक्ररेखाकार चिह्न लगा है।

ऊपर जहाँ जहाँ ‿) का उपयोग हुआ है वहाँ उस ब्रेकेट के अन्तर्गत दोनों स्वरों का एकत्र मूल्य तो $\frac{१}{४}$ ही है, परन्तु एक एक स्वर का पृथक् मूल्य $\frac{१}{८}$ है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

७—सम—×

८—खाली—०

९—ताली—जहाँ ताली है वहाँ ताल के उस उस विभाग की मात्रा संख्या निर्दिष्ट की गई है। जैसे त्रिताल में दूसरी ताली के लिए ५ और तीसरी ताली के लिए १३ की संख्या रखी गई है।

१०—एक ही स्वर के दीर्घोच्चार के लिए अवग्रह ऽ का प्रयोग किया गया है। इस अवग्रह का मात्रा-मूल्य तो उस मात्रा के विभाजन पर निर्भर रहता है।

११—गीत के एक ही अक्षर का जहाँ दीर्घोच्चार करना हो, अथच स्वरों में परिवर्तन होता हो, वहाँ उन स्वरों के नीचे अवग्रह के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग किया गया है। यथा —

प ध नि सा
का ० ० ०

सूक्ष्म स्वर नामों की तालिका

श्रुति संख्या	
१	कोमल निषाद
२	शुद्ध निषाद
३	तीव्र निषाद
४	षड्ज
५	अतिकोमल ऋषभ
६	कोमल ऋषभ
७	त्रिश्रुति (हंसाभिन) ऋषभ
८	शुद्ध ऋषभ
९	अतिकोमल गान्धार
१	कोमल गान्धार
११	शुद्ध गान्धार
१२	तीव्र गान्धार
१३	शुद्ध मध्यम
१४	तीव्र मध्यम
१५	तीव्रतर मध्यम
१६	तीव्रतम मध्यम
१७	पञ्चम
१८	अतिकोमल धैवत
१९	कोमल धैवत
२०	शुद्ध धैवत
२१	चतुःश्रुति धैवत
२२	अतिकोमल निषाद

शुद्धिपत्र तथा परिशिष्ट

पृ० ६७ तथा ६८ पर मतंग के देशी राग-वर्गीकरण के सम्बन्ध में जो उल्लेख है उसे कृपया निम्नलिखित संशोधन तथा परिवर्द्धन के साथ पढ़ें ।

शुद्धा, भिन्ना, गौडी, राग, साधारणी—इन पांच गीतियों के अन्तर्गत ग्राम राग कहने के बाद मतंग ने ग्रंथ निभाया का प्रकरण पूर्ण करके 'अत परं प्रवक्ष्यामि देशीरागकदम्बकम्'—यह कह कर 'देशी-राग' के निरूपण की प्रतिज्ञा की है। किन्तु ग्रंथ का यह अंश मुद्रित सम्करण में बहुत ही खण्डित अवस्था में है। वेलावली, माङ्गाली, हम्मालिका, पुलिन्दिका, षणांगी—इत्यादि कुछेक संज्ञाएं और उनके छिन्न भिन्न लक्षण—यही सामग्री पृ० १४१ पर 'देशी राग' के सम्बन्ध में उपलब्ध होती है। किन्तु संगीत रत्नाकर २।२।१, २ की टीका में कल्लिनाथ ने मतंग का जो उद्धरण दिया है उससे स्पष्ट होता है कि मतंग ने रागाङ्ग, भाषाङ्ग और क्रियाङ्ग—इन तीन के अन्तर्गत देशी रागों का विभाजन किया है और शार्ङ्गदेव ने इन तीन के अतिरिक्त 'उपाङ्ग' के रूप में जो चौथा वर्गीकरण समूह स्वीकार किया है, उसका मतंग ने रागाङ्ग में ही अन्तर्भाव कर दिया है।

× × ×

मतंग का काल आज सामान्य रूप से छठी-सातवीं शताब्दी ई० के आसपास माना जाता है, किन्तु 'मतङ्ग' एक पौराणिक नाम है और इसकी पौराणिकता के प्रकाश में इसकी ऐतिहासिकता पुनः विचारणीय है। वाल्मीकि रामायण (आर० स० ७३।२८, २६), रघुवंश (स० ५ श्लो० ५३ ५५) तथा महाभारत (सभा० अ० ८ श्लो० २६) में जिन मतङ्ग मुनि का उल्लेख है उनका 'बृहद्देशी' के रचयिता मतङ्ग के साथ क्या सम्बन्ध रहा होगा यह अनुसंधान का विषय है। इसका संकेतमात्र ही यहां सम्भव है।

ॐ

समर्पण-पत्र

छोटी माँ

श्रीमती मंजुलाबहन चन्द्रशंकर (उर्फ नानी भाई) दवे

अपनी धर्मपत्नी के निधन के वज्राघात से प्रपीडित, रोगग्रस्त आत्माओं से आतङ्कित जन्मदात्री के रहते हुए भी मातृ-वात्सल्य से वञ्चित एवं एक सात्विक स्नेह के लिए हुए बचन की पराङ्मुखता से दुःखित होने के अवसर पर जिन्होंने मुझे अपनी छाया प्रदान की जगत् की निन्दा प्रशंसा सुन कर, सह कर निगल कर, मुझे शान्ति प्रदान की ऐसी—

'या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता' 'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'

—मेरी 'छोटी बहन' के वात्सल्य को नमस्कार सह यह ग्रन्थ समर्पित है।

प्रथम खंड

(शास्त्रीय विवेचन)

॥ॐ॥

जाति

मूर्च्छना-प्रकरण[1] के बाद भरत ने जाति का निरूपण किया है। स्वर, श्रुति, ग्राम और मूर्च्छना के बाद 'जाति' को जान लेना क्रमप्राप्त ही है। भरत के काल में जो गान-क्रिया प्रचलित होगी, जिस प्रकार के गीत-प्रयोग नाट्य में व्यवहृत होंगे, वे सब प्रयोग नाट्यशास्त्र में जाति के अन्तर्गत विभाजित किए गए हैं। जिस प्रकार पाणिनि ने अपने 'शब्दानुशासन' में संस्कृत भाषा के अन्तर्गत भारत के विभिन्न प्रदेशों में बोली जानेवाली बोलियों के शब्दों का भी संग्रह (समावेश) किया है, तद्वत् भरत मुनि ने भी भारत और भारतेतर देश-प्रदेशों में जो विशेष स्वर-समूह प्रचार में होंगे, उन सबको एक ही जगह समाविष्ट करने के लिए और एक ही शास्त्र में नियमबद्ध करने के लिए जातियों का निरूपण किया है। यहाँ इस प्रकार का अनुमान भी हो आता है कि भारतीय और भारत के संपर्क में आई हुई भिन्न-भिन्न मानव-जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वररूप विशेष प्रचलित होंगे, उन्हीं स्वर-रूपों को शास्त्रीय रूप देते समय उन्हें जाति संज्ञा देना शायद उचित समझा होगा क्योंकि भिन्न-भिन्न मानव-जातियों से वे स्वरावलियाँ संबंधित रही होंगी।

भरत की अपनी दी हुई 'जाति' की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या उपलब्ध नहीं होती। फिर भी उस विषय पर मतंग के वचनों से जो प्रकाश पड़ता है वह निम्नोक्त है —

१. श्रुतिग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः —(बृहद्देशी पृ० ५१)

अर्थात्—श्रुति और ग्रह-स्वरादि के समूह से जो जन्म पाती हैं उन्हें 'जाति' कहा है।

अथवा—

२. यस्माज्जायते रसप्रतीतिरारभ्यते इति जातयः —

अर्थात्—जिससे रसप्रतीति की उत्पत्ति अथवा आरंभ हो उसे जाति कहा है।

अथवा—

३. सकलरागादेर्जन्महेतुत्वात् जातय —

अर्थात्—सब रागों के जन्म का हेतु होने के कारण 'जाति' कहा गया है।

अथवा—

४. जातय इति जातय। यथा नराणां ब्राह्मणत्वाद्यो जातय —

अर्थात्—'जाति' शब्द का सामान्य अर्थ लिया गया, जैसे कि मनुष्यों में ब्राह्मणत्वादि जातियाँ होती हैं।

कल्लिनाथ द्वारा रचित 'संगीत रत्नाकर' की टीका में 'जाति सामान्य' के लिए इस प्रकार कहा है:—

यथायोगं ग्रामद्वयाज्जायन्त इति जातय। अत एवानित्यतया साकल्येन सामान्यरूपजातिलक्षणाभावेऽप्यनेकगोव्यक्तिषु अनुवृत्तत्वमात्रेण गोत्वादिवज्जातय इति वा। गीतजातं तस्योपरञ्जनं वाऽभ्यो जातय इति जातय इति वा।

[सं० र० १।७।१ कल्लिनाथी टीका]

---

१. मूर्च्छना-प्रकरण 'संगीताञ्जलि' पञ्चम भाग में द्रष्टव्य है।

अर्थात्—यथायोग दोनों ग्रामों से उत्पन्न होती हैं, अतः जाति कहलाती हैं। जिस वस्तु की उत्पत्ति हो, वह अनित्य ही होती है। अतः 'जाति' अनित्य है। अर्थात् संगीत-शास्त्रोक्त 'जाति' में 'सामान्य रूप जाति' का लक्षण नहीं घट सकता, क्योंकि 'जाति-सामान्य' तो नित्य होती है। फिर भी अनेक गेय व्यक्तियों में (अर्थात् पृथक्-पृथक् गीत-प्रकारों में) अनुवृत्त होने के कारण अनेक गो-व्यक्तियों में अनुवृत्त गोत्व की भाँति इन्हें भी 'जाति' कहा जाता है। अथवा गीतसमूह की या गीतोत्पत्ति की इनसे उत्पत्ति होती है, इसलिए ये 'जाति' कहलाती हैं।

नान्यदेव ने जाति के लिए इस प्रकार कहा है:—

रसभावप्रकृत्यादिविशेषप्रतिपत्तयः। जायन्ते जातिभिर्व्यक्ताः ………… ॥ [भरत कोष पृ० २२७]

अर्थात्—रस, भाव, प्रकृति आदि की विशेष प्रतिपत्ति जातियों से होती है।

अभिनवगुप्त ने जाति की व्याख्या इन शब्दों में की है:—

स्वरा एव विशिष्टा सन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयञ्च जनयन्तो जातिरित्युक्तः। कोऽसौ सन्निवेश इति चेत् जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः। (वही)

अर्थात् स्वर ही जब विशिष्ट बनकर और सन्निवेशगत होकर रंजकता और अदृष्ट अभ्युदय* को उत्पन्न करते हैं, तब वे जाति कहलाते हैं। सन्निवेश से क्या समझा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि दश 'जाति' लक्षणों से 'सन्निवेश' बनता है।

'जाति' की व्याख्याएँ हमने पढ़ीं। जाति को रागों की जननी कहा गया है। इस उल्लेख से यह प्रश्न उद्भूत होता है कि भरत-काल में रागों का प्रचार था या नहीं ?

भरत-काल में राग

'अंश' स्वर के दश लक्षण देते समय भरत ने 'राग' शब्द का प्रयोग अवश्य किया है; यथा :—

यस्मिन्वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्तते। [ना० शा० २८।७२]

किंतु इतने उल्लेख मात्र से ऐसा नहीं हो कह सकते कि भरत के नाट्यशास्त्र में राग का निरूपण है, क्योंकि यहां 'राग' शब्द स्पष्टरूप से रञ्जकता के लिए प्रयुक्त हुआ है। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऊपर उद्धृत 'राग' शब्द का प्रयोग जाति के लक्षणों के प्रकरण में आया है और उस प्रकरण में रञ्जकता के सामान्य अर्थ के अतिरिक्त किसी अन्य विशेष अर्थ में 'राग' के प्रयोग का प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ है।

ऊपर के उद्धरण के अतिरिक्त भरत के निम्नोद्धृत वचन से कुछ लोगों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि भरत ने कुछेक कालरागों का नामोल्लेख किया है,—

नाट्यशास्त्र (चौखम्बासंस्करण)	निर्णयसागर संस्करण
पूर्वरंगविधाने [illegible] कर्तव्यो गानजो विधिः।	…………………………………………।
देवपूजाधिकारस्तु तत्र संप्रकीर्तित ॥	……………………स च पूर्वं प्रकीर्तितः॥
ततश्च काव्यवस्तुषु नानाभावसमाश्रयम्।	…………………………………………॥

* शब्दसमन्वित संगीत में शब्द के अर्थानुसार मानव-वृत्तियों का और भावों का उतार-चढ़ाव या उत्थान-पतन जीवन [illegible] होता रहता है; केवल स्वर-लय-समन्वित संगीत सदैव ऊर्ध्वगामी ही होता है और मन, बुद्धि तथा आत्मा को सदैव उन्नत पथ पर आरूढ़ करता है। शब्द अपनी अभिधा शक्ति द्वारा स्थूल भूमिका को स्पर्श करते हैं और स्वर, लय की गति सूक्ष्म-देह या कारण-देह की गुहा तक है। इसीलिए जाति के स्वर-सन्निवेश को अदृष्टाभ्युदयकारक कहा है। हमारे अनजानपने में, हमारी उपचेतनावस्था (Sub-con-cious) में अथवा अचेतन (Unconscious) अवस्था में ही इन स्वर-सन्निवेशों द्वारा मन, बुद्धि और आत्मा का उत्कर्ष होता रहता है और उसी से 'अदृष्ट' अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

ग्रामद्वयं न कर्तव्यं साधारणाश्रयम् ।........ ......च ......यथा साधारणाश्रयम् ॥
मुखे तु मध्यमग्रामः षड्जं प्रतिमुखे स्मृतः । ....षड्ज. .... भवेत् ॥
साधारितं तथा गर्भेऽमर्शे कैशिकमध्यमः । .. ..विमर्शे चैव पञ्चमः ॥
कैशिकञ्च तथा कार्यं गानं निर्वहणे बुधैः । .. .. गाननिर्वहणे......... ॥
सन्धिवृत्ताश्रयञ्चैव रसभावसमन्विताः ।
यथा रसकृता याः स्युः ध्रुवाः प्रकरणाश्रयाः । तथा ... 'नित्यं ....प्रकरणाश्रिताः ॥
नक्षत्राणीव गगनं नाट्यमुद्योतयन्ति ताः । नक्षत्रैर......... ....॥
(ना० शा० ३२।४२१-२५) (ना० शा० ३२।४३२-३६)

अर्थात्—नाट्य के पूर्वरंग विधान में गान का विधिपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। पूर्वरंग विधान में देव पूजा (रंग देवता की पूजा) का अधिकार या प्रसंग कहा गया है।

(गानविधि के) काव्यबन्धों में ग्रामद्वय (षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम) का प्रयोग करना चाहिए; ये ग्राम नाना भावों और रसों के आश्रय हैं तथा स्वर साधारण भी इन ग्रामों के आश्रित है।

मुखसन्धि में मध्यमग्राम, प्रतिमुखसंधि में षड्जग्राम, गर्भ में साधारित (यानी उभय ग्राम के स्वर-साधारण अर्थात् अंतर काकली युक्त स्वरावलि), अमर्श संधि में कैशिक-मध्यम (मध्यम ग्राम के कैशिक मध्यम से युक्त स्वरावलि) तथा निर्वहण-सन्धि में कैशिक* (कैशिक स्वर साधारण युक्त स्वरावलि) युक्त गान करना चाहिए। [दोनों ग्रामों में त्रिश्रुति अन्तरालों के बीच एक श्रुति के सूक्ष्म स्वरों की जहाँ २ उपलब्धि होती है, उसी को भरत ने 'कैशिक' संज्ञा दी है। उन्हीं सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग यहाँ 'कैशिक' संज्ञा से अभिप्रेत है। इसके पूर्व 'अमर्श संधि' में 'कैशिक-मध्यम' के प्रयोग का जो विधान दिया गया है, उसमें मध्यमग्राम के 'म-प' के त्रिश्रुति अन्तराल में प्राप्त कैशिकमध्यम से अभिप्राय है जो कि पञ्चम से एक श्रुति पूर्व स्थित है। इस प्रकार गानविधि नाट्य की संधियों के आश्रित है अर्थात् जहाँ जो सन्धि हो तदनुकूल रसभाव-समन्वित रहनी चाहिए। जो ध्रुवा-गीति रस के अनुसार प्रयुक्त होती हैं और प्रकरण के आश्रित रहती हैं, वे नाट्य रूपी गगन को नक्षत्रों की भाँति उद्योतित (प्रकाशित) करती हैं।

मतंग के 'बृहद्देशी' में भरत के ऊपर लिखे श्लोक कुछ पाठभेद सहित उद्धृत किए गए हैं और इनमें कही गई संज्ञाओं को शुद्धा गीति के अन्तर्गत ग्राम रागों के नाम मान लिया गया है। यथाः—

मुखे तु मध्यमग्रामः षड्जः प्रतिमुखे भवेत्। गर्भे साधारितश्चैवावमर्शे तु पञ्चमः॥
संहारे कैशिकः प्रोक्तः पूर्वरङ्गे तु षाडवः। चित्रस्याष्टादशाङ्गस्य त्वन्ते कैशिकमध्यमः॥
शुद्धानां विनियोगोऽयं ब्रह्मणा समुदाहृत । (बृहद्देशी पृ० ८७)

भरत के ध्रुवा प्रकरण में से ऊपर उद्धृत वचन में जो संज्ञाएँ उपलब्ध होती हैं, उन्हीं में न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ मतंग ने उनका शुद्ध ग्राम-रागों के साथ जो संबंध जोड़ दिया है, उसी के कारण कुछ लोग भरत के उन वचनों में भी ग्राम-रागों का अस्तित्व आरोपित करते हैं। वास्तव में तो भरत के वचनों में कहीं 'ग्राम राग' संज्ञा का प्रयोग न होने के कारण षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम इन ग्राम-नामों को अथवा 'पञ्चम' 'कैशिक' 'मध्यम' इन स्वर नामों को

---

* उभय ग्रामिक अन्तर गान्धार, और काकली निषाद से भिन्न, भरतोक्त कैशिक स्वर-साधारण की विशेष स्पष्टता 'संगीताञ्जलि' पञ्चम भाग पृ० ११३क पर द्रष्टव्य है। यह उल्लेख करते हुए खेद होता है कि शार्ङ्गदेवादि ग्रन्थकारों में 'कैशिक' स्वर-साधारण के प्रसङ्ग में अनेक अनर्थों की सृष्टि की है, जिनके सुदूरगामी दुष्परिणाम आज तक के हमारे संगीत शास्त्र में व्याप्त रहे हैं। इस विषय के विस्तार का यहाँ अवकाश नहीं है। अस्तु।

अथवा 'साधारित' 'कैशिक' इन 'स्वर विशेषणों' को 'ग्रामराग' के रूप में स्वीकार करना तर्क-संगत नहीं है। परवर्ती ग्रन्थकारों के वचनों को पूर्ववर्ती ग्रन्थकार के मत पर आरोपित करना समीचीन नहीं हो सकता। इससे तो स्पष्ट है कि भरत ने नाट्य की पञ्च संधियों में अभिप्रेत संगीत प्रयोग के प्रकरण में उपर्युक्त संज्ञाओं का उल्लेख किया है। किन्तु इन संज्ञाओं का रागों से सम्बन्ध जोड़ना कैसे और कहां तक समुचित होगा? यदि भरत को राग का निरूपण करना ही अभिप्रेत होता तो इन संज्ञाओं के साथ 'राग' का संबंध क्यों न जोड़ते? साथ ही यदि उन्हें राग निरूपण ही अभीष्ट होता तो वह केवल पांच या छ: नामों के उल्लेख तक ही क्यों सीमित रहता? साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि भरत के ऊपर उद्धृत वचनों के ठीक पहले वाले श्लोक में भी 'राग' शब्द का 'रञ्जना' के लिए प्रयोग मिलता है। यथा,—

यथा वर्णादृते चित्रं शोभते न निवेशनम्। एवमेवं विना गानं नाट्यं रागं न गच्छति॥

(ना० शा० ३२।४५०)

इस प्रसंग में मतंग का निम्नलिखित वचन भी स्मरणीय है, जिसमें उन्होंने स्वयं कहा है :—

रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभिः। तद्रूपमाभिर्निरूप्यते लक्ष्यलक्षणसंयुतम्॥

[बृहद्देशी पृ० ८१]

अर्थात्—राग-मार्ग का जो रूप भरतादि ने नहीं बताया है, वह हम लक्ष्य-लक्षण से युक्त निरूपित करते हैं।

मतंग का यह वचन भी इस बात की पुष्टि करता है कि भरत ने रागों का उल्लेख नहीं किया है।

मतंग के ऊपर उद्धृत दोनों वचनों में स्पष्ट विरोधाभास है; इसलिए भरतोक्त संज्ञाओं को शुद्ध ग्रामराग की सत्ता मानकर मतंग का जो उद्धरण मिलता है उसे प्रामाणिक स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं। यह भी स्मरणीय है कि भरत ने अट्ठाईसवें अध्याय में संगीत प्रकरण के आरम्भ में विषय-प्रतिपादन की विस्तृत प्रतिज्ञा की है। उसमें 'राग' का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है। इन सब प्रमाणों से हमारा स्पष्ट मतव्य यही है कि भरत ने नाट्यशास्त्र में 'राग' का निरूपण नहीं किया है। आशा है, जिन्होंने ऐसा अनुमान लगाया है उनके भ्रम का निरसन हो जाएगा।

हमने यह देख लिया कि भरत ने नाट्यशास्त्र में रागों का उल्लेख नहीं ही किया है; उन्होंने केवल सात शुद्ध और एकादश संसर्गजा विकृता जातियों का ही निरूपण किया है। 'जाति' यह एक सामान्यार्थक शब्द है। किन्तु संगीतशास्त्र की भाषा में वैशिष्ट्ययुक्त स्वरावलियों के लिए जाति संज्ञा का प्रयोग हुआ है। ऊपर दी हुई जाति की व्याख्याओं से यह स्पष्ट है। जिससे रस-प्रतीति हो ऐसे विशिष्ट स्वर-सन्निवेश को जाति कहा है। इसका यह अर्थ हुआ कि कोई स्वरावलि केवल आरोहावरोह से यानी कोई विशिष्ट आकार धारण किए बिना किसी भाव या रस का वहन नहीं कर सकती। ऐसा वैशिष्ट्य प्रदान करने वाले तत्व क्या हैं? भरत ने दश जातिलक्षण के रूप में वे तत्व बताए हैं जो निम्नोक्त हैं :—

दशविध-जातिलक्षणम्

ग्रहांशौ तारमन्द्रौ च न्यासोऽपन्यास एव च। अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडविते तथा॥

[ना० शा० २८।८०]

अर्थात्—(१) ग्रह (२) अंश (३) तार (४) मन्द्र (५) न्यास (६) अपन्यास (७) अल्पत्व (८) बहुत्व (९) षाडवत्व और (१०) औडवत्व यही वे दश लक्षण हैं, जिनसे कोई स्वरावलि 'जाति' का रूप धारण करती है अर्थात् जिनसे विशिष्ट रसवाही स्वर-सन्निवेश का निर्माण होता है। क्रमश: इन दश लक्षणों की व्याख्या भरत और मतंग यों करते हैं।

(१) ग्रह

ग्रहस्तु सर्वजातीनामंश एव हि कीर्तितः। यत्प्रवृत्तं भवेद्गानं सोंऽशो ग्रहविकल्पितः॥

[ना० शा० २८।७१]

तत्रादौ जात्यादिप्रयोगो गृह्यते येनासौ ग्रहः।

[बृहद्देशी पृ० ५६]

अर्थात्—सब जातियों का जो अंश स्वर है, वही ग्रह कहलाता है। जिस स्वर से गान की प्रवृत्ति होती है, या गान-प्रवृत्ति के आरम्भ ही में जिस स्वर का प्रयोग होता है, वह अंश स्वर ही विकल्प से ग्रह कहलाता है। जहाँ से जात्यादि प्रयोग आरम्भ किया जाए, उसे ग्रह कहते हैं।

(२) *अंश*—जाति के दश लक्षणों में दूसरा लक्षण है 'अंश'। उस 'अंश' के निम्नलिखित दश लक्षण भरत ने बताए हैं :—

यस्मिन्वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्तते। येन यै तारमन्द्राणां योऽत्यर्थमुपलभ्यते॥
मन्द्रश्च तारविषया पञ्चस्वरपरा गति। अनेकस्वरसंयोगो योऽत्यर्थमुपलभ्यते॥
अन्यश्च बलिनो यस्य संवादी चानुवाद्यपि॥ ग्रहोपन्यासविन्यासंन्याससाभ्यासगोचरः।
परिवार्य स्थितो यस्तु सोंऽश. स्याद्दशलक्षणः॥

[ना० शा० २८। ७२-७४]

अर्थात् (१) जिस स्वर में राग यानी रञ्जकत्व रहता हो या जिस स्वर पर जाति का रञ्जक स्वरूप अवलंबित हो (२) राग, रञ्ज या रस के उत्पादन में जो स्वर मुख्यतः उपयोगी हो, या जो स्वर स्वयं राग, रञ्ज और रस को उपजाता हो, (३-४) मन्द्र और तार सप्तक में पाँच-पाँच स्वर तक जिसकी अध ऊर्ध्व गति हो, अर्थात् गान क्रिया में जिस स्वर की संवादात्मक प्रवृत्ति नीचे और ऊपर पाँच-पाँच स्वर तक विस्तार पाई हुई हो, (५) जो अन्य स्वरों से वेष्टित हो, या अन्य स्वरों के संयोग से आवृत हो, (६) जिसके साथ संवाद और अनुवाद करने वाले अन्य स्वर भी उसके समान ही बलवान् हों (७-१०) ग्रह न्यास, अपन्यास और विन्यास का बार-बार उच्चार या अभ्यास होते समय भी जो स्वर निरन्तर दृष्टिगोचर होता हो, ऐसे दश लक्षणों से युक्त स्वर अंश कहलाता है।

अंश स्वर के दश लक्षणों की व्याख्या कुछ भिन्न शब्दों में मतंग इस प्रकार देते हैं :—

अंशविभागः स दशविधो बोद्धव्यः, यस्मिन्नंशे क्रियमाणे रागाभिव्यक्तिर्भवति सोंऽशः। यस्मादारभ्य गीतः प्रवर्तते न ग्रहस्वरित। स्यांशा द्वितीया तारमन्द्राभिव्यक्तिहेतुः स्यांशस्तृतीयः पञ्चमस्वरमारोहणं तारं कदाचित् पष्ठस्वरारोहण(म)पि तार। तारनियामकमन्द्रनियामकस्वरोऽप्यंशः सप्तस्वरावरोहणम्। यश्च बहु-प्रयोगतरः सोऽप्यंशः। यो रागस्य विषयत्वेनावस्थित स्वरः सोऽप्यंशः।

[बृहद्देशी पृ० ५७]

अर्थात्-अंश स्वर दश प्रकार से बनता है। यथा-(१) जिसमे रागाभिव्यक्ति हो, (२) जिससे गीत का आरंभ हो, किन्तु फिर भी जो ग्रह और स्वरित से भिन्न हो, (३-४) तार और मन्द्र स्थानों की अभिव्यक्ति का जो हेतु हो, (५) जिसके आगे पाँच या छः स्वरों तक तार में आरोह हो सकता हो, (६-७) तार और मन्द्र स्थानों का जो नियामक हो, (८) जिससे सात स्वर तक नीचे अवरोह हो सकता हो, (९) जिसका अधिक प्रयोग हो, और (१०) राग के विषय, अर्थात् केन्द्रबिन्दु के रूप में जो स्थित हो।

ग्रह और अंश के लक्षण हमने देख लिए। 'ग्रह' के लिए यह जो कहा गया है कि अंश ही विकल्प से ग्रह बनता है, उस वचन का स्पष्टीकरण अब क्रमप्राप्त है। 'अंश' को *'ग्रहविकल्पित'* ऐसा जो कहा गया है उसकी

स्पष्टता के लिए यह उल्लेख आवश्यक है कि हमारे संगीतशास्त्र में 'अंश' शब्द का तीन प्रकरणों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग मिलता है। यथा :—

(१) संवाद, विवाद तथा अनुवाद—स्वरों के इन त्रिविध सम्बन्धों के प्रकरण में।
(२) जाति के दश लक्षणों के प्रकरण में जो हम अभी ऊपर देख चुके हैं।
(३) अलंकार प्रकरण में।

इन तीनों प्रकरणों में 'अंश' शब्द के विभिन्न अर्थ अभिप्रेत हैं। उनका स्पष्टीकरण निम्नोक्त है :—

(१) संवाद-विवाद-अनुवाद प्रकरण में अंश

भरत ने सप्तस्वरों के नामोल्लेख के पश्चात् उन स्वरों को चतुर्विध बताया है—वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी। संवाद, विवाद और अनुवाद—ये स्वरों के परस्पर सम्बन्ध के द्योतक हैं। इन सम्बन्धों की स्थापना के लिए दो-दो स्वरों की जोड़ियाँ आवश्यक होती हैं। कोई भी अकेला स्वर निरपेक्ष भाव से संवाद, विवाद या अनुवाद का प्रतिनिधि नहीं हो सकता क्योंकि स्वरों के संवादादि सम्बन्ध नियत अन्तरालों के द्योतक हैं और 'अन्तराल' की सिद्धि के लिए दो स्वरों की जोड़ी अनिवार्य है। इन दो स्वरों में से जिस स्वर को आधार मान कर दूसरे स्वर का संवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्ध स्थापित किया जाए, अथवा जाँचा जाए, उसी स्वर को 'वादी' कहा है। इसी 'वादी' को समझाते हुए भरत ने कहा है—'यो यत्र अंशः स तस्य (तत्र ?) वादी'। (ना० शा० २८)

अर्थात्—जब जिस स्वर को आधार मान कर दूसरे स्वर के साथ संवाद, विवाद या अनुवाद संबन्ध स्थापित किया जाए, वही आधार स्वर अंश या (Fundamental Note) है और वही वादी कहलाता है। उदाहरण के लिए 'सा-म' की स्वर जोड़ी में 'सा' को अंश या आधार मान कर चलने से 'सा' वादी और 'म' उसका संवादी बनता है और 'म-सां' की स्वर-जोड़ी में 'म' को अंश या आधार मानने में 'म' वादी और 'सां' उसका संवादी कहलाएगा। ऐसे ही अन्य संवादी, विवादी और अनुवादी स्वर-जोड़ियों के लिए भी समझना चाहिए।

इस प्रकरण में अंश स्वर के वास्तविक अर्थ को न समझने के कारण ही 'राग'-लक्षण में 'राग' के प्रमुख स्वर को वादी कहा जाने लगा, उससे अपेक्षाकृत कम प्रमुख स्वर को संवादी, सहायक स्वरों को अनुवादी तथा विरोधी स्वरों को विवादी कहा जाने लगा। राग-लक्षण के अन्तर्गत इन पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से इनके स्वरान्तराल-सम्बन्धी शास्त्रीय अर्थ की संगति नहीं रह पाई। उदाहरण के लिए प० भातखण्डे ने श्रीराग में कोमल ऋषभ और पंचम को वादी-संवादी बताया है और ऐसी ही अन्य स्वर-जोड़ियों को भी कई रागों में वादी-संवादी कहा है, जिनमें संवाद सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। वास्तव में भरत ने 'वादी' के पर्याय के रूप में जहाँ 'अंश' का प्रयोग यह कह कर किया है, "यो यत्र अंश ... तस्य वादी" वहाँ जाति या राग के प्रमुख या प्रधान स्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि रागलक्षण में 'वादी संवादी अनुवादी विवादी' स्वर भाषा का प्रयोग अशास्त्रीय है। भरतोक्त जाति के दश लक्षणों का ही राग-लक्षण में प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से उचित और ग्राह्य है।

(२) 'जाति' के दश लक्षणों के प्रकरण में अंश

'अंश', जाति के दश लक्षणों में से अन्यतम है और उसे जाति का प्रधानीभूत स्वर कह कर उसके जो दस लक्षण दिए गए हैं, वे हम ऊपर देख ही चुके हैं।

(३) अलंकार प्रकरण में अंश

, बृहद्देश अलंकारों के लक्षण देते हुए मतंग ने अलंकार के प्रत्येक टुकड़े के आरंभक स्वर को 'अंश' कहा है। उदाहरण के लिए—

(च) 'तारमन्द्र-प्रसन्न' अलंकार का लक्षण देते हुए मतंग कहते हैं —

अंशाच्चतुर्थं पंचमं वा स्वरं गत्वा यत्र मन्द्रे पुनरागम्यते स तारमन्द्रप्रसन्नः। यथा—सारिगमप सा, रिगमपध रि, गमपधनि ग, मपधनिसां म[१]। (बृहद्देशी पृ० ३७)

अर्थात्—'अंश' से चतुर्थ या पंचम स्वर पर जाकर जब पुनः मन्द्र[२] में लौट आया जाए तब 'तारमन्द्र प्रसन्न' अलंकार होता है। यथा—'सा' से 'प' तक आरोह करके पुनः अंशस्वर 'सा' पर लौट आए।

(छ) 'विधुत' अलंकार का लक्षण बताते समय मतंग कहते हैं —

अंशस्वरं चतुरुच्चार्य तदनन्तरस्वरद्वयस्य द्रुतोच्चारणादनेनैव क्रमेणारोहणादेककलो विधुतः।
सासा सासा रिग, रिरि रिरि गम, गागागागा मप, इत्यादि। (बृहद्देशी पृ० ४२)

अर्थात् 'अंश' स्वर का चार बार उच्चार करके उसके बाद वाले दो स्वरों का द्रुत उच्चार करने से 'विधुत' अलंकार होता है।

उक्त दोनों उदाहरणों में अलंकार के टुकड़ों के आरम्भक स्वर को 'अंश' कहा है।

'अंश' शब्द का तीन प्रकरणों में विभिन्न अर्थों में प्रयोग हमने देखा। इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि 'अंश' शब्द में तीन प्रवृत्तियाँ या (Functions) निहित हैं—(१) 'वादी' के रूप में स्वरों के संवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्धों का वह (अंश) आधार रहता है। (२) 'जाति' या 'राग' में वह (अंश) केन्द्रस्थ या प्राणस्वरूप रहता है। तथा (३) किसी विशिष्ट स्वर योजना में वह आरम्भ स्थान पाता है (यथा अलंकार प्रकरण में)। 'अंश' का यह त्रिविध कार्य-क्षेत्र हमने ऊपर देखा, उसी प्रकार जाति लक्षणों में भी अंश को तीन क्षेत्रों में व्याप्त बताया है। यथा —

(१) 'अंश' को 'ग्रह विकल्पित' कहकर उसे ग्रह के रूप में जाति के आरम्भ-स्थान का अधिष्ठाता कहा है।

(२) 'यस्मिन्वसति रागस्तु' इत्यादि दश लक्षणों द्वारा 'अंश' को 'जाति' के प्राण-स्वर या केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

(३) 'अंश, का सम्बन्ध 'न्यास' के साथ भी जोड़ा गया है। यथा —

अथ न्यासः। अंशसमाप्तौ स चैकविंशतिविधः। (ना० शा० २८)

अर्थात्—समाप्ति में आया हुआ अंश ही न्यास कहलाता है और वह इक्कीस प्रकार का है। 'अंशसमाप्तौ' का विग्रह मतंग ने या किया है —

'*अंशः समाप्तौ कार्यः*', अर्थात्—जो अंश समाप्ति में प्रयुक्त हो वही न्यास है। (बृहद्देशी पृ० ६०)

इस प्रकार आरम्भ स्थान, प्रधानता तथा समाप्ति-स्थान—इन तीन पहलुओं में 'अंश' का व्यापकत्व बताया गया है।

जाति के दो लक्षण 'ग्रह' 'अंश' हम देख चुके। अब तीसरा चौथा लक्षण ले लें।

---

(१) इस अलंकार के इस रूप का पाठ 'बृहद्देशी' में अत्यन्त भ्रष्ट है। यथा—सारिगम। सारिगमप। रिरिगमपध निगमपधग। गमपधनिग मपधनिम। मपधनिगाम। किन्तु मतंगोक्त लक्षण के अनुसार उक्त अलंकार का शुद्ध रूप बनाकर ऊपर दिया गया है।

(२) यहाँ 'मन्द्र' से मन्द्र स्थान का तात्पर्य नहीं अपितु जहाँ से आरम्भ किया हो वहीं पर नीचे लौट आने से तात्पर्य है।

१-४) *तार-मन्द्र*—अंश स्वर के जो दस लक्षण बताए गए हैं, उनमें तार और मन्द्र तक उसकी व्याप्ति की मर्यादा का उल्लेख हुआ है। उसी को दोहराते हुए यहाँ स्पष्ट किया गया है कि इन जातियों का गान केवल मध्य सप्तक में ही मर्यादित नहीं है, अपितु तार-मन्द्र में भी उनका प्रस्तार है। इससे सिद्ध होता है कि जाति-गान केवल मध्य-सप्तक के प्रयोग में ही सीमित नहीं था, अपितु तार-मन्द्र स्वरों में भी उसकी व्याप्ति थी अर्थात् तीनों-सप्तकों में उसका प्रयोग होता था।

तार और मन्द्र की व्याख्या देते हुए भरत ने कहा है —

अथ पञ्चस्वरा कण्ठ्यांशात् (?) तारगति । अंशात्तारगतिं विद्यादाचतुर्थस्वरादिह ॥
पञ्चमं स्वथवा गच्छेत्तत्वोऽशविहितं त्विह । आपञ्चमात्सप्तमाद्वा* नातः परमिहेष्यते ॥
(ना० शा० २८।९२-३)

त्रिविधा मन्द्रगतिः—अंशपरा न्यासपरा चेति अपन्यासपरा चेति वा ।

अर्थात्–तार की त्रिविध गति है–अंश (न्यास तथा अपन्यास) स्वर से लेकर चौथे, पाँचवें अथवा सातवें स्वर तक तार की गति समझनी चाहिए। मन्द्रगति भी त्रिविध है–अंशपरा, न्यासपरा और अपन्यासपरा। 'अंशपरा' अर्थात् अंश है परे जिसके अर्थात् अंश के नीचे। उसी प्रकार न्यासपरा और अपन्यासपरा का भी यही अर्थ है कि जिसके परे न्यास अथवा अपन्यास हो।

जाति-गान में त्रिविधा तार-गति और त्रिविधा मन्द्र गति होती थी, ऐसा इन उद्धृत वचनों से स्पष्ट है। इसका अर्थ यही है कि जिस जाति में जो स्वर अंश हो उस अंश से अथवा न्यास और अपन्यास स्वर से चार स्वर, पाँच स्वर या सात स्वर तक ऊपर जाने की *मर्यादा उन्होंने बाँध ली थी, तद्वत् त्रिविधा मन्द्रगति कही गई है, जिसे* अंशपरा, न्यासपरा और अपन्यासपरा कहा है। इसका भी स्पष्टार्थ यही है कि जिस जातिमें जो अंश, न्यास अथवा अपन्यास स्वर हों, उससे चार, पाँच या सात स्वर तक नीचे यानी मन्द्र में जाना चाहिए। इससे अधिक मन्द्र में नहीं जाना चाहिए।

ध्यान रहे कि यहाँ 'मन्द्र' 'तार' से 'मन्द्र-तार' स्थान अभिप्रेत नहीं है, अपितु 'अंश, 'न्यास' या 'अपन्यास' से नीचे उतरने को 'मन्द्र' और ऊपर चढ़ने को 'तार' कहा गया है।

उपर्युक्त त्रिविधा तारगति और मन्द्रगति में से 'अंशपरा' के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

कल्याण में अंश स्वर ऋषभ से चार, पाँच या सात स्वर मन्द्र में उतर कर ध नि रि, म ध नि रि, रि ग म ध नि रि, *ऐसे स्वरविस्तार के अवयव बनाते हैं, तद्वत् 'तार' में भी अंश से चार, पाँच या सात स्वर तक आरोह किया जाता है,* यथा—रिगमप रिगमध रिगमपधनि, रिगमधनिर्रि। इस प्रकार रागरूप के निदर्शन के लिए अंश से सात स्वर नीचे तक मन्द्रगति और अंश से सप्त स्वर ऊपर तक तारगति पर्याप्त होती है। इस मर्यादा के बाहर 'तारगति' या 'मन्द्रगति' में रागरूप का पुनरावर्तन ही होता है। उसी प्रकार हमीर में अंश स्वर धैवत से मन्द्र में जाकर गमध, सरिगमध, निसागमध, इस प्रकार मन्द्रगति में सञ्चरण किया जाता है और 'तार' में गंमंरिंसं यों लेते हुए अंश स्वर से 'तारगति' पूर्ण की जाती है। जयजयवन्ती में अंश स्वर ऋषभ से मुख्य मन्द्रगति ध नि रि की चार स्वर तक होती है, तद्वत् रिगमप की तारगति का प्रथम चरण लिया जाता है। वैसे ही गौडसारंग के अंश स्वर गान्धार से मन्द्रगति में 'निसागरिमग' को मुख्य रूप से स्वरप्रस्तार का खण्ड प्रयुक्त होता है। 'तार' में सात स्वर तक आरोह की मर्यादा इस राग-रूप के लिए भी पर्याप्त है।

---

* नाट्यशास्त्र के चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ के संस्करण में 'आपञ्चमात्पञ्चमाद्वा' यह पाठ है। बृहद्देशी में उद्धृत इसी श्लोक के पाठानुसार यहाँ संशोधन कर दिया गया है।

जैसे यह 'अंशगत' तारगति और मन्द्रगति हमने देखी, वैसे ही 'न्यास' या 'अपन्यास' के सबन्ध में भी इस द्विविध 'गति' को गुणिजन स्वयमेव समझ सकते हैं, क्योंकि यह सब कुछ प्रत्यक्ष क्रिया से संबन्धित है।

तार-मन्द्र की मर्यादा आज भी हम राग-गान में जिस प्रकार प्रयुक्त करते हैं इसके कुछ अन्य उदाहरण भी यहाँ प्रासंगिक होंगे। क्रिया-कुशल गुणी जानते हैं कि कुछ राग ऐसे हैं कि जिनकी तार-सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है, और कुछ राग ऐसे हैं, जिनकी मन्द्र सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है। उन मर्यादा की लकीर को लांघना, रागरूप को बिगाड़ना है। इसके कुछ उदाहरण समझने से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। यथा दरबारी कान्हड़ा, इसकी तार मर्यादा बंधी हुई है। यदि दरबारी में बार-बार तार-सप्तक में संचार किया जाए तो वहाँ दरबारी न रहकर अडाणा का दर्शन होने की पूरी संभावना है। दरबारी के मन्द्र सप्तक में जितना भी काम करना चाहें कर सकते हैं, किन्तु तार में नहीं। यह जैसी तार सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है, वैसे ही सोहनी, अडाणा, देशकार इत्यादि रागों की मन्द्र मर्यादा भी बंधी हुई है। सोहनी में प्राय मध्य गान्धार तक ही उतरने की मर्यादा है, चाहे कभी-कभी मध्य षड्ज को छू लेते हैं, किन्तु अधिकतर मध्य गान्धार तक ही उसकी मर्यादा है, मन्द्र में तो बिल्कुल ही नहीं। तद्वत अडाणे में भी अधिक से अधिक नीचे उतरने की मर्यादा मध्य षड्ज तक है। गुणिजन जानते हैं कि सोहनी में तार षड्ज ही अंश स्वर है और अडाणा में भी वही नियम है। सोहनी में पाँच स्वर तक उतरने की मर्यादा बनाई गई है और अडाणा में सात स्वरों तक उतरने की मर्यादा दिखाई गई है। जैसे इन रागों के निदर्शन के लिए इन मर्यादाओं का पालन आवश्यक है, वैसे ही भरतकालीन जातिगान में भी इन्हीं मर्यादाओं का पालन आवश्यक माना गया था और इसी को समझाने के लिए त्रिविधा तार-गति और त्रिविधा मन्द्र-गति का जाति के लक्षणों में उल्लेख किया गया, ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

५-६, न्यास अपन्यास—ये शब्द ही अपने अर्थ को स्पष्ट करते हैं। अर्थात् जहाँ गान समाप्त किया जाए अथवा गान के बीच में जहाँ मुकाम किया जाए, जाति गान की इन क्रियाओं के निदर्शन के लिए क्रमशः न्यास-अपन्यास इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।

"न्यासो ह्यंशसमाप्तौ" इस वचन में 'न्यास' के उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त जो अधिक व्यापक अर्थ निहित है, उसका विस्तृत विवेचन जाति के शुद्ध विकृत प्रकरण में द्रष्टव्य है।

७-८, अल्पत्व एवं बहुत्व—इस सम्बन्ध में भरत ने कहा है :—

द्विविधमल्पत्वं लङ्घनादनभ्यासाच्च। गीतान्तरमार्गमुपगतानां षाडवौडुवितकरणत्वमंशानाञ्च* स्वराणां लङ्घनादनभ्यासाच्च सकृदुच्चारण यथाजाति, तद्वत् बहुत्वमल्पत्वविपर्ययात् द्विविधमेषामन्येषामपि बलिनां सञ्चारः।

अल्पत्वञ्च बहुत्वञ्च यथापूर्वं विनिश्चयात्। जातिस्वरैश्च नित्यं स्यात् जात्यल्पत्वं विधानतः॥
संचारोऽशबलस्थानमल्पत्वं दुर्बलेषु च। द्विविधोऽन्तरमार्गस्तु जातीनां व्यक्तिकारकः॥

[ना० शा० २८।९०-१]

अर्थात् – अल्पत्व द्विविध है—एक लङ्घन द्वारा अर्थात् छोड़ देने से और दूसरा अनभ्यास द्वारा यानी बार-बार आवृत्ति के अभाव से। गीत के अन्तर मार्ग में आनेवाली (जातियों की) षाडवौडुवित क्रिया में जिन अंश स्वरों का

---

*ऊपर के उद्धरण में मतङ्ग के 'क्वचिद्वा अनंशो निवाल्प' इस वचन को देखते हुए यदि भरत के ऊपर उद्धृत वचन में 'अंशानाञ्च स्वराणां' के स्थान पर 'अनंशानाञ्च स्वराणां' पाठ लिया जाए तो उस गद्यांश का निम्नोक्त अर्थ होगा :—'गीत के अन्तर्मार्ग में आए हुए जो अनंश स्वर हों, जो स्वर (जातियों के) औडवषाडव प्रकार बनाने में साधन हों, उनके लंघन या अनभ्यास से अल्पत्व होता है।

लंघन या अनभ्यास द्वारा अल्पोच्चार होता है, उसे अल्पत्व कहते हैं और इसके विपर्यय से यानी अलंघन और अभ्यास से बहुत्व होता है।

'दो प्रकार के अन्तरमार्ग से जातियों की अभिव्यक्ति होती है—१, अंश या बलवान् स्वर के संचरण से, और २, दुर्बल स्वरों के अल्पत्व से। इस विषय में मतंग कहते हैं:—

अल्पत्वं बहुत्वं च द्विविधो संन्यासादिगतो भवेत् तदान्तरमार्गेणेति। अन्तरमार्गस्य लक्षणं यथा जातिषु क्वचिद्वा अनंशो विनाल्प.। [बृहद्देशी पृ० ५६]

अर्थात् अल्पत्व और बहुत्व दो प्रकार का होता है। हम ऊपर कह आए हैं कि लंघन और अनभ्यास से अल्पत्व द्विविध होता है, तद्वत् अलंघन और अभ्यास से बहुत्व भी द्विविध है। ऐसा द्विविध अल्पत्व और बहुत्व जब सन्यासादिगत होता है यानी जब स्वरों का न्यास, अन्यास आदि अवस्था के अनुसार अल्पत्व-बहुत्व होता है, तब वह अल्पत्व-बहुत्व अन्तरमार्ग द्वारा हुआ समझना चाहिए। कभी-कभी जातियों में अनंशत्व के बिना ही अल्पत्व होता है यानी अनंशत्व तो स्वयमेव एक प्रकार का दौर्बल्य या अल्पत्व है ही, किन्तु उस प्रकार के अल्पत्व से यहां कोई अभिप्राय नहीं है, बल्कि उस अल्पत्व से अभिप्राय है जो अनंशत्व पर निर्भर नहीं है।

इन अल्पत्व-बहुत्व को हम आज के लक्ष्य की भाषा में समझ लें। हमारे वर्तमान प्रचलित संगीत में भी किस स्वर पर कितना ठहरा जाए, या कौन सा स्वर कितना लंबाया जाए, इन बातों की मर्यादा पाई जाती है। जाति-गान के युग में भी गान-क्रिया के अवसर पर जिस स्वर का अल्प स्पर्श किया जाता होगा अथवा वक्रत्व से जिसका अल्पोच्चार होता होगा, या अन्य स्वरों की छाया में जो ढका हुआ रहता होगा, जिसका लंघन या अनभ्यास होता होगा, ऐसे स्वरों का अल्पत्व कहा गया है और जो स्वर ग्रह, अंश या न्यास न होते हुए भी गान में अधिक प्रयुक्त होता है, उसी स्वर का बहुत्व कहा गया है। आज हमारी गान क्रिया में अल्पत्व और बहुत्व का जो प्रयोग होता है, वह उसी प्राचीन परंपरा का द्योतक है। आज के कुछ रागों के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

जैसे केदार में गान्धार प्रयुक्त होते हुए भी दीर्घोच्चरित मध्यम की छाया में ढका रहता है और उसका केवल गुप्त उच्चारण होता है, यह एक अल्पत्व का उदाहरण हुआ, तद्वत् मल्हार (मियां मल्हार) का धैवत तथा शंकरा का धैवत वक्रगति के अल्पत्व के उदाहरण हैं। बिहाग में ऋषभ धैवत का आरोह में वर्जन होता है, यह लंघन के अल्पत्व का उदाहरण है और अवरोह में उन्हीं ऋषभ-धैवत की 'निऽऽ धमप' और 'गऽऽ रिनिसा'-यह क्रिया स्वरों के उच्चार में दीर्घत्व के अभाव का उदाहरण है। हिंडोल में ऋषभ का नियमपूर्वक आरोहावरोह में प्रयोग नहीं होता, किन्तु क्वचित् तार सप्तक में ऋषभ लिया जाता है। अत: अनभ्यास यानी बारंबार प्रयोग न करने के अल्पत्व का यह उदाहरण है और ऐसे ही अन्य अल्पत्व के प्रकार भी भिन्न-भिन्न रागों में सन्निहित हैं, जो विद्वज्जन से अविदित नहीं हैं।

जो स्वर राग में ग्रह, अंश, न्यास न होते हुए भी बल पाता है, उसका 'बहुत्व' माना जाता है। जैसे कि कल्याण में गान्धार। ध्यान रहे कि कल्याण के अंश और उपांश* ऋषभ-पंचम ही हैं, गांधार निषाद नहीं। कारण कि ऋषभ-पञ्चम के बिना कल्याण के कल्याणत्व का ही लोप हो जाएगा; किन्तु गांधार का बहुल प्रयोग होने पर भी उसके बिना कल्याण का कल्याणत्व नष्ट नहीं होता, यह गुणिजन जानते हैं। कल्याण के पूर्वांग में ऋषभ और उत्तरांग में पंचम के बिना उसका रागत्व कैसे नष्ट होता है यह निम्नोक्त उदाहरण से स्पष्ट होगा। यथा :—

---

* यहां सप्तक के पूर्वांग और उत्तरांग में स्थित अंश स्वरों के लिए ही क्रमश. 'अंश' और 'उपांश' इन संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है।

सा ऽ, नि सा ग, ध नि सा ग, नि ध सा नि ग, म ग, म ध नि सा ग, म ग, ध म ग, नि ध म ग, म ध म ग, सा, नि ध सा।

इस प्रकार इन स्वरावलियों में गान्धार का बहुत्व दिखाने पर भी कल्याण का दर्शन नहीं हो होता, परन्तु—

नि रे-सा, ध नि रे-सा, म ध नि रे-सा, अथवा उत्तरांग में प म ध-प, प म ध ऽ प, म प म ध-प, म ध नि ध-प, म ध ऽ प, म रि ऽ, रि म ध नि ध ऽ प, म ध ऽ प रि ऽ, सा नि रि ऽ ऽ सा। इस प्रकार गुणिजन देख सकते हैं कि पूर्वांग में ऋषभ और उत्तरांग में पञ्चम का प्रयोग करने से ही कल्याण का कल्याणत्व प्रकट होता है, निखर आता है। इससे स्पष्ट है कि कल्याण में गान्धार का लंघन करने पर भी कल्याण का कल्याणत्व पूरी तौर से विद्यमान रहता है।

शुद्ध-कल्याण, भूप-कल्याण, जयत-कल्याण आदि में कल्याण का अंग 'प-रि' संगति पर ही निर्भर रहता है और पूर्वकल्याण में पंचम पर ही कल्याण दिखाई देता है, तद्वत् जहाँ-जहाँ नि रे-सा, म ध-प या प रि लगेंगे, वहाँ-वहाँ कल्याण का दर्शन होगा। इससे सिद्ध है कि कल्याण का कल्याणत्व 'प-रि' पर ही अवलम्बित है, गान्धार पर नहीं, जैसा कि पं० भातखण्डे ने कल्याण में 'ग' को वादी बता कर अपने ग्रन्थों में कहा है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि कल्याण में ऋषभ और पंचम ये अंश स्वर हैं और गान्धार उसमें अंश न होने पर भी बल पाता है। इसी को बहुत्व कहा गया है क्योंकि 'बहुत्व' द्वारा ऐसे स्वरों का सूचन किया जाता है, जो कि अंश न होते हुए भी बल पाते हैं।

बहुत्व का एक अन्य उदाहरण भी देख लें। देश और सोरठ में हम जानते हैं कि पूर्वांग में ऋषभ पर और उत्तरांग में पंचम पर मुकाम करना अनिवार्य है, आरोह अवरोह दोनों ओर से बार-बार ऋषभ और पंचम का दीर्घोच्चार सहित प्रयोग आवश्यक है। ऋषभ पंचम के इस बहुत्व से यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि इन रागों में 'ऋषभ-पंचम' अंश हैं। इसी भ्रमवश पं० भातखण्डे ने ऋषभ को वादी और पंचम को संवादी कहा है। वास्तव में इन रागों के अवरोह में धैवत और गान्धार का प्रयोग अल्प दिखते हुए भी इतना अनिवार्य है कि उनके बगैर इन रागों का रागत्व ही समूचा नष्ट हो जाता है। यथा —

रि म ऽ रि, नि सा रि म ऽ ऽ रि, रि म प ऽ म रि, रि म पनि ऽ प म रि, प म नि ऽ पमरि, रिमपरिमनिऽ पमरि, म नि सा।

ऊपर के उदाहरण में स्पष्ट है कि बिना गान्धार धैवत के देश या सोरठ के स्थान पर सारंग प्रादुर्भूत होता है। किन्तु इन्हीं स्वरों के अवरोह में गान्धार धैवत का अल्प प्रयोग होते ही देश या सोरठ की प्रतिष्ठापना निम्नोक्त रूप में होगी —

रिम ऽ गरि, नि सारि म ऽ गरि, रि मप रिम ऽ गरि, रि म पनि ऽ प, ध ऽ म गरि पमनि ध ऽ प, ध ऽ म गरि, रि मप रिम नि ध ऽ ऽ प, रि म ऽ गरि, ग नि ऽ सा।

यह उदाहरण किसी भी शंकित मनुष्य को निःशंक बना सकता है कि देश या सोरठ में गान्धार धैवत का बहुत्व न होने पर भी अंशत्व है क्योंकि उनके बिना राग का स्थापना ही असम्भव है और ऋषभ पञ्चम का अंशत्व न होते हुए भी बहुत्व है।

इन दो उदाहरणों से ही गुणिजन बहुत्व का यथार्थ भाव पा सकेंगे और अन्य रागों में इसकी प्रतीति ले सकेंगे।

९-१०) षाडवत्व–औडवत्व—सम्पूर्ण ग्राम में भीतर से एक स्वर निकालने से षाडव और दो स्वर निकालने से औडव प्रकार बनते हैं, यह माने जाते हैं। इस विषय में भरत ने कहा है :—

पंचस्वरमौडवितं विज्ञेयं दशविधं प्रयोगज्ञैः।
षट्स्वरस्य प्रयोगोऽस्य तथा पञ्चस्वरस्य च ॥
चतुःस्वरप्रयोगोऽपि देशापेक्ष प्रयुज्यते ॥

[ना० शा० २८।६५]

अर्थात्–पांच स्वरों के प्रयोग से औडव प्रकार बनते हैं। ऐसे ये औडव प्रकार दशविध हैं। जैसे षाडव में छः और औडव में पांच स्वरों का प्रयोग होता है, तद्वत् चार स्वरों का प्रयोग भी देशी संगीत में प्रचलित है।

भरत की ऊपर उद्धृत कारिकाओं के अन्तिम भाग में जातिगान में चार स्वरों के प्रयोग का जो उल्लेख मिलता है, उससे अधुना प्रचलित मालश्री, धवलश्री जैसे रागों का आधार मिल जाता है। कुछ लोगों ने राग के स्वरों की न्यूनतम संख्या पांच मानकर इन रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग करके इन्हें औडव बनाने का यत्न किया है। किन्तु ऊपर उद्धृत भरत के वचन के अनुसार ऐसा यत्न अनावश्यक ही नहीं, अपितु शास्त्र विरोधी होने के कारण अनुचित भी ठहरता है, क्योंकि चार स्वरों के रागों का प्रयोग भी विहित है, निषिद्ध नहीं है।

शुद्धा विकृता जातियाँ

अब हम इन जातियों के भेद-प्रभेदों के प्राचीन-ग्रन्थोक्त विवरण को समझ लें। जाति के दो मुख्य भेद हैं। यथा—१) शुद्धा २) विकृता।

शुद्धा जातियाँ

शुद्धा जातियाँ सात मानी गई हैं, जिनके नाम सप्त स्वरों पर से रखे गए हैं। यथा षाड्जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और नैषादी अथवा निषादवती। इन सात शुद्धा जातियों में से चार षड्जग्राम की हैं, यथा—षाड्जी, आर्षभी, धैवती और निषादवती तथा तीन मध्यमग्राम की हैं, यथा—गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी।

यों तो षड्जग्राम और मध्यमग्राम की चौदह मूर्च्छनाओं को ग्रह, अंश, न्यासादि नियम लगाने से जातियाँ बनाई जा सकती थीं। किन्तु भरत ने दोनों ग्रामों में कुल मिलाकर सात ही शुद्धा जातियाँ कही हैं। दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं के स्वर-रूप देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चौदह मूर्च्छनाओं के स्थान पर केवल सात ही मूर्च्छनाओं को शुद्धा जातियों का रूप देने के पीछे भरत का क्या हेतु रहा होगा। हम जानते हैं कि दोनों ग्रामों की कुल स्वर व्यवस्था में इतना ही अन्तर है, * कि षड्जग्राम में 'म-प' अन्तर चतुःश्रुति तथा 'पध' त्रिश्रुति है और मध्यमग्राम में 'मप' त्रिश्रुति और 'प-ध' चतुःश्रुति है। इन दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाएं यदि वीणा पर निकाल कर देखी जाएं तो उनकी स्वरावलियों में, श्रुति व्यवस्था के सूक्ष्म भेदों को छोड़ कर, साम्य पाया जाता है। अर्थात् स्थूल रूप से दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं द्वारा समान रागों का ही संकेत मिलता है। ये स्वर-सप्तक पुनरावृत्त न हों, संभवतः इसीलिए भरत ने शुद्धा जातियों के लिए दोनों ग्रामों में से केवल सात मूर्च्छनाओं को ही चुना है।

---

*नान्यदेव ने कहा है —

यदाऽन्योन्यविपर्यस्तश्रुती पञ्चमधैवतौ। तदा तं मध्यमग्रामं वदन्ति मनीषिणः ॥

अर्थात् जब पञ्चम धैवत का आपस में श्रुतिवि[illegible] चार श्रुति धैवत की और धैवत की चार श्रुति पञ्चम को मिल जाती हैं, तब मध्यमग्राम कहा जाता है।

इन द्वैग्रामिक सात शुद्धा जातियों के नाम सात स्वरों पर से रखे गए हैं। यथा—षड्ज से षाड्जी, ऋषभ से आर्षभी, गान्धार से गान्धारी, मध्यम से मध्यमा, पंचम से पञ्चमी, धैवत से धैवती और निषाद से निषादवती। इन शुद्धा-जातियों के लक्षण भरत ने इस प्रकार निरूपित किए हैं —

(१) 'अन्यूनस्वरा'—अर्थात् जिनके आरोहावरोह संपूर्ण हों।

(२) 'स्वरदशांशग्रहन्यासाः'—अर्थात् जिस स्वर पर से जिस जाति का नाम रखा गया हो, वही स्वर उसका ग्रह, अंश और न्यास भी हो। उदाहरण के लिए षड्जग्राम की षाड्जी जाति का ग्रह षड्ज हो और षड्ज ही उसका अंश और न्यास भी हो। इसी प्रकार दोनों ग्रामों की सभी शुद्धा जातियों को समझना चाहिए अर्थात् ये लक्षण सभी पर घटित होते हैं

(३) 'न्यासविधावस्यासां मन्द्रो नियमात् भवति शुद्धासु'

अर्थात्—शुद्धा जातियों में न्यास स्वर नियम से मन्द्र में ही होना चाहिए।

भरत के इस वचन में 'मन्द्र' का अर्थ मन्द्र सप्तक नहीं अपितु जिस स्वर पर मन्द्र सप्तक पूर्ण करते हैं, उससे, यानी मध्य षड्ज से अभिप्राय है। आज भी जब हम गान क्रिया और वादन क्रिया करते हैं, तब अपवादरूप रागों को छोड़कर प्रायः सभी रागों में हम मध्य षड्ज पर ही पूर्ण न्यास करते हैं। यानी गान-क्रिया, आलाप क्रिया, तान-क्रिया उसी मध्यषड्ज पर पूर्ण होती हैं। ऐसा ही नियम जाति गान के लिए भी प्रयुक्त होता था, यह उपर्युक्त वचन से स्पष्ट है। सामान्य बोलचाल में अल्पविराम, प्रश्न, उद्‌गार और पूर्णविराम के उच्चारों की भिन्नता देखने से स्पष्ट होता है कि पूर्णविराम का वाचिक स्वर मध्य स्थान में ही होता है। जो वाग्व्यवहार में पूर्णविराम कहलाता है, उसे ही संगीत में न्यास या पूर्ण न्यास कहा जाता है। अतः संगीत में भी उसका प्रयोग तार में नहीं, अपितु मध्य स्थान में किया जाता है। इसी तथ्य को निर्देशित करने के लिए भरत ने यह कहा है कि शुद्धा जातियों का न्यास मन्द्र में ही होना चाहिए।

विकृता जातियाँ

शुद्धा जातियों की व्याख्या देखने के बाद अब हम जातियों के दूसरे मुख्य भेद विकृता को देख लें। भरत ने कहा है.—

एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वा लक्षणैर्विक्रियामुपगता न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति।

अर्थात्—शुद्धा जातियों के लक्षणों में से 'न्यास' को छोड़कर एक दो या उससे अधिक लक्षणों में विकार आजाने से विकृता जाति बनती हैं। उनके न्यास स्वर में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता यह ध्यान देने की बात है।

इसका स्पष्टार्थ यही हुआ कि विकृता जातियाँ दो प्रकार से बनती हैं — (१) पूर्णत्व-सम्बन्धी नियम को भंग करने से यानी औडव षाडव प्रकार बनाने से और (२) जिस स्वर पर से जिस शुद्धा जाति का नाम-करण हुआ हो, उसी स्वर को अंश, ग्रह, अपन्यास मानने के नियम का उल्लंघन करने से। हाँ, केवल न्यास स्वर के नियम का कभी उल्लंघन नहीं होता।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शुद्धा और विकृता जातियों का पार्थक्य बताते हुए भरत ने 'न्यास' शब्द का यहाँ दो अर्थों में प्रयोग किया है—(१) जाति के स्वर रूप का नियामक, तथा (२) विराम, ठहराव या मुकाम।

हम पहले ही देख आए हैं कि 'ग्राम' का भिन्न २ प्रकरणों में भिन्न २ अर्थों में प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार यहाँ 'न्यास' से दो अर्थ अभिप्रेत हैं। ऊपर उद्धृत भरत के वचनों में 'न्यास' के द्विविध अर्थ की स्पष्टता निम्नोक्त विवरण से प्राप्त होगी।

भरत के निम्नलिखित दो वाक्यांशों में 'न्यास' का प्रथम वर्ग यानी 'जाति' के स्वर रूप का नियामकत्व स्पष्ट होता है।

(क) शुद्धा अन्यूनस्वरा स्वरांशग्रहन्यासा।

(ख) एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वा लक्षणैर्वियामुपगता न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति।

अर्थात् शुद्धा जातियों में सात स्वरों नाम स्वर ही ग्रह, अंश और न्यास होता है। इन लक्षणों में न्यास के नियम को छोड़कर अन्य लक्षणों में से एक दो या अधिक का भंग करने से जातियों के विकृत भेद बनते हैं। यहाँ 'न्यासवर्ज' यह पद कह कर 'न्यास' को अपरिवर्तनशील बताते हुए भरत ने इस सिद्धान्त को स्पष्ट किया है कि उन-उन जातियों का न्यास स्वर ही उनके स्वर रूप का नियामक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जाति के न्यास स्वर से उत्थित मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावलि को बनाए रखते हुए ग्रह-अंश स्वरों के परिवर्तन से तथा सम्पूर्णत्व भंग करके औडव षाडव रूपों के निर्माण से शुद्धा जातियों के विकृत भेद बनाने की विधि भरत ने कही है।

यहाँ कुछ प्रश्न हो सकते हैं। ग्रह या अंश को जातियों के स्वर-रूप का नियामक क्यों न माना जाए? गान की प्रवृत्ति के प्रवर्तक 'ग्रह' का अथवा प्रधानीभूत या प्राणस्वरूप 'अंश' का जाति के स्वर रूप का अर्थात् मूर्च्छना का नियामक क्यों न माना जाए? 'न्यास' को ही क्यों माना जाए? 'न्यास' को नियामक मानने के प्रमाणीभूत कारण क्या हैं? उत्तर निम्नोक्त है —

(१) शुद्धा जातियों के अन्तर्गत विकृत भेद बनाने के प्रसंग में भरत का 'न्यासवर्ज' यह विधान है। यदि एक जाति के अन्तर्गत अन्य विकृत भेदों का निर्माण करना है तो उस जाति की मूल स्वरावलि को स्थिर रखना ही होगा, उसे अपरिवर्तनशील रखते हुए ही उसी स्वरावलि के अन्तर्गत ग्रह, अंश का परिवर्तन करके तथा औडव-षाडव आदि भेद बनाकर विकृत भेद उपजाए जा सकते हैं। तभी वे सब विकृत भेद एकता के सूत्र में आबद्ध रहेंगे और किसी जाति विशेष के अन्तर्गत समाविष्ट रह सकेंगे।

(२) भरत ने १८ जातियों में कुल मिलाकर ग्रह अंश की संख्या ६३ कही है, किन्तु न्यास केवल २१ ही बताए हैं। यदि इन विपुलसंख्यक ग्रहों अथवा अंशों को जातियों के स्वर रूप का नियामक मान लें और उन उन स्वरों से मूर्च्छनाएं बनाएं तो कैसा अपार पुनरुक्ति दोष खड़ा होगा? ग्रह-अंश की यह विपुल संख्या कितनी घोर अव्यवस्था की सृष्टि करेगी?

(३) हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रायः प्रत्येक जाति में एक से अधिक स्वरों को ग्रह और अंश का स्थान दिया गया है। यदि प्रत्येक ग्रह-अंश से मूर्च्छना बना कर जातियों के स्वर रूप बनाने लगेंगे तो किसी भी जाति का कोई निश्चित रूप ही नहीं रह पाएगा, नियमन का सर्वथा अभाव हो जाएगा और घोर अराजकता की-सी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

(४) इसीलिए अपवाद स्वरूप एक दो जातियों को छोड़कर प्रत्येक जाति में न्यास स्वर एक ही एक बताया गया है, साथ ही उसे अपरिवर्तनशील भी कहा है। जो सर्वथा अपरिवर्तनशील है, वही अचल है और वही नियामक हो सकता है, अन्य नहीं।

ऊपर लिखे कारणों से यह स्पष्ट है कि न्यास स्वर ही जातियों के स्वररूप का नियामक है और उसे उसी रूप में ग्रहण करने से ही जातियों के सुसंगत, नियमित, व्यवस्थित और स्थिर रूपों का निर्माण हो सकता है अन्यथा नहीं। जिस प्रकार 'अंश ही विकल्प से 'ग्रह' बनता है वैसे ही 'अंश' ही न्यासत्व को प्राप्त होता है। ग्रह अंश का

'ग्रहत्व' और 'अंशत्व' परिवर्तनशील है। किन्तु उसका न्यासत्व अपरिवर्तनशील है। इस दृष्टि से भी न्यासत्व को प्राप्त अंश ही जाति का नियामक बन सकता है।

शास्त्र-वचन से स्पष्ट है कि जो अंश है, वही न्यास है।

अथ न्यासः। अंशसमाप्तौ स चैकविंशतिविधः। (ना० शा० २८)

इसी वचन को मतंग ने यों उद्धृत किया है—

न्यासो ह्यंशसमाप्तौ स चैकविंशतिविधो विज्ञातव्यः। (बृहद्देशी पृ० ६०)

इसी 'अंशसमाप्ती' का विग्रह मतंग ने यों किया है—'अंश समाप्तौ कार्यः।' अर्थात् जो अंश समाप्ति मे प्रयुक्त किया जाये वही न्यास है।

इससे यह स्पष्ट है कि जो अंश न्यासत्व को प्राप्त होता है वही जाति के स्वरो का नियामक बनता है, अन्य अंश नहीं। इसलिए नियामकत्व 'न्यास' मे ही निहित है, अंश मे नही। इसीलिए ग्रह-अंशादि में परिवर्तन विहित है, न्यास मे नहीं। न्यास की अपरिवर्तनशीलता एवं 'अंश' का 'न्यासत्व' को प्राप्त होना, इन दोनो 'न्यास' की विशेषताओं से यह जाति के स्वरो का नियामक है। इस अर्थ को स्पष्टता और पुष्टि हम ऊपर लिखे वचनो मे देख आए हैं। अब 'न्यास' शब्द में दूसरा अर्थ जो सन्निहित है, उसको देख ले। उसके लिए भरत कहते हैं —

'न्यासविधानन्यासां मन्द्रा नियमात् भवति शुद्धासु विकृतास्वनियमात्।

अर्थात् न्यास विधि मे भी शुद्धा जातियां मे न्यास सर्वदा (नियम से) मन्द्र मे होता है, किन्तु विकृताओं में ऐसा कुछ नियम नही है।

शुद्धा जातियां के विकृत भेद बताते समय न्यास किस अर्थ मे अपरिवर्तनशील रहता है, और जातियों के स्वरों का नियामक बनता है वह हम ऊपर देख चुके है, किन्तु इन्हा विकृत भेदो मे 'न्यास' किस भिन्न अर्थ मे परिवर्तनशील बनता है, उसकी स्पष्टता भरत के उपर्युक्त वचन मे प्राप्त है।

'न्यास' का यह भिन्न अर्थ है—ठहराव, मुकाम या विराम।

न्यास सम्बन्धी भरत के ये दो विधान आपाततः परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं। एक ओर तो 'एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वा लक्षणैर्विक्रियामुपगता. न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति' इस वचन मे 'न्यासवर्जं' कहकर 'न्यास' को शुद्ध विकृत भेदों में 'अपरिवर्तनशील' कहा है और दूसरी ओर 'विकृतास्वनियमात्' कहकर विकृत जाति-भेदो मे न्यास' को परिवर्तनशील भी बताया है। किंतु इस विरोधाभास की संगति तभी बैठ सकती है जब 'न्यास' के जो दो भिन्न भिन्न अर्थ भरत को अभिप्रेत हैं, उन्हे यथायथ रूप मे समझ लिया जाए। इन अर्थों को स्पष्टता के अभाव मे ही विरोध दिखाई देता है वास्तव मे भरत के वचनो मे कोई विरोध नहीं है।

ऊपर के पूरे विवरण का निष्कर्ष यह है कि 'न्यास' को जहाँ 'न्यासवर्जं' कह कर अपरिवर्तनशील कहा है वहाँ उससे जाति के स्वरो का नियामकत्व अभिप्रेत है और नियामक का अपरिवर्तनशील होना अनिवार्य है, दूसरी ओर 'विकृतास्वनियमात्' कह कर 'न्यास' को जब 'परिवर्तनशील' बताया है तब उससे ठहराव या मुकाम या विराम ही अभिप्रेत है और विराम की परिवर्तनशीलता से न्यास मे निहित जाति के स्वरो का नियामकत्व किसी प्रकार से बाधित नहीं होता।

शुद्धा जातियों में तो एक ही स्वर, ग्रह, अंश और न्यास होता है। वहाँ ग्रह का 'प्रवर्तकत्व', अंश का 'प्रधानत्व' तथा न्यास का नियामकत्व एवं 'समाप्तिकृतत्व'—ये सब कुछ एक ही स्वर में अन्तर्हित रहते हैं।

किन्तु शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेदों में नाम स्वर में भिन्न भिन्न ग्रह, अंश, अपन्यास आदि का प्रयोग विहित है। इन विकृत जाति-भेदों में भी 'नियमत' न्यास तो अपरिवर्तित ही रहता है किन्तु षाड्जी में ग्रह, अंश, अपन्यास में न्यास परिवर्तित हो सकता है यही अर्थ भरत के 'विकृतास्त्वनियमात्' इस वचन में निहित है।

इस ग्रह अंश परिवर्तन के लिए क्षेत्र निर्धारित करने के निमित्त ही शुद्धा जातियों में एक से अधिक अंश (ग्रह) बताए हैं। ध्यान रहे कि प्रत्येक जाति का न्यास स्वर उसके अंशों (ग्रहों) में से ही एक है। इसीलिए यहाँ कहा गया है कि जो स्वर समाप्ति में प्रयुक्त हो, वही न्यास है।

शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेदों की संख्या निर्दिष्ट न करते हुए भी भरत मुनि ने इन भेदों की रचना की मर्यादा निर्धारित कर दी है। जिस प्रकार ग्रह-अंशों की संख्या निश्चित करके ग्रह अंश परिवर्तन का क्षेत्र निर्धारित कर दिया है, तद्वत् औडुव षाडव भेदों की रचना का भी नियमन कर दिया है। 'रत्नाकर' कार ने जो विकृत भेद गिनाए हैं, उनकी संख्या नीचे की सारिणी में प्रस्तुत है —

जाति नाम	शुद्ध विकृत भेद संख्या	विकृति के प्रकार	
		औडवषाडवादि भेद	ग्रह, अंश, अपन्यास के नियम भंग से बने भेद
१—षड्जी	११	८	७
२—आर्षभी	२३	१६	७
३—गान्धारी	२३	१६	७
४—मध्यमा	२३	१६	७
५—पंचमी	२३	१६	७
६—धैवती	२३	१६	७
७—निषादवती	२३	१६	७
कुल संख्या	१४३	१ ४	४९

संसर्गजा विकृता जातियाँ

शुद्धा जातियों के उपरिलिखित विकृत भेदों के अतिरिक्त अन्य एकादश संसर्गजा विकृता जातियाँ पृथक् रूप से कही गई हैं। इन संसर्गजा विकृता जातियों के सम्बन्ध में भरत, मतंग तथा शार्ङ्गदेव के वचन इस प्रकार हैं —

भरत—तत्रैकादश जातयोऽधिकृता परस्पर संयोगादेकादश निर्वर्तयन्ति। यथा —

शुद्धा विकृताश्चैव समवायाज्जातयस्तु जायन्ते। पुनरेवाशुद्धकृता भवन्त्येकादशान्यास्तु ॥
तासां या निर्वृत्ता स्वरेष्वथांशेषु च जाति। ता वक्ष्यामि यथावत् संक्षेपेण क्रमेणेह ॥

[ना० शा० २८।४३, ४४]

अर्थात् एकादश जातियों का अब अधिकार (प्रकरण) है। (शुद्धा जातियों के) परस्पर संयोग से एकादश जातियाँ निष्पन्न होती हैं।

"जातियाँ शुद्धा और विकृता होती हैं।"

[यहाँ 'विकृता' ■ शुद्धा जातियो में विकृत भेदो से तात्पर्य है। इन 'विकृता' जातियो के अतिरिक्त अन्य एकादश ससर्गजा विकृता जातियों के लिए भरत ने कहा है "समवाय द्वारा पुन अशुद्ध की हुई जातियाँ एकादश होती हैं। इन एकादश जातियो म से जो जाति (ससर्गजा) जिन जिन अश स्वरो तथा जिन जातियो (के समवाय) से निष्पन्न होती है, उसे उसी प्रकार सक्षेप स क्रम से बताया जाएगा।"

मतग—तत्र शुद्धाना जातीना शुद्धत्व विकृतत्वं च रूपद्वयमस्ति, एकादशाना विकृतोद्भवत्वाद् विकृतत्वमेव रूप भवति।

[बृहद्देशी पृ० ५४]

अर्थात् शुद्धा जातियो के तो शुद्ध और विकृत ये दो रूप होते हैं, किन्तु एकादश (ससर्गजा) जातियो का उद्भव विकृत जातियो स होने के कारण उनका विकृत ही रूप होता है। अर्थात् ये नित्य विकृता हैं।

इस विषय ■ शार्ङ्गदेव का वचन निम्नोक्त है —

विकृताना तु ससर्गाज्जाता एकादश स्मृता। [स र० १।७।२]

अर्थात् विकृताओ के ससर्ग से एकादश जातियाँ उत्पन्न होती हैं।

ऊपर उद्धृत इन तीनो वचनो का मूल अभिप्राय यह है कि ससर्गजा जातियाँ विकृत ही होती हैं, उनका शुद्ध रूप नहीं होता। किन्तु भरतोक्त 'पुनरेवाशुद्धकृता', 'समवायात्' तथा 'अन्यास्तु' ये शब्द इस सम्बन्ध मे विशेष विचारणीय हैं। 'शुद्धा' जातियो के ग्रह अश परिवर्तन तथा औडव-षाडव भेद निर्माण से उनके (शुद्धा-जातियो के) जो विकृत भेद बनते हैं, उनसे ये एकादश जातियाँ बिल्कुल भिन्न हैं, इसीलिए 'अन्यास्तु' कहा है। हम यह जानते हैं कि ससर्गजा जातियो का विवरण देते समय उनमे 'शुद्धा' जातियो का ही 'ससर्ग,' 'सयोग' या 'समवाय' कहा गया है। उदाहरण के लिए 'षाड्जी' 'आर्षभी' आदि शुद्धा जाति-नामो का ही 'ससर्ग' 'सयोग' या 'समवाय' के प्रसग में उल्लेख किया गया है। और कहीं भी यह सकेत नहीं दिया गया है कि अमुक शुद्धा जाति के अमुक विकृत भेद का 'ससग' में उपयोग करना अभिप्रेत है। हम देख आए हैं कि एक एक शुद्धा जाति के अनेको विकृत भेद बनते हैं। अत किसी निश्चित सकेत के बिना किस आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि विकृत भेदो की विपुल सख्या म से कहाँ कौन से विकृत भेदो का उपयोग करना है। अत यह कहना गलत होगा कि शुद्धा जातियो के विकृत भेदो से ससर्गजा जातियो का उद्भव हुआ है। इसीलिए यह स्पष्ट है कि भरत को इन विकृत भेदो का ससर्ग अभिप्रेत नहीं था, अन्यथा उन्होने अभीप्सित विकृत भेदो का अवश्य उल्लेख किया होता। ऐसी अवस्था मे 'पुनरेवा॰शुद्धकृता' यह वचनाश बहुत महत्वपूर्ण है। इसको 'समवायात् पुनरेवाशुद्धकृता' या समवायात् के साथ रखकर देखने मे यह अर्थ स्पष्ट होता है कि 'समवाय' द्वारा अर्थात् 'समूहरचना' द्वारा जिन शुद्धा जातियों को 'अशुद्ध' बनाया जाता है, व ही 'अशुद्धकृता' जातियाँ समूहगत हो कर अन्य एकादश बनती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि शुद्धा जातियो को ही जब निश्चित समूहगत रूप से प्रयोग म लाया जायगा अर्थात् जब एक से अधिक शुद्धा जातियो को पृथक् या स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त न करके उनके समवाय या समूह की रचना की जायगी तब उनकी शुद्धावस्था नहीं रह जाएगी। यह जो समवायगत अशुद्धावस्था है वह पूर्वोक्त विकृत भेदो से पृथक है। इसीलिए विकृता ■ कह कर 'पुनरेवाशुद्धकृता' कहा है। ध्यान रहे कि यहाँ पुन' से दुबारा अर्थ नहीं है, अपितु पूर्वोक्त विकृत भेदो से व्यावर्तक के रूप मे उसका प्रयोग हुआ है।

१—'ता एव शुद्धविकृता' (ना० शा० चौखम्बा सस्करण)

ऊपर लिखे विवरण से यह स्पष्ट है कि मतंग के 'विकृतोद्भवत्वात्' तथा शार्ङ्गदेव के 'विकृतानां संसर्गाज्जाता' इन शब्दों से यद्यपि ऐसी भ्रान्ति हो सकती है कि शुद्धा जातियों के 'विकृत' भेदों के संसर्ग से ये एकादश जातियां बनती हैं, तथापि ऊपर प्रतिपादित सिद्धान्त को देखते हुए ऐसा अर्थ लगाना न तो भरत-सम्मत है और न तर्कसंगत ही।

इस प्रकार हमने देखा कि शुद्धा जातियों के विकृत भेदों के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियों की निष्पत्ति मानना उचित नहीं है, क्योंकि:—

(१) शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेदों की संख्या विपुल है, उनके परस्पर 'संसर्ग' से विपुलतर संसर्गज रूपों का निर्माण हो सकता है, किन्तु भरतोक्त एकादश संख्या में मर्यादित संसर्गज रूपों के साथ इन अमर्यादित संसर्गों का सम्बन्ध जोड़ना भरत-सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

(२) एकादश संसर्गज रूपों के निर्माण में किस शुद्धा जाति के किस 'विकृत' भेद का संसर्ग में उपयोग करना है, इसका कोई भी संकेत कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

(३) भरतोक्त 'पुनरेवाशुद्धकृता' (समवायात्) से भी यही अर्थ निकलता है कि 'शुद्धा' जातियों के विकृत भेद बनाने की जो विधि बताई गई है, उससे भिन्न विधि द्वारा एकादश 'अन्य' जातियों का निर्माण अभिप्रेत है और वह भिन्न विधि यह है कि 'समवाय' द्वारा 'शुद्धा' जातियों को समूहबद्ध करके उनके 'शुद्धत्व' को भंग किया जाए। अस्तु। जिन जातियों के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियां निष्पन्न होती हैं उनका विवरण भरत ने इस प्रकार दिया है।

स्यात् षड्जमध्यमाभ्यां निर्वृत्ता षड्जमध्यमा जातिः।
पाड्जीगान्धारीभ्यां धैवत्याश्चापि या विनिष्पन्ना॥
संसर्गाद्वा विज्ञेया षड्जोदीच्यवा जातिः।
षाड्जीगान्धारीभ्यां सम्भूता षड्जकैशिकी जातिः॥
षाड्जीगान्धारीभ्यां धैवत्याश्चापि मध्यमया या।
निर्वृत्ता या जातिः सा मध्यमोदीच्यवा नाम्ना॥
गान्धारीपञ्चमीभ्यां नैषादीमध्यमाभ्यां च।
रक्तगान्धारी नाम जातिः स्यात्पञ्चसाभिस्ताभिः॥
गान्धारीषड्जाभ्यां संसर्गाज्जायते चान्ध्री।
गान्धारीपञ्चमीभ्यामार्षभीभ्यां चैव नन्दयन्ती तु॥
गान्धारीपञ्चमीभ्यां जाता गान्धारपञ्चमी जातिः।
नैषाद्यार्षभीभ्यां पञ्चम्याश्चैव संसर्गात्॥
कार्मारवी नाम्ना जातिः पूर्णा हि भवति चेयम्।
धैवत्यार्षभीहीना पञ्चाद्याः कैशिकीं कुर्युः॥
[ना० शा० २८।४५-५२]

नीचे दी हुई तालिका से यह विवरण स्पष्ट हो जायगा।

संसर्गजा विकृता जातियाँ	ग्राम	किन शुद्धा जातियों के संसर्ग से बनी हैं ?
१—षड्जमध्यमा	षड्ज	षाड्जी + मध्यमा
२—षड्जोदीच्यवा	,,	षाड्जी + गान्धारी + धैवती
३—षड्जकैशिकी	,,	षाड्जी + गान्धारी
४—गान्धारोदीच्यवा	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी + धैवती + मध्यमा
५—मध्यमोदीच्यवा	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + धैवती + मध्यमा
६—रक्तगान्धारी	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + नैषादी + मध्यमा
७—आन्ध्री	मध्यम	गान्धारी + षड्जा
८—नन्दयन्ती	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + आर्षभी
९—गान्धारपञ्चमी	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी
१०—कार्मारवी	मध्यम	नैषादी + आर्षभी + पञ्चमी
११—कैशिकी	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी + मध्यमा + पञ्चमी + नैषादी

अष्टादश जातियों के लक्षण

जाति के दश लक्षणों पर हम विस्तार से विचार कर चुके हैं। साथ ही जातियों के शुद्ध विकृत भेदों तथा संसर्गज विकृत भेदों की परस्पर भिन्नता भी हम देख चुके हैं। अब अट्ठारहों जातियों के ग्रह-अंश न्यासादि लक्षणों का विवरण क्रमप्राप्त है। पाठकों के सौकर्य के लिए हम भरत, दत्तिल, मतंग, नान्यदेव तथा शार्ङ्गदेव के अनुसार सभी जाति-लक्षणों का एक ही सारिणी के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे एक ही दृष्टि में इन ग्रन्थकारों का मतैक्य अथवा मतभेद स्पष्ट हो जाएगा। जहां सबका मतैक्य है, वहां कोई संकेत नहीं दिया गया है। किन्तु जहां कहीं जिस किसी ग्रन्थकार का मतभेद है, वहां द० = दत्तिल शा० = शार्ङ्गदेव म० = मतंग ना० = नान्यदेव इन संक्षिप्त संकेतों के साथ मतभेद दिखा दिया गया है। भरत का मत प्रत्येक कोष्ठक में सर्वप्रथम दिया है, अतः भरत के लिये प्रायः किसी संकेत का प्रयोग नहीं किया गया है। *जहाँ कहीं ऐसी स्थिति है कि कोई लक्षण केवल भरत में ही प्राप्त होता है वहाँ 'भ०'* संकेत रखा गया है। जहां नाट्यशास्त्र के निर्णयसागर संस्करण तथा काशी संस्करण में पाठभेद के कारण लक्षणों में भिन्नता पाई गई है, वहां क्रमशः 'नि०' तथा 'का०' इन संकेतों का उपयोग किया गया है। विशेषोल्लेख के स्तम्भ (कॉलम) में मूर्च्छनाओं का जो उल्लेख है, उसे मतंग तथा शार्ङ्गदेव के जाति प्रकरण के अन्तर्गत स्पष्ट किया जायेगा।

इस प्रकार अष्टादश जातियों में ६३ ग्रह-अंश, २१ न्यास, ५६ अपन्यास तथा अल्पत्व बहुत्व आदि अन्य लक्षण निम्नोक्त सारिणी में एकत्रित रूप से प्रस्तुत हैं।

क्र. सं. जाति नाम	ग्राम	ग्रह-अंश	न्यास	अपन्यास	अल्पत्व-बहुत्व	षाडव-औडव भेद	विशेषोल्लेख
१ षाड्जी	षड्ज	षड्ज, मध्यम गान्धार पञ्चम, धैवत।	षड्ज	गान्धार, पञ्चम।	भ० ऋषभ-निषाद का अल्पत्व, भ० षड्ज, गान्धार और षड्ज, धैवत का सञ्चार।	'नि' लोप से षाडव, 'नि-प' लोप से औडव।	शा० जब गान्धार अंश तब निषाद का लोप नहीं। भ० जब संपूर्ण तब ऋषभ, पञ्चम और निषाद-पञ्चम का अल्पत्व। शा० भ० मूर्च्छना धैवतादिका।
२ आर्षभी	षड्ज	ऋषभ निषाद, धैवत।	ऋषभ	ऋषभ, निषाद, धैवत।	निषाद का अल्पत्व, ना. गान्धार-निषाद का बहुत्व, पञ्चम का अल्पत्व, भ० निषाद-पञ्चम का अल्पत्व, भ. ऋषभ-गान्धार की संगति	निषाद हीन षाडव निषाद-पञ्चम हीन औडव भ ना. षड्जहीन षाडव, षड्ज-पञ्चमहीन औडव।	शा० भ० मूर्च्छना पञ्चमादि।
३ गान्धारी	मध्यम	षड्ज, गान्धार मध्यम पञ्चम निषाद।	गान्धार	षड्ज, पञ्चम भ० षड्ज मध्यम द० षड्ज, पञ्चम।	ऋषभ, धैवत का अल्पत्व, भ० द० 'धैवत से ऋषभ पर जाए' (?)	ऋषभ लोप से षाडव ऋषभ धैवत लोप से औडव, ना० शा० द० ऋषभ, पञ्चम लोप से औडव।	शा० जब पञ्चम अंश, तब पूर्णावस्था, जब निषाद, षड्ज, मध्यम अंश, तब संपूर्ण और षाडवा, जब गान्धार अंश तब पूर्ण षाडव (?) भ० ऋषभ धैवत की संगति। शा० भ० धैवतादि मूर्च्छना।
४ मध्यमा	,,	षड्ज, ऋषभ मध्यम पञ्चम, धैवत।	मध्यम	षड्ज, ऋषभ, मध्यम, पञ्चम, धैवत।	भ. शा. द. षड्ज, मध्यम का बहुत्व तथा गान्धार का अल्पत्व।	गान्धार लोप से षाडव, गान्धार-निषाद लोप से औडव।	शा० मूर्च्छना ऋषभादि।

५ पञ्चमी	,,	ऋषभ, पञ्चम म. पाठ भेद—ऋ. धै.	पञ्चम	(नि) पञ्चम, निषाद (का.) निषाद, पञ्चम, ऋषभ, ना शा म पञ्चम, ऋषभ, म. पाठभेद—'प म'।	निषाद का अल्पत्व, शा न. द. म. षड्ज गान्धार मध्यम का अल्पत्व, पञ्चम, ऋषभ का बहुत्व।	गान्धार लोप से षाडव, गान्धार, निषाद लोप से औडव।	शा० जब ऋषभ अंश, तब औडवावस्था नहीं, शा० पूर्णावस्था में 'ग-नि' संगति, षाडवावस्था में नहीं। म 'नि-म' संगति। शा. मूर्च्छना ऋषभादि। म० पाठभेद— रि-म' संगति।
६ धैवती	षड्ज	ऋषभ, धैवत।	धैवत	ऋषभ, धैवत, मध्यम।	षड्ज, पञ्चम का अल्पत्व म. आरोह में धैवत ऋषभ का लघन।	षड्ज-पञ्चमहीन औडव, शा म. पञ्चमहीन षाडव।	शा. म. मूर्च्छना ऋषभादि
७ नैषादी	,,	निषाद, ऋषभ, गान्धार।	निषाद	निषाद ऋषभ, गान्धार।	षड्ज-पञ्चम का अल्पत्व, शा० स म प ध' का अल्पत्व।	पञ्चम लोप से षाडव, षड्ज-पञ्चम लोप से औडव।	म० पूर्णावस्था में 'प० गा. म. प.' का. अल्पत्व औडवावस्था में मध्यम धैवत का अल्पत्व। शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
८ षड्ज-मध्यमा	षड्ज	सातो स्वर	षड्ज, मध्यम	सातो स्वर।	निषाद का अल्पत्व, द० जब 'गा' अंश न हो तभी 'नि' का अल्पत्व, म. पूर्णावस्था में नि गा. का अल्पत्व।	निषाद लोप से षाडव, गान्धार निषाद लोप से औडव।	म सभी स्वरो का सञ्चार म निषाद गान्धार गति-स्यकारी (?), शा म. मूर्च्छना मध्यमादि।
९ षड्ज-कैशि-की	,,	षड्ज, गान्धार, पञ्चम,	गान्धार	षड्ज, पञ्चम, निषाद।	ऋषभ धैवत का अल्पत्व, शा. म. ऋषभ मध्यम का अल्पत्व, धैवत, निषाद का 'अल्प-बहुत्व', द. ऋषभ का अल्पत्व।	नित्यपूर्ण।	शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।

सं. जाति नाम	ग्राम	ग्रह-अंश	न्यास	अपन्यास	अल्पत्व-बहुत्व	षाडव औडव भेद	विशेष
१० षड्जो दीच्यवा	,,	षड्ज, मध्यम, निषाद, धैवत	मध्यम	धैवत ऋषभ ना. म. द. धैवत षड्ज।	गान्धार का बहुत्व, शा. द. मन्द्रगान्धार का बहुत्व।	ऋषभ लोप से षाडव, ऋषभ-पञ्चम लोपसे औडव।	शा. षड्ज, ऋषभ का तारस्थान में भूरि-प्रयोग, तारगत ऋषभ का बहुत्व, मन्द्रगत ऋषभ का अल्पत्व, जब धैवत अंश, तब षाडव नहीं। शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
११ कैशिकी	मध्यम	षड्ज, गान्धार, मध्यम पञ्चम, धैवत, निषाद ना. म. द. (?)	गान्धार निषाद, कभी २ पं० भी (जब 'धनि' अंश, हो) ना. गान्धार शा.म. द गा. पं.नि.	षड्ज, पञ्चम, निषाद, कदाचित् ऋषभ भी, ना. प. पं.नि., शा.प.गा म.प. धै.-नि. मतंग जब धैवत अंश, तब ऋषभ अपन्यास।	ऋषभ, धैवत का दौर्बल्य, शा. ऋषभ का दौर्बल्य, प. नि. का बाहुल्य, भ. प. प. का बाहुल्य, भ. सब स्वरों का संचार।	नित्यपूर्णा शा. म. ऋषभ लोप से षाडव, ऋ. धै. लोप से औडव।	शा.म. मूर्च्छना गान्धारादि।
१२ कार्मारवी	,,	पञ्चम, ऋषभ, निषाद, धैवत द. पञ्चम के स्थान पर मध्यम	पञ्चम	पञ्चम, ऋषभ, निषाद, धैवत।	गान्धार का बहुत्व।	नित्यपूर्णा	शा. म. मूर्च्छना [illegible]-आदि।
१३ आन्ध्री	,,	पञ्चम, ऋषभ, गान्धार, निषाद	गान्धार	पञ्चम, ऋषभ, गान्धार, निषाद।	गान्धार ऋषभ की संगति। भ. धैवत, निषाद की भी संगति।	षड्ज लोप से षाडव।	शा. म. मूर्च्छना मध्यमादि।
१४ रक्त गांधारी	,,	पञ्चम, ऋषभ, गान्धार मध्यम, निषाद, ना. द. पञ्चम के स्थान पर षड्ज शा.ष गां.म. प. नि मत ष प.गां,म नि,	गान्धार	मध्यम, ना. षड्ज पञ्चम, कदाचित् मध्यम भी, जब धै. नि. अंश, तब पञ्चम अपन्यास, कभी ऋषभ भी।	भ. शा. व नि. धै. का बहुत्व, भ. द. षड्ज-गान्धार का सञ्चार, म० पूर्णावस्था में ऋषभ धैवत का अल्पत्व।	ऋषभ, लोप से षाडव ऋषभ, धैवत लोप से औडव।	शा. जब पञ्चम अंश तब षाडवत्व नहीं। शा. म. मूर्च्छना ऋषभादि।

क्र. सं. जाति-नाम	ग्राम	ग्रह-अंश	न्यास	अपन्यास	अल्पत्व-बहुत्व	षाडव औडव भेद	विशेष
१५ मध्यमो दीच्यवा	मध्यम	पञ्चम, शा. षड्ज, मध्यम	मध्यम	भ. म. ना. षड्ज धैवत।	गान्धार का बहुत्व शा. ऋषभ का अल्पत्व, मन्द्र स्थान में गान्धार का बहुत्व।	भ. ऋषभ रहित षाडव शा. म. नित्यपूर्णा।	शा. म. मूर्च्छना मध्यमादि।
१६ गान्धार पञ्चमी	,,	पञ्चम	गान्धार	ऋषभ, पञ्चम।	गान्धार, पञ्चम द्वारा संचार। शा. 'रि-म' संगति।	म. नित्यपूर्णा शा. ना. द. । (?)	शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
१७ गांधारो दीच्यवा	,,	षड्ज मध्यम म. पाठभेद में अंश पञ्चम(?)	मध्यम	भ. शा. षड्ज धैवत, ना. ऋषभ धैवत।	भ० गान्धार का बहुत्व। ना. ऋषभ का अल्पत्व, मन्द्र स्थान में गान्धार का बहुत्व।	ऋषभ लोप से षाडव।	शा. म. मूर्च्छना ऋषभादि
१८ रक्त-गान्धारी	,,	गां. ग्रह, पं. अंश, ना. पञ्चम ग्रह अंश।	गान्धार	ना. भ. मध्यम, म. द. शा. मध्यम, पञ्चम।	भ० 'ऋ गां.' तथा 'धै. नि.' का सञ्चार, म. द शा. मन्द्र ऋषभ का बाहुल्य, 'भ.' मन्द्र ऋषभ का लंघन (?) द. क्वचित् मन्द्र ऋषभ का लंघन।	षड्ज लोप से षाडव।	शा. म. मूर्च्छना हृष्यका

जातियों के स्वर-रूप

शुद्धा जातियाँ

भरतोक्त अट्ठारह जातियों में स्वर-रूप निष्पन्न करने के लिए शुद्धा जातियों और संसर्गजा विकृता जातियों पर पृथक्-पृथक् विचार करना आवश्यक है। प्रथम शुद्धा जातियों को ले लें।

शुद्धा जातियों के लक्षणों में से केवल न्यास-स्वर ही अपरिवर्त्तनशील होने के कारण वही उनके स्वर-रूप का नियामक है यह हम ऊपर (पृ० १४, १५ पर) देख चुके हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार षड्जग्राम की चार और मध्यमग्राम की, तीन शुद्धा जातियों के संक्षिप्त स्वर-रूप नीचे प्रस्तुत हैं।

इन जातियों के जो स्वर-विस्तार नीचे दिये जा रहे हैं, उनमें भिन्न २ ग्रह-अंशादि का विनियोग करने में विशेष दृष्टि यह रखी गई है कि ये स्वर-विस्तार उसी प्रकार गायन-वादन-उपयोगी बन सकें जिस प्रकार कि हमारे आज के रागों में ग्रह-अंश-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं।

षड्जग्राम की शुद्धा जातियाँ

१. षाड्जी

षाड्जी का शुद्ध रूप षड्जग्राम के षड्ज को ही ग्रह, अंश, न्यास तथा अपन्यास मानने से बनता है। 'षड्ज' न्यास होने से षड्जग्राम की मूल स्वरावलि का ही इसमें उपयोग होता जो कि काफी सदृश है। 'सदृश' कहने का तात्पर्य यह है कि काफी में ऋषभ चतुःश्रुति और गान्धार-निषाद षट्श्रुति हैं, किन्तु इसमें ऋषभ त्रिश्रुति और गान्धार निषाद पञ्चश्रुति हैं। यदि इसी स्वरावलि को तानपुरे का पहला तार पंचम में मिलाकर प्रयुक्त करेंगे या वीणा पर षड्जग्राम के मध्यम को परंपरानुसार षड्ज मानकर वादन करेंगे तो हूबहू आधुनिक काफी के ही स्वरान्तर प्राप्त हो जाएंगे। इन दोनों स्वरावलियों में श्रुत्यन्तर का भेद होने पर भी सुनने में स्थूल मान से दोनों एक सी ही प्रतीत होंगी। इसीलिए 'सदृश' कहा है। अस्तु। षाड्जी के शुद्ध रूप का स्वर-विस्तार निम्नोक्त है :—

सा, सारिसा, सारिग्, सारिसा, रिसाग्रिग्, सारिसा, सारिग्मग्रिग्, सारिसा, सारिपमग्रिग्, सारिसा, ग्रिग्, सारिपमग्रिग्, सारिसा, सागरिग् सारिपमग्रिग्, सारिसा, सागमप मग्रिग् रिसा।

अथवा

सा ऽऽ नि॒ ध॒ सा, सा ऽ नि॒ ध॒ प॒, ध॒ प॒ ध॒ सा, ध॒ नि॒ ध॒ सा, प॒ ध॒ प॒ सा ऽऽ नि॒ ध॒ सा, सारिग् [सा] रि ग ऽऽ सा, प॒ ध॒ सा रि [म] ग ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, सारिमग ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, प॒ ध॒ सा रि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, सारिमग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, नि॒ ध॒ सा ऽऽ ग् रि ग् ऽऽ [सा] रि ग् ऽ सा, सा नि॒ ध॒ प॒ ध॒ सा रि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, ग्मग्रिसारि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा।

सागमग् ऽ गमपग्, धमपग् ऽ निधप ऽ धमप ऽ पधमग्, मधप ऽ प ध ग्, पमधप ऽ पधऽमग् [सा] रि ग् ऽ सा।

सा ऽऽ ग्मपधसां, सां नि॒ ध सां, सां नि॒ ध प धसांऽ सां ऽऽ नि॒ धपम ऽ धपमग्, सागमप ऽ धपमग् ऽ मग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा।

अथवा

सा ऽ नि॒ ध॒ सा, सा नि॒ ध॒ प॒ ध॒ सा, ध॒ प॒ ध॒ म॒ प॒ ध॒ सा, नि॒ ध॒ सा, प॒ ध॒ प॒ सा ऽऽ नि॒ ध॒ सा, सारि म ग॒ ऽ सा, प॒ ध॒ सा रि म ग ऽ सा, सा नि॒ नि॒ ध॒ धप॒ पध॒ धसा सारि म ग॒ ऽ सा, मगरिसारि म ग॒ ऽ सा, ग॒रिसानि॒धप॒ पधसारिग॒ ऽ सा।

षाड्जी में 'सागमपध' से पाच ग्रह अंश कहे गए हैं। शुद्धा जातियो के लक्षणो मे से किसी एक, दो या अधिक लक्षणो के परिवर्तन से उनके विकृत रूप बनते हैं। क्रियाकुशल गुणियो को यह समझने मे कठिनाई नही होगी कि एक ही स्वरावली में भिन्न २ स्वरो पर कम या अधिक ठहराव करने से, इन स्वरो को बहुल या अल्पत्व देने से उसी एक मे से कितने भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। त्रिवेणी, टंकी, रेवा, विभास अथवा देशकार, भूप, शुद्धकल्याण, जैतकल्याण आदि राग इस प्रकार के परिवर्तन से बनने वाले भिन्न-भिन्न रूपो के उदाहरण-स्वरूप, गुणियों को विदित हैं। उसी प्रकार इस शुद्धा षाड्जी जाति के ग्रह अंशो के परिवर्तन से, षाडव-भेद से, अपन्यास बदलने से भिन्न-भिन्न रूप बनेंगे जिन में हमारे आज के प्रचलित रागो से निकटतम साम्य दिखाई देगा। इस के कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं:—

गांधार को ग्रह अंश मानने से—

गगरिसारिग॒, रिरिसानि॒सा ग॒, सानि॒ ध॒ प॒ ध॒-सारिग॒, साग॒मग॒ पमपग॒, साग॒मपग॒, प॒नि॒साग॒, प॒नि॒साग॒मपग॒, ग॒मपनि॒सा गऽऽमग॒, मपधग॒, मग॒ ऽ पग॒ ऽ मग॒ ऽ सारि ऽ सा।

मध्यम ग्रह-अंश मानने से

ग॒ साग॒ सा म, सानि॒रिसा सा म, ममग॒रिग॒म, मग॒रिसानि॒साम, धनि॒ ध॒ सा नि॒ रिनि॒ सा म, मग॒ सा ग॒रि सा रिसा सा म, मधनि॒ सा म, मपधऽम, धपपऽम मग॒रिग॒म ऽ पपऽम निधपधऽम, मपधऽ पधनि॒धऽम, मग॒रिसा म, मग॒रिसा।

पञ्चम ग्रह-अंश मानने से

सारिग॒मप, प॒धसारिगमप, पमग॒रिसानि॒धप प, पमप, धमप, मधप, ग॒मधप, मग॒साग॒मधप, पमग॒साग॒मधप, पमधप, पमधप, सानि॒रिसा मगपम प, मग॒रिसा।

धैवत ग्रह-अंश मानने से

धनि॒सा ऽ धनि॒ध ऽ धनि॒धमा = धनि॒ध॒, धनि॒रिसा ऽऽ धनि॒ध, धनि॒ग॒रि ऽ धनि॒ध॒, धनि॒सारिग॒ ऽ सा ऽ धनि॒ध, धधसारिगऽसा ऽ ध नि॒ ध, प ध ऽ पधनि॒ध मपध ऽ पधनि॒ध, धसानि॒ध, धनि॒ सारिग॒ ऽ रिसानि॒ ध, धनि॒ ध ध, धनि॒पध, मधपनि॒ध, मपध पधनि॒ध, ग॒मप मपध पधनि॒ध, रिग॒म ग॒मप मपध पधनि॒ध, धनि॒धसा ऽ धनि॒ध, सानि॒धपमग॒रिसानि॒ध, धनि॒सारि म ग॒ ऽ सा।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'गमपध' ये भिन्न-भिन्न ग्रह-अंश होने पर भी प्रस्तुत स्वररूपो का आरंभ प्रायः 'सा' से ही क्यो किया गया है? उन-उन स्वरो से क्या नही किया गया? इसका उत्तर यही है कि षड्ज का प्रथम उच्चार तो किसी भी स्वरावली के आरंभ मे स्वरो के परस्पर अन्तराल निश्चित करने के लिए आवश्यक होता है। किन्तु षड्ज का यह प्रथमोच्चार उस ग्रह के रूप में स्थापित नही करता, क्योंकि प्रस्तुत रूपविशेष के निर्माण में जो स्वर प्रथम स्थान पाता है तथा केन्द्रबिन्दु बनता है, वही ग्रह अंश है। 'सा' का प्रथमोच्चार (स्वर-सप्तक के नियामक के रूप में) होने पर भी वही ग्रह-अंश हो ऐसा आवश्यक नही है। आज के रागो के एक दो उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

'सा' तो सभी रागों में प्रयोगोचार अनिवार्य होता है, किन्तु जयजयवन्ती में 'धृनि रि' इस रागवाची स्वरयोजना का आरम्भ स्वर 'धृ' है, तद्नुसार यहाँ मन्द्र निषाद आरम्भ स्वर होता है। पुनः पाड्जी के भिन्न २ ग्रह स्वरों पर विचार करें तो यह कहना होगा कि यदि 'गुमध' को क्रमशः षड्ज का स्थान दो मानें तो प्रत्येक बार स्वरान्तर बदल जायेंगे। किन्तु यहाँ तो एक ही स्वरावली में से (स्वरान्तराल अपरिवर्तित रखते हुए) केवल ग्रह स्वर स्थान परिवर्तन से या पाडव औडव भेद से भिन्न २ विकृत भेद बनाना वांछित है।

पाडव भेद

पाड्जी के लक्षणों में ऋषभ निषाद का अल्पत्व कहा है और निषाद का वर्ज्य कर के पाडव रूप बनाने का विधान है। तदनुसार पाड्जी का पाडव रूप कुछ इस प्रकार होगा —

सागुपगुसा, गुसारिसा गुगामरिसा, पुगुमारिग्‌सा सारिमगध, पपसां, सांप, पधगा, रिंसांधप, मगृरिसा, धसारि।

पाड्जी का औडव रूप 'प नि' वर्ज्य कर के बनाने का विधान है। तदनुसार आभोगी का सा कुछ ऐसा निम्नलिखित रूप बनेगा —

सा, धु सा, धसारिग् ऽ रि ऽ सा सारिग ऽ म गुमरि ऽ सा सारिगुमध, धमग् ऽ मरि ऽ सा मारि ऽ मधसा, साम ऽ मधसां मगृरिगुमधसा माध ऽ म, मधसांध ऽ म गुमधसां ध ऽ म, रिगुमध ऽ म, गुमरि ऽ सा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अल्पत्व या बहुत्व प्रायः सवादी स्वर जोड़ियों का ही होता है। 'रि-नि' इन्हें संवादी जोड़ी नहीं है। किन्तु 'पाड्जी' में यही दो स्वर ऐसे हैं जो ग्रह अंशों में स्थान नहीं पाते हैं। सम्भवतः इसीलिए इन्हीं का अल्पत्व कहा गया हो। यदि ऋषभ के साथ-साथ उसके संवादी धैवत का अल्पत्व माना जाता तो आज के रागरूप प्राप्त हो जाते। यथा भीमपलासी, सुहा कानी आदि। किन्तु 'रि नि' के अल्पत्व का विधान होने से इन रागरूपों को यहाँ स्थान नहीं दिया जा सका है। यदि ऋषभ के अल्पत्व का नियम न होता तो काफी, शुद्ध धैवत के बागेश्री, सिन्धूरा आदि कई अन्य रागरूप भी प्राप्त होते। जो भी हो, हमने ग्रन्थों में उल्लिखित नियमानुसार यथासम्भव ऋषभ-निषाद का अल्पत्व रख कर स्वर विस्तार बना दिए हैं।

२. आर्षभी

इसका न्यास स्वर षड्जग्राम का ऋषभ है। उस ऋषभ से प्राप्त मूर्च्छना का रूप इस प्रकार है —

रि — ग — म — प — ध — नि — सा — रि
— २ — ४ — ४ — ३, २ — ४ — ३ —

ऋषभ को षडज मानने से नीचे लिखा भैरवी का सा रूप प्राप्त होगा —

सा — रि — ग् — म — प — ध — नि् — सा
२ — ४ — ४ — ३ — २ — ४ — ३ —

ग्रह अंश — षड्जग्राम की मूल स्वरावलि के अनुसार ऋषभ धैवत निषाद को इस जाति में ग्रह-अंश बनाया गया है। प्रस्तुत मूर्च्छना में यही स्वर क्रमशः 'सा' 'प' और 'ध्' का स्थान पाते हैं। अतः 'सा' 'प' 'ध' इस जाति में ग्रह अंश बनेंगे।

अल्पत्व — इस जाति में षड्जग्राम के पञ्चम का अल्पत्व कहा गया है। प्रस्तुत मूर्च्छना में 'पञ्चम' ही 'मध्यम' बन जाता है। अतः मध्यम का इस जाति में अल्पत्व होगा।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'आर्षभी' के ग्रह-अंश 'ऋषभ धैवत निषाद' का षड्जग्राम की मूल स्वरावलि के साथ तादात्म्य क्यों स्थापित किया गया है ? न्यास स्वर ऋषभ से जो मूर्च्छना बने, उसमें जो 'ऋषभ धैवत निषाद'

प्राप्त हो, उन्ही का ग्रहण क्यों न किया जाए ? षड्जग्राम की मूल स्वरावली के 'ऋषभ-धैवत-निषाद' प्रस्तुत मूर्च्छना में क्या स्थान पाते हैं, यह क्यों देखा जाए ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जिस प्रकार न्यास स्वर का ग्राम के मूल स्वर विशेष के साथ तादात्म्य स्थापित किया जाता है और उसी स्वर से मूर्च्छना बनाई जाती है, उसी प्रकार ग्रन्थस्थ ग्रह-अंशो का स्थान भी ग्राम के मूल स्वरो मे ही समझना चाहिए। और तदनुसार उस मूर्च्छनाविशेष मे उनका स्थान निर्धारित करना उचित है। 'न्यास' को तो ग्राम को मूल स्वरों मे से एक मानना ही होगा क्योंकि वैसा माने बिना उसे 'जाति' के स्वर-रूप के नियामक का स्थान नही दिया जा सकता। यही नियम 'ग्रह-अंश' के लिए भी लागू करना उचित है। इसे एक उदाहरण से समझ लें। शुद्धा जातियो की शुद्धावस्था मे उनका नाम स्वर ही ग्रह, अंश, न्यास होता है। आर्षभी के शुद्ध रूप में ऋषभ ही ग्रह-अंश, न्यास होगा। ऋषभ के न्यासत्व के कारण हमने षड्जग्राम के ऋषभ की मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावलि को आर्षभी जाति के स्वर-रूप का आधार मान लिया। अब नियमानुसार ऋषभ को ही 'ग्रह-अंश' भी बनाना है। तन्निमित्त षड्जग्राम के मूल ऋषभ का ही यहाँ भी ग्रहण करना होगा, तभी एक ही स्वर (नाम स्वर) मे न्यासत्व तथा ग्रह-अंशत्व की प्रतिष्ठा हो सकेगी। किन्तु यदि ग्रह अंश ऋषभ को ग्राम की मूल स्वरावलि में से ग्रहण न कर के मूर्च्छना के ऋषभ को ग्रह-अंश का स्थान देंगे तो एक ही 'नामस्वर' को 'न्यास' 'ग्रह' 'अंश' बनाने का नियम नही रह पाएगा। क्योंकि 'न्यास' (ग्राम का मूल ऋषभ) तो मूर्च्छना का षड्ज बन चुका है। इसीलिए 'न्यास' तथा 'ग्रह अंश' को ग्राम के मूल स्वरो में से ही अन्यतम मान कर प्रस्तुत मूर्च्छना मे उनका स्थान निर्धारित करना उचित है। इसी नियमानुसार अपन्यास तथा अल्पत्व-बहुत्व का भी प्रस्तुत मूर्च्छना मे स्थान-निर्धारण किया गया है। और इसी प्रकार अन्य जातियो में किया जाएगा।

आर्षभी का शुद्ध रूप

षड्जग्राम के ऋषभ को ही ग्रह, अंश, न्यास मानने से जो रूप बनेगा, वही इस जाति का शुद्ध रूप है। (ऋषभ ही इस मे षड्ज का स्थान पाता है।)

सारिसा, सारिग ऽ सारि्सा, साग्रि्ग्रि् ऽ सारि्सा, सानि् धु सा, सारि्गम मग्रि्सा, सारि्गमग ऽ सारि्सा, सारिगम रि्गमप गमपधप, मगऽ सारि्सा, सापमधपऽ मगऽ सारि्सा, सारि् सागऽ साम गपऽ साध पमग् ऽ सारिसा, सारिगमपधपऽ पमपधपऽ, पधनिसांऽ सांनिधपऽ धपमग् ऽ पमग्रि् ऽ मग्रि्सा। सारि्गमपधनि्सां ऽ सांनि्धपमग्रिसा सा सांऽ नि्धप मग्रि्सा। सानि् रि्सा ग्रि् मग् पम धप नि्ध सानि् रिंसांऽनि्धप मग्रिसा।

ग्रह-अंश-परिवर्तन से निष्पन्न विकृत रूप

(क) षड्जग्राम का धैवत यानी आर्षभी का पञ्चम ग्रह-अंश

साऽपुध्ऽप, पुप्मध् ऽप, पुध् नि् धुऽप, पुध नि् साऽ पुध ऽप, पुमप् ऽ पुध्सा। पुध् नि् सा ऽ सानि् धु् प, पुप् नि सारिसाऽ नि् धु्ऽपु, पुग्ऽमग्रिसा ऽ नि् धु पु, पमुधु पु ऽऽ पमधप ऽ मग्रि्सा, साप, धुपध्मधप, पधनि्धुप, पमपध्प, पधनि्सां ऽ पधुप, ध्पमग्ऽ पमग्रि्ऽ मग् रि्सा।

(ख) षड्जग्राम का निषाद यानी आर्षभी का धैवत ग्रह-अंश

नि्- धु्ऽ धु- नि्धु, धसा ऽ धुऽ धुरि् ऽ नि्धु्, धुसारिमऽ मग्रि्नि धुऽऽधु सारिमपध् ऽ धमगरिनि् धु्ऽसा। धुसाधु गारिमपधुऽ धुनि् सारि्मपध, धुनि सारिग्मपध, धुसाऽ नि्रि्ऽ सागऽरिमऽगपऽमधऽऽधपनध, धपनि्धुऽधमपनि्धऽ धमपसां नि् धुऽ धसांरि्धु्, धप निधऽ धन धप निधऽ धऽमग्रि नि धु रिसा।

पाडव-औडव-भेद—आर्षभी मे षाडव-औडव भेद बनाने के लिए क्रमश. षड्ज और षड्ज-पंचम का त्याग करने को दत्तिल, मतंग और शार्ङ्गदेव ने कहा है, और भरत के वर्तमान उपलब्ध पाठ में 'नि-ग' के त्याग का विधान

मिलता है। संभवत. यह पाठ भ्रष्ट होगा और मतंग,दत्तिल तथा नान्यदेव को भरत का शुद्ध पाठ मिला होगा। यहां यह स्मरणीय है कि ओडव रूप बनाने के लिए विभिन्न जातियों में जिन-जिन स्वर-जोडियों का त्याग करने को कहा है, वे सवादी जोडियां ही होनी हैं। 'प-नि' कोई सवादी जोडी नहीं है। इसलिए दत्तिल, मतंग और नान्यदेव ने जो 'सा-म' कहा है उसी को ग्राह्य मान कर हम इस जाति के षाडव-ओडव रूप दे रहे हैं। षड्जग्राम के 'सा-म' ही आर्षभी जाति में 'नि-म' बन जाते हैं। तदनुसार 'नि' वर्ज्य षाडव और 'नि-म' वर्ज्य औडव रूप निम्नोक्त होंगे।

षड्जग्राम के 'सा' यानी आर्षभी के 'नि' लोप से षाडव रूप

सा-धसा, ध़सारिसा, सारिगऽ रिगरिऽसा, पधसारिगऽ रिगरिऽसा, सारिगऽ मगरिगरि ऽ सा, सारिगप ऽ मग रिगऽरिऽसा सधप प धपऽध, पधपधपऽप, पऽ मगरिगऽ रिऽसा। सारिगप धसां, धसांरिं गंरिं सां पधप मगरिगऽ रिऽसा।

षड्जग्राम के षड्ज को यानी आर्षभी जाति के निषाद को, जैसा ऊपर दिखाया है, वर्ज्य करने से वर्तमान विलासखानी तोडी सदृश रूप स्पष्टतया आविर्भूत होगा। 'सदृश' कहने का तात्पर्य यही है कि विलासखानी में निषाद का प्रयोग होता है और यहां निषाद वर्ज्य है। तद्वत् षड्जग्राम के षड्ज-मध्यम यानी आर्षभी जाति के निषाद-मध्यम के त्याग से भूपाल तोडी का पूर्ण रूप हमारे सामने खडा होगा। यथा :—

सारिगपधसां, सांधप पगरिसा, सारिग ऽ पग ऽ रिगरिसा, सारिगरिग ऽ रिगपगप ऽ गपधप ऽ रिगरि ऽ सा, सारिगपध ऽ, गरिगप ग ऽ पग, पधसां ऽ धसांरिं गंरिं ऽ सां, धसांरिं ऽ रिं गंरिं ऽ सां, धसांध ऽ प ऽ रिगरि ऽ सा।

३. धैवती

धैवती मे धैवत न्यास, ऋषभ धैवत ग्रह-अंश और ऋषभ-धैवत-मध्यम अपन्यास है। न्यास-स्वर धैवत के अनुसार निम्नलिखित मूर्च्छना बनेगी—

धैवत से आरंभ मूर्च्छना—	ध	नि	सा	रि	ग	म	प	ध
धैवत को षड्ज मानने से	सा	रि	ग	म	म	ध	नि	सां
प्राप्त स्वरावलि		२	४	३	२	४	४	३

ग्रह-अंश—धैवत-ऋषभ। षड्जग्राम का धैवत इस जाति की मूर्च्छना में षड्ज बनता है और ष० ग्राम का ऋषभ इसमें शुद्ध मध्यम बनता है। इस प्रकार षड्ज और मध्यम इसमें ग्रह-अंश है।

धैवती का शुद्ध रूप

षड्जग्राम के धैवत को ही ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास बनाने से धैवती का शुद्ध रूप बनेगा। यथा—

सा ऽऽ रिसा, सारिग ऽऽ रिगरिसा। सानिध ऽ सारिग, मगरिग ऽ रि ऽ सा। सारिगम ऽ मम ऽ ग ऽ रि ऽ सा, सारिगम धम ऽ म ▪ गरि ▪ सा, सारिगम धम ऽ मग ऽ रिसा, सारिगम धनिसां ऽऽ निधम ऽ म, मगरि ऽ सा।

अथवा

सारिगम ऽ रिग ऽ मगरिसा, सारिगम ऽ मगरिग ऽ मगरिसा। सारिगमध ऽऽ मगरिगम ऽऽ गमध, मगरिगमध ऽ, मग मरि मग धम ध ऽऽ मध ऽ मगरिग ऽ सारिगमधम ऽऽ मगरिसा। सारिगमधसां, सांनिरिं ऽ सां, सांनिसांरिंसां ऽ धनिसांरिंगंरिं, धनिसां धनिरिंसां सांध ऽ निध, मध ऽ मधसांध ऽ सांनिरिंसांध ऽ मध ऽऽ मधसांऽरिंगंरिं ऽ सां, सांनिरिं ▪ सां, धमध ऽ म मगरिग ▪ सारिग ऽऽ मगरि ऽ सा।

अथवा

सारिग् ऽऽ सारिसा, धनिसारि ऽऽ सारिसा, सारिग् ऽऽ मग ऽऽ सारिसा, रिसा गरि मग् ऽऽ सारिसा, सारिग् सारिम ऽ सारिसा, गमध ऽऽ म रिमध ऽ मग, मगरिगमध ऽ मग, गरिम धधनऽऽ मग, गरिसारि गम ऽऽ ग ऽऽ सारिसा, सारिगमध मध ऽऽ मधसां नि ध, सां सां नि नि ध, धनि रिंसां ऽऽ निध ऽऽ धनिसांरिंसांनिरिंसांऽऽनिध ऽऽ निधसां निरिं सां ऽऽ सारिंसां ऽऽ निध ऽऽ धमध ऽऽ म, रिगमध ऽऽ म, रिग ऽऽ सारिग ऽऽ मग ऽऽ सारिसा ॥

जैसे हम जानते हैं कि वसन्तमुखारी नाम के राग के पूर्वांग में भैरव और उत्तरांग में भैरवी के स्वर प्रयुक्त होते हैं, तद्वत् यहां धैवती जाति के जो दो 'शुद्ध' रूप दिये गये (द्वितीय और तृतीय) उनमें निम्नोक्त रागांग स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक में पूर्वांग में तोडी और उत्तरांग में भैरवी और अन्य में पूर्वांग में भैरवी और उत्तरांग में तोडी दिखाई देती है। साथ ही, दो मध्यम जहां-जहां 'मम्म' के रूप में एक साथ प्रयुक्त होंगे, वहां उतने समय के लिए ललित का आभास भी हो सकता है। यद्यपि आज के हमारे प्रचार में ऐसे कोई मिश्र रागरूप नहीं है, फिर भी धैवती के स्वरों में ये रूप ऐसे निखर रहे हैं कि गुणिजन इस प्रकार के मिश्रण की मधुरता और प्रियता को देखते हुए उसे प्रचारित करें तो कोई आश्चर्य नहीं। आजकल नवीन रागों के निर्माण अथवा प्रचार के मोह में अनेक संवादहीन राग अस्तित्व में आ रहे हैं, उनकी अपेक्षा तो मिश्रण की उपर्युक्त रीति अधिक समुचित और ग्राह्य है। अस्तु।

धैवती के विकृत रूप

षड्जग्राम का 'ऋषभ' यानी धैवती का 'मध्यम' ग्रह-अंश

सा, सारिमऽ, धनिरिऽमारिम, म ग रिऽ म, म ध मम, रि मऽ ध मम, रिमऽरिमऽ ध मऽम, मम्म ध म ध म, मम मध नि धऽ ध म म म, रि म ऽ रि म ऽ रि ध ऽ नि ध ऽ ध म ऽ म म ऽ, मम मध ऽ निध ऽ धम ऽ धम, म ग रिऽम, ग रि सा। सारि म ऽ मम ऽ मध सा, नि गं रि सां, ध नि गं रिं सां, सांनिरिं ऽ निध, मध ऽ निध ऽ म ऽ म, ग रि म ऽ ग रिम ऽ ग रिध ऽ म ऽ म, म ऽ म ऽ मग ऽ गरि ऽ रिसा साध ध नि ग रि सा।

ध्यान रहे कि जहां २ वक्र स्वरों का प्रयोग दिखाया गया है, वहां-वहां तदनुसार ही प्रयोग किया जाए, तभी वांछित रूप प्राप्त होगा।

पाडव-औडव-भेद — यह उल्लेखनीय है कि इस जाति की मूर्च्छना में मध्यम के दो रूप और पंचम का अभाव होने से यह स्वर-रूप वास्तव में षाडव ही है और संभवतः इसीलिए भरत ने इसका षाडव रूप बनाने का विधान नहीं दिया है। केवल ष० ग्राम के 'सा—प' (मूर्च्छना के 'ग—नि') वर्ज्य करके औडव रूप बनाने को कहा है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि षाडवित-औडवित इन जाति-लक्षणों का स्पष्टीकरण करते हुए भरत ने जातियों में "चतुःस्वरप्रयोगोऽपि देशापेक्ष प्रयुज्यते" यह कहकर चार स्वरों का प्रयोग भी विहित माना है। इस प्रकार प्रस्तुत रूप का औडव नामकरण होते हुए भी यह चार स्वरों की ही विशेष (विशिष्ट) रचना है।

औडव (चतुःस्वर) रूप

सा ऽ धसा, ध सारि ऽ सा, म ध सां, ध सारि ऽ सा, सारिम ऽ मरि ऽ सा, धसा सारि रिम ऽ मरि ऽ सा, धसारिसा सारिमरि म, मम्म ऽ रि ऽ म ऽ मम्म, मम्धम ऽऽ धम ऽऽ, रि ऽ म ऽ म ऽ म ऽ मम मध ऽऽ धम ऽऽ धम ऽऽ, मम मध ऽ धसांध ऽ मधसांरिं ऽ रिंसां ऽ सांध ऽ धम ऽ मम ऽ, रिमम ऽ म, रि ऽऽ सा।

इस स्वर-रूप को वृन्दवादन में प्रयुक्त करने से नाट्योपयोगी पार्श्वसंगीत द्वारा भावाभिव्यञ्जना में इसका विशेष उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार के प्रयोग में एक नमूने के रूप में इस स्वरावलि का निम्नलिखित लयबद्ध रूप प्रस्तुत है।

सा	—	—	—	ध॒	—	—	—	सा	—	—	—	ध॒	—	सा	—
रि॒	—	सा	—	म॒	—	ध॒	—	सा	—	—	—	ध॒	—	सा	—
रि॒	—	सा	—	सा	रि॒	—	—	म	—	—	—	म	—	रि॒	—
—	—	सा	—	ध॒	—	सा	—	सा	—	रि॒	—	रि॒	—	म	—
—	—	—	—	म	—	रि॒	—	—	—	सा	—	ध॒	सा	रि॒	सा
सा	रि॒	म	रि॒	म	—	—	—	म	म्	म	—	रि॒	—	म	—
म्	—	म	—	म	म्	ध	म्	—	ध	म	—	रि॒	—	म	—
म्	—	म	—	सा	—	रि॒	—	म	—	रि॒	—	रि॒	—	म	—
म्	—	म	—	म	म्	म्	ध्	—	ध्	म्	—	ध्	म	—	म्
म	—	—	—	रि॒	—	म	—	म्	—	म	—	म्	—	ध्	—
सां	—	—	—	सां	ध्	—	—	म्	म	—	—	म्	ध्	सां	ध
ध	सां	रिं॒	सां	रिं॒	सां	—	—	सां	ध्	—	—	ध	—	म्	—
म्	म	—	—	रि॒	—	म	—	म्	—	म	—	म	—	रि॒	—
—	—	सा	—	ध॒	सा	रि॒	सा	रि॒	—	म	—	रि॒	—	सा	—

४. नैषादी

इस का न्यास स्वर ष० ग्राम का निषाद है। तदनुसार निम्नलिखित मूर्च्छनारूप बनेगा:—

नि़ – सा – रि – ग – म – प – ध – नि
सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां
– ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ –

अर्थात् सरल आरोहावरोह रूप यह होगा —सारिगमपधनिसां सांनिधपमगरिसा।

ग्रह अंश—षड्जग्राम के 'निरिग' ये तीन स्वर इस में ग्रह अंश हैं। यही स्वर प्रस्तुत जाति की मूर्च्छना में क्रमशः 'सागम' का स्थान पाते हैं। अतः क्रमशः 'सागम' को ग्रह-अंश बताना होगा। यही तीन स्वर अपन्यास भी हैं।

अल्पत्व—षड्जग्राम के 'सा–प' अर्थात् नैषादी के 'रि-ध' का अल्पत्व है।

षाडव-औडव रूप—षड्जग्राम का 'सा' अर्थात् नैषादी का 'रि' वर्ज्य कर के षाडव रूप बनेगा और षड्जग्राम का 'सा-प' अर्थात नैषादी का 'रिध' वर्ज्य कर के औडव रूप बनेगा।

नैषादी का शुद्ध रूप

षड्जग्राम के निषाद को ही ग्रह अंश न्यास मानने से नैषादी का शुद्ध रूप बनेगा। (निषाद ही इस जाति में षड्ज का स्थान पाता है)

सा ऽ रिगरिसा, रिगमग ऽ रिगरिगा, सारिगम प ऽ मग ऽ रिगरिसा, सागमप ऽ धपमग रिसा, गमप गमधप मगरिसा, सा ऽ गमपधनिसां, सांनिधप मगरिसा, मगरिगमपनिसां, सा ऽ निधसां, धमपनिसां, धगम पनिसां, गमप ■ रिधसां, सां ऽ निधपमगरिसा।

अथवा

सा ऽ सानिमाग ऽ रिसा, सारिसानिसा ग ऽऽ रिसा, सानिरिमा ग ऽऽ रिसा, सानिसागमग ऽ रिसा, सानिसा गमग गमर ऽऽ मग, सागमग ऽ मग, साग गम मग ऽऽ रिसा, सागमप ऽ म, गमपनि ऽऽ धप ऽ म, पगमपनि ऽ धपम, सागमपनिसां ऽ पधपम ऽ, रिंसां ऽ निधपम ऽ, गमपमं ऽ गमधपम ऽ, गमनिधप ऽ म, सागमग ऽ प ऽ मग, पम ऽ पग ऽ मग ऽ रिसा।

अथवा

हेमकल्याण सदृश रूप

सापु ऽ सारिसा पु ऽ धु ऽ पु, सा ऽ निसा, साग ऽ मरि ऽ सा ऽ पु ऽ धुपु सा, सा ऽऽ गम गप ऽ पग ऽऽ मरि ऽऽ सा पु धु ऽ पुसा, सागमप ऽ धप ऽ सां ऽ प ऽ धप, ग ऽ मरि सा पु ऽ धप ऽ सा ऽ निसा।

अथवा

सावनीकल्याण सदृश रूप—

सा ऽ रिग सारिग ऽ सा, ग सारिग ऽ सा, साग सारिग ऽ सा, ममग रिग ऽ सा, गगरिसारि ग ऽ सा, सासनिपुनि ऽ रिरिसानिसा ऽ ग सारि ग ऽ सा, नि पुधु नि ऽऽ पु, पनिरग ऽ सारि ग ऽऽ सा, पधपप ऽ गमरिग ऽ सा सारिनिसा ऽ पधपप ऽ सांरिंनिसां ऽ पधपप ऽ गमरिग ऽ सारि ग ऽ सा, पुनि पुनि सा साग सारिग ऽऽ सा, सागमपनिसां ऽ नि पध नि ऽऽ प, धपप ऽ गम रिग ऽ सारि ग ऽ सा।

ग्रह-अंश-परिवर्तन से प्राप्त विकृत रूप

षड्जग्राम का ऋषभ यानी नैषादी का गान्धार ग्रह-अंश

सा, गमपनिऽसा, गमपनिसा गऽऽरिनिसा, गऽनिसाग, गरिसानिसाग, गसा गनि गऽऽरिनिसा, ग पमगऽ रिनिसा, गमपगमग, गमगसागमप ऽऽ गमग, पुनिसागमगऽ गमग, गमपनि ऽऽ धपप ऽ गमग गमप सां ऽ नि धपप ऽ गमग, गम गप गनि ऽ धपप ऽ गमग, गमपनिसांगं ऽऽ रिंनिसां ऽ धपप ऽ गमग ऽ मग ऽ रिनिसा।

षड्जग्राम का गान्धार यानी नैषादी का मध्यम ग्रह अंश

सा, मपनि ऽ सा धनि ऽ सा ऽ धपु ऽ म, मपु मपुनि ऽऽ धनि ऽऽ सा ऽऽ धपु ऽ म, म पु सानि रिसा ऽ धपु ऽ म, मध पधपु ऽ म, मप मपसा ऽ सारि निसा ऽ धपु ऽ म, मपु मपनि ऽ सा धनि ऽ सा, मपनिसा धनि ऽ सा, साम, सानिरिसा म, मपु सानि रिसा म, म ऽऽ म रि ऽ सा ऽ धपु ऽ म, मपनिसा म, मगप ऽ म, सामगप ऽ म, मध पधप-ऽ म, ममम धमप ऽ म, मपधनिसां ऽ धप ऽ म, मप पनि निसां ऽ धप ऽ म, मध पम धप ऽ म, सारिनिसा म ऽ मरि सा ऽऽ धपु ऽ म, पनि ऽ सा ऽ धनि ऽ सा।

इन स्वरावलियों में 'मधुहा केदार' का आविर्भाव दिखाई देता है।

मध्यम का 'अपन्यासत्व' स्पष्ट करने से प्राप्त रूप

सा ऽऽ रिगम ऽऽ मग ^रि^ ग ऽ रिसा, सा ऽ रिगमप ऽ म, ममगरिगमप ऽ म, ममगसागमप ऽ म, गमग सागमप ऽ म,

धप ऽ धग ऽऽ म, मपधनिसां ऽऽ धप ऽ म, मग ^रि^ ग ऽ रिसा।

ऐसा 'गौड़' का (गौडमल्हार का कुछ आभास देने वाले गौड़ का) इस स्वरावली मे दर्शन होगा।

अथवा

^ग^ सा ऽऽ गमप ऽ ^ध^ ग ऽऽ म, धप ऽ धग ऽ म, सागमध ^प^ धप ऽ धग ऽ म, गमपनिसां ऽऽ धप ऽ धग ऽ म, ^सा^

^सा^ गमगमप ऽ धग ऽ म, ^रि^ ग ऽऽ रिसा।

कोमल निषाद-रहित लच्छासाख की इन स्वरावलियो मे झाँकी दिखाई देगी।

षाडव रूप

षड्जग्राम का षड्ज अर्थात् नैषादी का ऋषभ वर्ज्य करने से

सा ऽऽ सानि़सा, सानि़धनि़ ऽ सा, सानि़धप़ ऽ धनि़ ऽ सा, सानि़धनि़साग ऽ म, मग ऽऽ सा, नि़ध़ सानि़ गसा मग ऽ म, मग ऽऽ सा, नि़ध़ सानि़ गसा मग पम धप धम पप ऽ म, पमगसा ऽऽ नि़धनि़साग ऽऽ म, पमधपनि ऽऽ सांनिधप ऽऽ म, सांनिधप ऽऽ मग, गमपनिसांनिधप ऽ मग, धनिसां ऽऽ निधपमग सागमग ऽ मग ऽ सा।

षड्जग्राम का षड्ज पञ्चम अर्थात् नैषादी का ऋषभ धैवत वर्ज्य करने से औडव रूप

सा, सानि़सा गऽऽसा, सानिपनिसा ग ऽऽ सा, गसा मग ऽऽ सा, साग मग ऽऽ सा, पम पग ऽऽ सा, गम ग ऽऽ सा, सागमपनिप ऽ पम ऽ पग ऽ सा, गसा मग पम निप सांनि पम ऽ पग ऽऽ सा, सानि़सा ग ऽऽ निपनिसां ऽ सांनिगं सांगंमं ऽ मं गं ऽ सां, सांनि ऽऽ प मग ऽऽ सा, पनिसा गमपनिसां गंमंगं ऽऽ गंमंगं ऽऽ सां निसांनि ऽऽ प गमग ऽऽ सा।

षड्जग्राम की चार शुद्धा जातियों के बाद अब मध्यमग्राम की तीन शुद्धा जातियों का विवरण क्रमशः दिया जा रहा है।

मध्यमग्राम की शुद्धा जातियाँ

५. गान्धारी

न्यास—गान्धार—

मध्यमग्राम के गान्धार की मूर्च्छना से निम्नलिखित स्वर-रूप प्राप्त होता है जो आधुनिक 'कल्याण-सदृश' है।

ग – म – प – ध – नि – सा – रि – ग
– ४ – ३ – ४ – २ – ४ – ३ – २ –
सा – रि – ग – म् – प – ध – नि – सां

ग्रह् अंश—मध्यमग्राम के 'सा – ग – म – प – नि' यही स्वर प्रस्तुत मूर्च्छना में क्रमश 'ध – सा – रि – ग – प' का स्थान पाते हैं। अत मूर्च्छना के 'ध' 'सा' 'रि' 'ग' 'प' को क्रमश ग्रह-अंशत्व देना होगा।

अल्पत्व—मध्यमग्राम के 'रि – ध' यानी गान्धारी के 'नि – म्' का अल्पत्व है।

षाडव औडव—'रि' यानी 'नि' लोप से षाडव और 'रि – ध' यानी 'नि – म्' लोप से औडव रूप बनेंगे।

गान्धारी का शुद्ध रूप

मध्यमग्राम के गान्धार को ग्रह, अंश, न्यास मानने से गान्धारी का शुद्ध रूप प्राप्त होगा। गान्धार ही यहाँ षड्ज स्थान पाता है।

सा ऽ निधसा, मधनिपसा, धनिसा निरि ऽ सा, सानिरि ऽ सा, रिगरि ऽ सा, गरिग ऽ मगरिऽसा, सारिगमपऽमगरिऽ, सारिगम् ऽ प धपमगरि ऽ सा, सारिसाग सामसाप साध ऽ पमगरि ऽ सा, सारिगमपधनिध ऽ प ऽ मगरि ऽ सा, सारिगम निधनिसां, सांनिधप'मगरिऽसा।

अथवा

मध्यमग्राम के 'रि ध' यानी 'नि म्' को अल्पत्व देने से भूपकल्याण का-सा रूप खड़ा होगा।

यथा —

सा ऽ निधसा, पधसा, सा प नि ध सा ग रि, निध सा ऽ नि ग रि, गरि ऽ सा, सा ग रि ऽ ग, सानि गरि ऽ ग, गप ऽ मग ऽ, ग रि प ग प ऽऽ मग ऽ प रि ऽ सा, सा ग रि प ग ध प सां ध ऽऽ प ऽऽ मग, गप सां ध ऽ निधप ऽ मग, सारिगपधसांऽऽनिधपमग, रिग सारिगपधसां ऽऽ निधपमग, गरि ऽ गप ऽ मगऽ प रि ऽ रिग प रि ऽ सा।

अथवा

मध्यमग्राम के 'ध' यानी 'म्' का अल्पत्व करने से शंकरा सदृश रूप का निर्माण होगा। सा, गरि गप रि ग ऽ रिसा, सानि गरि, गप रि ग ऽ रिसा सा ऽ गरि प ग ऽ प, गपनिधसानि ऽ धनप ऽ ग, गपनिधसां, सांनि ऽ धमप ऽ गप रि गऽरिसा।

ग्रह-अंश परिवर्तन से ग्राम विकृत रूप

मध्यमग्राम का षड्ज यानी गान्धारी का धैवत ग्रह अंश

धनिसागऽ मगरिऽसा, धनिसा धनिसागऽ मगरिऽसा, धनिध धसानि ऽ धनिग ऽ मगरिऽसा। धनिसागमऽ मगरिऽसा। निसा गमपऽऽमगरिऽसा, धनिसा गमधऽपऽ धपमगऽ मगरिऽसा, धनिसगम् धनिपग, धनिसागम धनिसांऽऽनिधपमगऽमगरिऽसा। निधपाऽ धनिधपाऽ धनिधम् धनिधधऽ धपमगऽऽ मगरिऽसा। धसानिध धरिसानिऽ धगरिसाऽ धमगरिऽ धधपमऽ धनिधपऽ सांनिपऽ धरिसानिऽ धगरिसांऽ सांनिधपऽ धपमगऽ मगरिसा।

मध्यमग्राम का मध्यम यानी गान्धारी का ऋषभ ग्रह-अंश

ग रिऽ सा ग रि, रिगरिऽ रि प म ■ रि रिगरि गप सां धऽप रि रिग गप प सां धऽऽ पऽ मग प रि, रि प ग प सां ध सांनि ग रिंऽऽ रिंगरिंऽऽ निधपऽमग प रि, रिगपरिऽऽसा।

इस प्रकार शुद्धकल्याण-सदृश रूप खड़ा होगा। शुद्धकल्याण में 'नि म' सम्पूर्ण वर्ज्य करके 'सरिगरधसां' इसी स्वरावली में ऋषभ का प्राबल्य और 'प रि' संगति का अभ्यास रखा जाता है। किन्तु यहाँ 'नि म' का भी अल्प प्रयोग दिखाया गया है। इसीलिए 'शुद्धकल्याण-सदृश' कहा है।

मध्यमग्राम का पञ्चम यानी गान्धारी का गान्धार ग्रह अंश

गेऽ ^ग^निऽऽसाग, गम्धगम्ऽग, गनिसाम्ऽऽगऽ गरिऽगा। गऽऽ गम् ^ग^ म्ऽ गम्गऽनिसागम्ग, गम्गऽ सानिधन् ग्रम् धनिऽ निसाम्गऽऽ गम्धगम्ऽग गम्निऽऽधम्म्ऽ ग, गम्नि म्धसांनिऽ धम्म्ऽग, पऽऽम् धम्म्ऽग, सांऽऽनि रिंनिनिऽ धम्म् ऽग, गम्धऽ धम्म्ऽ गऽ गम्धगम्ऽऽग रिऽऽसा।

इस प्रकार पूरिया-कल्याण* जैसा रूप इस स्वरावली से खड़ा होता है।

मध्यमग्राम का निषाद यानी गान्धारी का पञ्चम ग्रह-अंश

पु ऽ पधगप ऽ पुगसानिगप ऽ पुगगप, पधधनिधप ऽऽ पधगप, पधसारिगरि सानिधप ऽ पुगरप, पमधप ऽ पुगसारिग ऽ, पम् गगरिसानि गप ऽ प प गगप ऽ, पधग ऽ पम्गग ऽ मप ऽ प, गगगरिसानिगप पुगगप, पध धसा सारि रिग ऽ गरिसानिगप पधगप।

पहाड़ों में गाई जाने वाली 'पहाड़ी' सदृश यह रूप है।

षाडव-रूप

मध्यमग्राम का ऋषभ यानी गान्धारी का निषाद वर्ज्य करने से प्राप्त षाडव रूप

गान्धारी के शुद्ध रूपों में 'निषाद मध्यम' का अल्पत्व रखते हुए कुछ रूप प्रस्तुत किए गए हैं। इसी प्रकार निषाद का सपूर्ण त्याग करके षाडव रूप भी बनाया जा सकता है।

गान्धारी के औडव रूप के लिए विशेषोल्लेख

शुद्ध जातियों में एकाधिक ग्रह-अंशों के अनुसार हम ने ऊपर उन-उन जातियों में विकृत भेदों का निर्माण किया। अब इन एकाधिक ग्रह अंशों पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार कर लें।

हम जानते हैं कि भरत ने अष्टादश जातियों का निर्माण मुख्यतः नाट्य में रस-भावानुकूल अभिव्यञ्जना के लिए किया है। यदि इस दृष्टिकोण से विचार करें तो यह कहना होगा कि भरत को नाट्य की विभिन्न परिस्थितियों में स्वरित गति से परिवर्तित होनेवाले भावों की अभिव्यक्ति के लिए जातिगत भिन्न भिन्न ग्रह-अंशों से उत्थित स्वरावलियों का उपयोग अभिप्रेत रहा होगा। इस दृष्टिकोण के उदाहरणार्थ गान्धारी के पाँच ग्रह-अंश पर तथा उनके औडव रूप पर विचार करें।

गान्धारी में मध्यमग्राम के 'स–ग–म–प–नि' ये पाँच स्वर ग्रह अंश बताए हैं। न्यास स्वर गान्धार से उत्थित मूर्च्छना में यही पाँच स्वर क्रम-भेद से 'स–रि–ग–प–ध' का स्थान पाते हैं। ऊपर हम गान्धार की मूर्च्छना

* कुछ लोग कल्याण को ही पूरियाकल्याण कहते हैं, किन्तु वास्तव में ये दोनों राग भिन्न हैं। पूर्वकल्याण में ऋषभ कोमल और शुद्ध धैवत के साथ तीव्रतर मध्यम के योग से कल्याण का पूर्वरूप दिखाया जाता है, किन्तु 'पूरियाकल्याण' में 'पूरिया' के स्वरों में शुद्ध ऋषभ के प्रयोग से 'पूरिया' में 'कल्याण' का दर्शन कराया जाता है। उपरिलिखित स्वरावली में पंचम का भी अल्प प्रयोग दिखाया गया है, अतः इसे पूरिया-कल्याण' सदृश कहा गया है।

से प्राप्त 'कल्याण-सदृश' स्वरावली में इन पाँचों ग्रह-अंशों के अनुसार गान्धारी के अन्तर्गत स्वतन्त्र विकृत भेद बना कर दिखा चुके हैं। अब यदि ऊपर दिये हुए पृथक् पृथक् विकृत भेदों के स्थान पर गान्धारी की मूल स्वरावली (जो कल्याण-सदृश है) को आधार मान कर 'सरिगपध' इन पाँच ग्रह अंश स्वरों से क्रमशः भिन्न भिन्न मूर्च्छनाएं बनाई जाएं तो उनके निम्नोक्त रूप सामने आएंगे—

'सा'—ग्रह अंश— सा – रि – ग – प – ध – सां – रिं – गं – पं – धं –
४ ३ – ६ – ३ – ६ – ४ – ३ – ६ – ३ –

'रि'— „ — सा – रि – म – प नि – सा
३ – ६ – ३ – ६ – ४

'ग'— „ „ — सा – ग – म – ध – नि – सां
६ – ३ – ६ – ४ – ३

'प'— „ — सा – रि – म – प – ध – सां
३ – ६ – ४ – ३ – ६

'ध'— „ „ — सा – ग – म – प – नि – सा
६ ४ – ३ – ६ – ३

(स्मरण रहे कि गान्धारी में मध्यमग्राम के ऋषभ–धैवत यानी 'नि–म' का अल्पत्व है और उन्हीं के त्याग से औडव रूप का निर्माण करने को कहा गया है। अतः औडव रूप 'सा–रि ग–प–ध' बनता है और यही पाँच स्वर इसमें ग्रह अंश भी हैं।)

गान्धारी के औडव रूप की ऊपर दी हुई मूर्च्छनाओं का नाट्य में भावानुरूप प्रयोग इस प्रकार हो सकता है कि मूल गान्धारी जाति की कल्याण सदृश स्वरावलि का गायन या वृन्दवादन हो रहा हो, उसके बीच में कभी भूपाली का आविर्भाव करके पुनः कल्याण पर लौट जाय, कभी सारंग दिखाया जाए, कभी मालकौंस, दुर्गा या भीम का आविर्भाव किया जाए और पुनः मूल स्वरावलि पर लौटा जाए। इसी भाँति अन्य जातियों में भी बुधजन प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार नाट्य प्रसंगों में क्षण-क्षण बदलते हुए भावों की अभिव्यक्ति और तदनुकूल संगीत-योजना करने के लिए भरत ने एक ही जाति में अनेक ग्रह अंशों को स्थान दिया हो ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करते हुए यह कल्पना हो आना स्वाभाविक है कि सम्भवतः भरत को सात शुद्धा जातियों में एकाधिक ग्रह अंश स्वरत्व के पीछे कुछ ऐसा ही विनियोग अभिप्रेत रहा हो। यह स्मरणीय है कि उन्होंने शुद्धा जातियों के विकृत भेदों की संख्या का कहीं निर्देश नहीं किया है, इससे भी यह कल्पना हो आती है कि शायद ग्रह अंश स्वरों के परिवर्तन से उन्हें एक ही मूल स्वरावलि के स्थायी पद पर भिन्न भिन्न भावों के अनुरूप अन्यायोक्त से संचरण करनेवाले भिन्न भिन्न मूर्च्छना प्राप्त रूपों का प्रयोग अभीष्ट रहा हो और इसीलिए उन्होंने विकृत भेदों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार न की हो और उनकी संख्या न गिनाई हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर भी 'न्यास' का नियामकत्व अक्षुण्ण बना रहता है क्योंकि जाति की स्थायी या आधारभूत स्वरावलि का निर्माण यहाँ भी 'न्यास' से ही होता है।

६. मध्यमा

इसका न्यास स्वर मध्यमग्राम का मध्यम है। तदनुसार निम्नलिखित मूर्च्छना बनेगी —

म ग्राम में 'म' की मूर्च्छना म – प – ध – नि – सा – रि – ग – म

'म' को 'सा' मानने में प्राप्त स्वरावली   सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां
– ३ – ४ – ३ – ४ – ३ – २ – ४ –

यहाँ यह पुनः उल्लेखनीय है कि षड्जग्राम का षड्ज तथा मध्यमग्राम का मध्यम दोनों का वीणा पर एक ही स्थान है। किन्तु मध्यमग्राम में धैवत चतुःश्रुति होने के कारण उसके मध्यम की मूर्च्छना में खमाज सदृश स्वरावलि प्राप्त होती है, जब कि षड्जग्राम की षाड्जी में वीणा के उसी स्थान से काफी सदृश स्वरावलि उत्पन्न होती है। 'खमाज सदृश' कहने का यहाँ तात्पर्य यही है कि इसमें ऋषभ त्रिश्रुति है जब कि वीणा के बाज के तार का परम्परानुसार मध्यम मानकर वादन करने से तथा तानपुरे के पहले तार को पंचम से मिलाकर गायन करने से खमाज में ऋषभ चतुःश्रुति ही प्रयुक्त होता है। ध्यान रहे कि भरत ने उभयग्राम की सात शुद्ध जातियों में से मध्यमग्राम की मध्यमा और पञ्चमी इन दो जातियों में स्वर साधारण का प्रयोग निर्दिष्ट माना है। हम जानते हैं कि भरत ने उभयग्राम की मूर्च्छनाओं के भेद बनाते समय पूर्ण, षाडवा, औडवा और साधारणीकृता ऐसे चार भेद कहे हैं। 'साधारणीकृता' में अन्तर काकली के प्रयोग का विधान है। किन्तु, यहाँ षड्जग्राम की शुद्ध जातियों में स्वर-साधारण न कहकर केवल मध्यमग्राम की ही दो जातियों में उसका विधान दिया है। तदनुसार हम मध्यमग्राम की इन दो जातियों के सीमित क्षेत्र में ही स्वर साधारण का उपयोग कर रहे हैं। 'मध्यमा' का 'स्वर साधारण' सहित स्वर रूप निम्नलिखित होगा —

म – प – ध – नि – सा नि – सा – रि – ग – म ग – म
सा – रि – ग – म – म् – प – ध – नि् – नि – सां
– ३ – ४ – २ – २ – २ – ३ – २ – २ – २ –

इस रूप में कल्याण अंग, खमाज अंग और बिलावल अंग के सभी आधुनिक रागों का पूर्ण समावेश हो सकता है। इस जाति के भिन्न २ ग्रह-अंशों से बननेवाले रूपों का विस्तार न देकर यहाँ इन तीनों अंगों के कुछ रागों के नामों का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। यथा —

बिलावल अंग—(दो मध्यम, दो निषाद वाले, अथवा एक मध्यम, दो निषादवाले राग) यमनी बिलावल, देवगिरि बिलावल, सरपरदा बिलावल, अल्हैया बिलावल, लच्छासाख, शुक्ल बिलावल, ककुभ बिलावल, नट बिलावल इत्यादि।

कल्याण अंग—(दो मध्यम दो निषादवाले अथवा एक मध्यम दो निषाद वाले अथवा दो मध्यम एक निषाद वाले राग) केदार, बिहाग, हमीर, कामोद, छायानट, बिहागड़ा, मारुबिहाग, गौडसारंग, श्यामकल्याण, यमनकल्याण, दुर्गविहाग, मदनामोद, नटकल्याण, नटकेदार, मलुहाकेदार इत्यादि।

खमाज अंग (एक मध्यम दो निषाद वाले राग) खमाज, देश, तिलककामोद, झिंझोटी, रागेश्री, खम्भावती, तिलंग, गौडमल्हार इत्यादि।

इनके अतिरिक्त, इस मूर्च्छना में दो मध्यम, दो निषाद प्राप्त होने से सारंग अंग के वृन्दावनी सारंग, मधमाद (मध्यमादि) सारंग, सामंत-सारंग, शुद्धसारंग इत्यादि रागों का भी इसीमें समावेश हो सकता है।

मध्यमा में मध्यमग्राम के 'स रि म प ध' को ग्रह अंश कहा है। यही स्वर मध्यम की मूर्च्छना में क्रमशः 'प ध सा रि ग' बनते हैं। इन भिन्न भिन्न ग्रह अंशों के अनुसार विभिन्न रूपों का निर्माण बुध जन स्वयं कर सकते हैं।

७ पञ्चमी

मध्यमा के सदृश पञ्चमी में भी अन्तर काकली का प्रयोग विहित माना है। तदनुसार इसकी स्वरावली निम्नोक्त होगी —

म० ग्राम के पंचम की स्वर-साधारण युक्त मूर्च्छना— प – ध – नि – का० नि० – सा – रि – ग – अ० ग० – म – प
पंचम को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावली— सा – रि – ग – ग – म – प – ध – ध नि – सां
४ – २ – २ – २ ३ – २ – २ – २ – ३ –

इस प्रकार दो गान्धार, दो धैवत तथा कोमल निषाद युक्त स्वरावलि प्राप्त होती है। इस स्वरावलि में आरोहावरोह, ग्रह अंश, अल्पत्वादि के परिवर्तन से निम्नलिखित आधुनिक रागों का समावेश हो सकेगा —

कान्हड़ा अंग—(शुद्ध धैवत तथा कोमल गान्धार वाले अथवा कोमल धैवत कोमल गान्धार वाले राग) सूहा, सुघराई, नायकी (शुद्ध ध युक्त) काफी कान्हड़ा, गारा कान्हड़ा, कौशिक कान्हड़ा, मुद्रकी कान्हड़ा, दरबारी, अड़ाणा खट (कान्हड़ा अंग) इत्यादि।

आसावरी अंग—दो गान्धार, दो धैवत वाले अथवा एक गान्धार दो धैवत वाले अथवा एक गान्धार, एक धैवत वाले राग देवगान्धार, देसी, आसावरी इत्यादि।

पञ्चमी में मध्यमग्राम के ऋषभ पंचम को ग्रह अंश कहा है जो पंचम को मूर्च्छना में क्रमशः 'प-सा' बन जाते हैं। मध्यमा की भाँति यहाँ भी विभिन्न रूप बनाकर देना हमने आवश्यक नहीं समझा है।

उपसंहार

शुद्धा जातियों के ग्रन्थस्थ लक्षणों के अनुसार उनके स्वर रूप किस प्रकार समझे जा सकते हैं, उन रूपों में आज के प्रचलित रागों के साथ कैसा अक्षुण्ण सम्बन्ध दिखाई देता है उसका अल्प दर्शन हमें हुआ। इस प्रकरण के उपसंहार में हम पाठकों, विचारकों, अनुसन्धानकर्ताओं तथा विद्यार्थियों के सौकर्य के लिए, ऊपर प्रस्तुत सिद्धान्त पक्ष को संक्षेप में दोहरा देना उचित समझते हैं। जिस प्रकार भरत ने विभिन्न स्वर-समूहों का शास्त्रीय वर्गीकरण, सूक्ष्म श्रुत्यन्तरों का प्रत्यक्षीकरण, उनका प्रमाण निर्धारण, स्वरों के अन्तर्गत 'सा-प और सा-म संवाद' के आधार पर ध्वनियों की परस्पर संवाद-स्थापना—इन सब प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्राकृतिक स्वरावलि के आधार पर द्वैग्रामिकी शास्त्रीय व्यवस्था की रचना की है※ उसी प्रकार उस काल में प्रचलित गीत प्रकारों के शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए तथा किसी स्वर समूह को विशिष्ट आकार प्रदान करने के निमित्त जो जो तत्त्व आवश्यक होते हैं उनके शास्त्रीय निरूपण के हेतु भरत ने जाति का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार हमने अधुना प्रचलित शुद्ध (प्राकृतिक) स्वरावलि का भरतोक्त ग्राम व्यवस्था के साथ अटूट और अविच्छेद्य सम्बन्ध प्रकाश्य रूप से स्थापित किया है उसी प्रकार हम इस सत्य की भी स्थापना करना चाहते हैं कि आज की हमारी राग-परम्परा के मूल तत्त्व 'जाति' में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। रागों के नाम रूप में परिवर्तन-परिवर्द्धन अवश्य हुआ है, फिर भी हमें नहीं भूलना चाहिये कि 'राग-पद्धति' के मौलिक तत्त्व जाति की परम्परा से ही सम्बद्ध हैं। पाठकों को ऊपर के स्वर विस्तारों से इस सत्य का दर्शन हुआ होगा ऐसा विश्वास है। साथ ही उन्हें यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि जाति को रागों की जननी क्यों कहा गया है। इस सम्यग्दर्शन से इस भ्रान्ति का समूल निरसन हो जाएगा कि प्राचीन शास्त्र से हमारे क्रिया पक्ष का विच्छेद हो चुका है, व्यवस्था के दुरूह बन जाने के कारण ग्रन्थों में स्वर-श्रुति के विषय में भयंकर अव्यवस्था छा गई थी उसी प्रकार जाति को भी मानो पुरातत्त्व संग्रहालय के उपयोगी वस्तु मान समझ कर ही उसका सम्पूर्ण गतानुगतिक भाव से यत्किंचित् निरूपण किया जाता रहा। उसी भ्रान्त परम्परानुसार आधुनिक युग तक 'जाति' को अधुना प्रचलित राग परम्परा से विच्छिन्न (isolated) विषय समझा जाता रहा है। 'जाति' के साथ आज की राग परम्परा के अटूट सम्बन्ध को प्रत्यक्षगोचर तथा बुद्धिग्राह्य बनाने का यह प्रथम प्रयास है। आशा और विश्वास है कि इससे भरत-सिद्धान्त की पूर्ण शास्त्रीयता अविच्छिन्नता और सर्वकाल के लिए उपयोगिता निर्विवाद रूप से सिद्ध हो सकेगी।

※ 'नाद-रूप' (कला संगीत भारती, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित अनुसन्धान पत्रिका) के प्रथम अंक में प्रकाशित लेखक का "भरत का स्वर सिद्धांत" शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

संसर्गजा विकृता जातियाँ—भरतोक्त व्यवस्था

शुद्धा जातियों के स्वरूप को हमने न्यास स्वर का नियामक स्वीकार कर के निश्चय कर लिये और यह सिद्धान्त भी समझ लिया कि शुद्धा जातियों के विकृत भेदों में स्वर-रूप भी उनके अपरिवर्तनीय न्यास-स्वर के अनुसार ही बने। इसी सिद्धांत के अनुसार हमने प्रत्येक शुद्धा जाति के शुद्ध एवं विकृत भेदों का ग्रह अंश परिवर्तन से तथा षाडव-औडव भेद निर्माण द्वारा निरूपण कर लिया। किन्तु शुद्धा जातियों और उनके विकृत भेदों से भिन्न एकादश संसर्गजा विकृत जातियों के समूहगत स्वरूप कैसे निर्धारित किये जाएँ ? इस प्रश्न के निम्नलिखित मुख्य पहलू हैं —

(१) प्रत्येक संसर्गजा जाति उभयग्राम में से किसी एक के साथ संबद्ध है तथा प्रायः प्रत्येक में उभयग्राम की जातियों का संसर्ग है। एक अपवाद को छोड़ कर ऐसी कोई भी संसर्गजा जाति नहीं है जिस में केवल एक ग्राम की जातियों का संसर्ग हो। उभयग्राम की जातियों का संसर्ग होने पर भी संसर्गजा जातियों का एक ग्राम विशेष के साथ संबद्ध होना किस प्रकार सार्थक हो सकता है ?

(२) एकाधिक जातियों का संसर्ग विहित होने पर भी प्राय: प्रत्येक संसर्गजा जाति में एक-एक ही न्यास-स्वर कहा गया है। यह न्यास स्वर अन्य संसर्गप्राप्त जातियों का नियामक किस प्रकार हो सकता है ?

(३) एक अपवाद को छोड़कर प्रत्येक संसर्गजा जाति में एकाधिक ग्रह अंश कहे गये हैं। एकाधिक जातियों का संसर्ग निरूपण करने में इन ग्रह अंशों का क्या विनियोग होगा ?

(४) इन संसर्गजा जातियों का ध्रुवगान गायन वादन में, विशेषतः नाट्य-गीत संगीत में कैसा उपयोग करने का अभिप्रेत रहा होगा ? नाट्य की भावाभिव्यक्ति में, रस सिद्धि में इनका कैसा विनियोग होता होगा ?

स्पष्ट है कि इन सब पहलुओं वाले इस विशाल प्रश्न का हल उतना सरल नहीं है जितना कि संसर्गजा जातियों के लक्षणों को बाह्य दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है। इस गुत्थी को सुलझाने के लिये विभिन्न दृष्टिकोण से हमने जो प्रयत्न किये हैं वे सभी इस प्रकरण में प्रस्तुत हैं।

आरम्भ में ही यह उल्लेखनीय है कि संसर्गजा जातियों के प्राचीन ग्रन्थोक्त लक्षणों का यदि केवल गतानुगतिक भाव से उल्लेख मात्र करना प्रयोजन होता तब तो बड़ी ही सरलता से और बहुत थोड़े में इस प्रकरण को पूर्ण किया जा सकता था। कुछ मध्ययुगीन ग्रन्थकारों ने (उदाहरणार्थ रघुनाथ भूप, तुलजाधिप आदि ने) यही मार्ग अपनाया था। किन्तु हमने इन संसर्गजा विकृता जातियों के स्वरूप निरूपण करने और उनके प्रत्यक्ष प्रयोग को निरूपित करने का यत्न किया है और इसीलिये यह प्रकरण काफी विस्तृत हो गया है।

संसर्गजा जातियों का जो लक्षण निरूपण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है उसे देखते हुए यह कहना पड़ता है कि इनके स्वर रूप निर्माण के लिए 'इदमित्थं' कह कर कोई एक निश्चित विधान देना अनुसंधान या गवेषणा की मर्यादा के अनुसार नहीं हो सकता। अतएव इस समय जो ग्रन्थस्थ सामग्री हमें उपलब्ध है उसके आधार पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस विषय पर विचार कर के पाँच विकल्पों के रूप में हमने अपने प्रयत्नों को प्रस्तुत किया है। इन पाँच में से प्रथम दो विकल्प तो जातियों के मिश्रण द्वारा संसर्गज रूपों के निर्माण से संबंध रखते हैं। ये केवल आपाततः ही ग्राह्य जान पड़ते हैं वास्तव में उनसे कोई फलसिद्धि नहीं होती। फिर भी पाठकों के विचारार्थ उनका उल्लेख कर दिया गया है। शेष तीन विकल्पों में इन संसर्गजा जातियों के अन्तर्गत समवाय, संयोग अथवा संसर्ग के प्रत्यक्ष प्रयोग को विभिन्न प्रकार से निष्पन्न करने का यत्न किया गया है। ये पाँचों विकल्प नीचे क्रमशः प्रस्तुत हैं।* अन्त में जातियों के रसों के सम्बन्ध में भरत के विधान का उद्धरण देकर कुछ उदाहरणों सहित इस विषय की विवेचना की गई है।

---

* प्रस्तुत प्रकरण में भरत के ही आधार पर विचार किया गया है। मतङ्ग और शार्ङ्गदेव के इस विषय प्रतिपादन पर पृथक् प्रकरणों में विचार किया जायगा।

संसर्गजा विकृता जातियों के प्रसंग में सर्वप्रथम मिश्रण का विचार हो आना स्वाभाविक है; अर्थात् एकादश संसर्गजा जातियों में जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है उनके मिश्र रूप बनाने की ओर सर्वप्रथम दृष्टि जाती है, कारण हमारे प्रचलित संगीत में रागों के विभिन्न प्रकार के सम्मिश्र रूप पाए जाते हैं। यथा आरोह-अवरोह में (जैसे भूपकल्याण—आरोह में भूप, अवरोह में कल्याण) पूर्वांग-उत्तरांग में (जैसे अहीर भैरव—पूर्वांग में भैरव, उत्तरांग में खमाज) अथवा आरोह-अवरोह, पूर्वांग उत्तरांग दोनों में (जैसे बसन्त बहार) मिश्रण किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त खट जैसे सम्मिश्र रूपों में छः रागों तक का सम्मिश्रण पाया जाता है, यद्यपि उसमें छहों रागों के अपने-अपने व्यक्तिगत रागत्व का अल्पांश ही प्रयुक्त होता है। थोड़े-थोड़े स्वरों के हेरफेर से इन रागों की छाया यत्र-तत्र निर्देशित की जाती है। इन संसर्गजा विकृता जातियों में भरत को क्या कुछ उसी प्रकार का मिश्रण अभिप्रेत रहा होगा? आरंभ में ऐसा अनुमान हो आता है। यह अनुमान आपाततः ग्राह्य प्रतीत होने पर भी इस प्रकार के मिश्रण में अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं जिन पर इस प्रकरण में विस्तार से विचार किया जा रहा है।

प्रथम विकल्प—मिश्रण की सरल प्रक्रिया

मिश्रण की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जिस संसर्गजा जाति में जिन-जिन शुद्धा जातियों का संसर्ग बताया गया है उन सबके अपने अपने न्यास स्वर से जो-जो रूप बनते हैं, उन सबका एक सम्मिश्र रूप मध्य सप्तक में तैय्यार किया जाय। उदाहरणार्थ षड्जकैशिकी जाति में षाड्जी और गान्धारी का संसर्ग कहा गया है। तदनुसार षाड्जी के न्यास स्वर (षड्जग्राम के) षड्ज से प्राप्त काफी-सदृश रूप और गान्धारी के न्यास स्वर (मध्यमग्राम के) गांधार से प्राप्त कल्याण-सदृश रूप—इन दोनों का मध्य सप्तक में मिश्रण करके, आधुनिक रागों की दृष्टि से इस स्वरावली में काफी-कल्याण अथवा कल्याण-काफी के सम्मिश्र रूप का निर्माण हो सकता है अथवा दो गांधार, दो मध्यम और दो निषाद वाली स्वरावली का सामान्य सम्मिश्र रूप बनाया जा सकता है। तद्वत् षड्जोदीच्यवा में षाड्जी, गांधारी और धैवती का संसर्ग कहा है। षाड्जी और गांधारी के अपने-अपने न्यास स्वर से प्राप्त उपरिकथित स्वर-रूप के अतिरिक्त इसमें धैवती के न्यास स्वर से यानी षड्जग्राम के धैवत से पञ्चम-रहित, दो मध्यमयुक्त तोड़ी-भैरवी सदृश रूप प्राप्त होता है। इस स्वरावली का यदि षाड्जी और गांधारी के साथ मिश्रण किया जाय तो काफी, कल्याण और तोड़ी-भैरवी के राग-रूपों के मिश्रण का-सा रूप बनेगा। अथवा दो गांधार, दो निषाद, दो ऋषभ, दो धैवत और दो मध्यम युक्त सामान्य सम्मिश्र रूप प्राप्त होगा। इन तीन जातियों के संसर्ग से जो स्वर प्राप्त हुए उनमें उपरिकथित राग रूपों के अतिरिक्त अन्य अनेक सम्मिश्र रूपों का निर्माण हो सकता है। अतः इस उपलब्धि के बाद अन्य संसर्गजा जातियों में किसी नवीन रूप की प्राप्ति का अवकाश नहीं रह जाता। स्पष्ट है कि इस प्रकार का सम्मिश्रण करने के बाद अन्य सभी संसर्गजा जातियों में मिश्र रूपों की विपुल पुनरुक्ति ही हाथ लगेगी और उनका निर्माण व्यर्थ सा जान पड़ेगा। पृ० ४० पर दी गई सारिणी में यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

एक अन्य उदाहरण से उपर्युक्त पुनरुक्ति की स्पष्टता हो जाएगी। गान्धारोदीच्यवा जाति में षाड्जी, गान्धारी, धैवती और मध्यमा—इन चार जातियों का संसर्ग कहा है, तो क्या षड्जोदीच्यवा के अन्तर्गत उपरिलिखित काफी, कल्याण, तोड़ी भैरवी के अतिरिक्त मध्यमा के खमाज सदृश रूप का एक अधिक सम्मिश्रण ही उसमें अभिप्रेत है? साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि मध्यमा के मिश्रण की वृद्धि में कोई नूतन प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि षाड्जी (काफी) और गान्धारी (कल्याण) में जो स्वर हैं, उन्हीं में से खमाज की उपलब्धि तो सहज ही हो सकती है। ऐसी अवस्था में षड्जोदीच्यवा में केवल मध्यमा का योग बढ़ाकर गान्धारोदीच्यवा की रचना करने से क्या विशेष लाभ होगा?

उपर्युक्त पुनरुक्ति दोष के साथ साथ यह भी स्मरणीय है कि इन संसर्गजा जातियों के अन्तर्गत संसर्गप्राप्त स्वरावलियों में आधुनिक रागों का स्थूल सादृश्य तो अवश्य दिखाई देता है, किन्तु प्रश्न यही है कि इन एक-एक संसर्गज रूपों के अन्तर्गत जिन अनेक रूपों का संसर्ग अभिप्रेत है, उन सब का किस नियम से, किस विधि से समन्वय किया जाए

संसर्गजा जातियों में मिश्रण की सरल प्रक्रिया की सारिणी

संसर्गजा जाति-नाम	संसर्गप्राप्त जातियाँ	आधुनिक रागों का स्थूल सादृश्य	मिश्रण-जन्य स्वरावली	विशेषोल्लेख
१. षड्जकैशिकी	षाड्जी, गान्धारी	काफी कल्याण	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध–नि्–नि–सां	
२. षड्जोदीच्यवा	षाड्जी गान्धारी, धैवती	काफी, कल्याण तोडी-भैरवी	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	षाड्जी का संयोग निरर्थक
३. षड्जमध्यमा	षाड्जी, मध्यमा	काफी, खमाज	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	द्वैग्रामिक अन्तर-काकली (स्वर-साधारण) का उपयोग इसमें विहित होने से तदनुसार स्वरावली बनाई गई है।
४. गान्धारोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी, धैवती, मध्यमा	काफी, कल्याण तोडी-भैरवी, खमाज	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–म्–प ध् ध–नि् नि–सां	षड्जोदीच्यवा की पुनरुक्ति, षाड्जी, मध्यमा का संसर्ग निरर्थक।
५. मध्यमोदीच्यवा	गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, मध्यमा	कल्याण, आसावरी, तोडी-भैरवी, खमाज	सा–रि्–रि–ग्–ग–म म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	षड्जोदीच्यवा, गान्धारोदीच्यवा की पुनरुक्ति, पञ्चमी, मध्यमा का संयोग व्यर्थ।
६. रक्तगान्धारी	गान्धारी, पञ्चमी, नैषादी, मध्यमा	कल्याण आसावरी, बिलावल, खमाज	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	नैषादी, मध्यमा का संयोग व्यर्थ।
७. आन्ध्री	गान्धारी, षाड्जी	कल्याण, काफी	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध–नि्–नि–सां	षड्जकैशिकी की पुनरुक्ति।
८. नन्दयन्ती	गान्धारी, पंचमी, आर्षभी	कल्याण, आसावरी, भैरवी	सा–रि्–रि–ग्–ग–म्–म–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	पंचमी का संयोग व्यर्थ।
९. गान्धारपञ्चमी	गान्धारी, पञ्चमी	कल्याण, आसावरी	सा–रि–ग ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि सां	षड्जमध्यमा की पुनरुक्ति।
१०. कार्मारवी	नैषादी, आर्षभी, पञ्चमी	बिलावल, भैरवी, आसावरी	सा–रि् रि ग्–ग–म–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	पंचमी का संयोग व्यर्थ।
११. कैशिकी	षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा पञ्चमी, नैषादी	काफी, कल्याण, खमाज, आसावरी, बिलावल	सा रि–ग् ग म–म्–प–ध्–ध नि्–नि सां	गान्धारपंचमी और षड्जमध्यमा की पुनरुक्ति। षाड्जी, मध्यमा, नैषादी का संयोग व्यर्थ।

जिससे एक 'समवायी', स्पष्ट और नियमित रूप खड़ा हो सके ? ससर्ग के नियमन की इस समस्या के साथ-साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त मिश्रण प्रक्रिया में संसर्गजा जातियों के अपने अपने न्यास-स्वरों की कोई सार्थकता नहीं रह जाती, अर्थात् वे उन-उन संसर्गज रूपों के नियामक नहीं बन पाते। तद्वत् संसर्गजा विकृता जातियों के एकाधिक ग्रह-अंशों का समुचित विनियोग भी संभव नहीं होता।

अधुना प्रचलित संगीत में 'राग-सागर' के नाम से भी एक मिश्र रूप उपलब्ध होता है जिसमें आठ, बारह अथवा सोलह—यों यदि शमन करनेवाले गुणी की जितनी इच्छा हो, उतने रागों की समूहबद्ध रचना की जाती है और एक चमत्कृति के रूप में जनता के सामने रखी जाती है। क्या इन संसर्गजा जातियों में भरत को ऐसे सम्मिश्रण अभिप्रेत होंगे? उनके अपने वचनों में इसकी अस्पष्ट कल्पना भी उपलब्ध नहीं होती। इसलिये 'इदमित्थं' कहकर इसका निर्णय करना कहाँ तक उचित होगा? 'खट' जैसे रागमिश्रण अथवा 'राग-सागर' जैसी मिश्र रचना से नाट्य की भावसिद्धि में क्या सहायता प्राप्त होगी? स्पष्ट है कि इस प्रकार के मिश्रण केवल गायन वादन की महफ़िलों के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं, नाट्य में भावाभिव्यक्ति के लिये उनका कोई विशेष उपयोग संभव नहीं प्रतीत होता।

हम समझते हैं कि संसर्गजा जातियों में इस प्रकार के सम्मिश्रण से कोई विशेष भाव सिद्धि, रस सिद्धि, अथवा फल सिद्धि नहीं होगी। यह सत्य है कि इन संसर्गजा जातियों को देखते ही अन्तर में प्रथम घोष आधुनिक संगीत में प्रचलित रागों के सम्मिश्रण की ओर ही जाता है। इसलिये हमने सत्य के परीक्षणार्थ इन जातियों का विविध रूप से सम्मिश्रण करने का बहुत-कुछ प्रामाणिक यत्न करके देखा। किन्तु इनके सम्मिश्रण में निहित विपुल पुनरुक्ति-दोष ने हमें 'समवाय' के 'सम्मिश्रण' अर्थ से विरत किया और 'समवाय'* के विशेष अर्थ की खोज की ओर उन्मुख किया। तथापि हमारे यत्न का यह स्थूल विवरण जिज्ञासु तथा अनुसंधित्सु जनों के समक्ष प्रस्तुत है।

उपर्युक्त मिश्रण विधि के अतिरिक्त मिश्रण करने का एक अन्य मार्ग भी प्रस्तुत है। यह विधि इस प्रकार है।

मिश्रण का एक अन्य प्रकार—दूसरा विकल्प

यथा—सर्वप्रथम संसर्गजा जाति के अपने न्यास स्वर को षड्ज का स्थान देकर ग्रामविशेष के अनुसार, आधारभूत स्वरावली का निर्माण किया जाए। तत्पश्चात् संसर्गप्राप्त जातियों के अपने-अपने न्यास स्वरों से उन उन ग्रामविशेष में जो मूर्च्छनाएँ (स्वरावलियाँ) बनें उन सबको इस दृष्टि से देखा जाए कि आधारभूत स्वरावली में वे क्या स्थान पाती हैं। पूर्वोक्त मिश्रणविधि में हमने सभी संसर्गप्राप्त जातियों के रूपों को एकत्र करके सम्मिश्रण करने का यत्न किया। यहाँ संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावलियों को संसर्गजा जाति के न्यास स्वर के नियन्त्रण में एकत्र करने का यत्न किया जा रहा है। उदाहरणार्थ 'षड्जोदीच्यवा' में षड्जग्राम का मध्यम न्यास है और षाड्जी गान्धारी तथा धैवती का संसर्ग है। इसी मध्यम को tonic (स्वरित) मानकर हम यह देखें कि संसर्गप्राप्त जातियों (षाड्जी, गान्धारी, धैवती) की अपनी अपनी मूर्च्छनाओं का मध्यम को स्वरित मानने से प्राप्त स्वरावली में वीणा पर क्या स्थान आता है। यथा —

* संसर्गजा जातियों के 'समवाय' के बारे में तीन वैकल्पिक विधान आगे चलकर दिए जायेंगे।

वीणा पर सारी-संख्या (चल थाट के अनुसार)	षड्जग्राम के मध्यम से प्राप्त स्वरावली (आधार भूत)		षाड्जी (षड्जग्राम के षड्ज से)	गान्धारी (मध्यमग्राम के गान्धार से)		धैवती (षड्ग्राम के धैवत से)		स्वरित मध्यम से स्वरावली में सभी मूर्च्छनाओं का एकत्र दर्शन
मेरु				ग्	सा			
१								
२			सा	म	रि			
३								
४			रि	प	ग			
५			ग्					
६				ध	म्			
७	म	सा	म	नि्	प			(नि्)
८	प	रि	प	सां	ध			सा
९								रि
१०	ध	ग	ध	रिं	नि			
११	नि्	म	नि्	गं	सां	ध	सा	ग
१२						नि्	रि्	म
१३	सां	प	सां					
१४	रिं	ध				सां	ग्	प
१५	गं	नि्				रिं	म	ध
१६	(मं० ग्रा०)					गं	म्	नि्
१७	मं	सां						नि
१८						मं	ध्	सां
१९						पं	नि्	
२०						धं	सां	

ऊपर हमने देखा कि 'षड्जोदीच्यवा' में षाड्जी, गान्धारी, धैवती—इन तीन जातियों के संसर्ग से केवल दो निषादयुक्त स्वरावली प्राप्त हुई। यही स्वरावली षाड्जी जाति में काकली स्वर-साधारण के प्रयोग से भी प्राप्त हो सकती थी। इसके लिए तीन-तीन जातियों के संसर्ग द्वारा 'द्राविड प्राणायाम' की क्या आवश्यकता थी ? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

एक अन्य उदाहरण देख लें। मध्यमग्राम की गान्धारोदीच्यवा जाति में मध्यमग्राम का मध्यम न्यास स्वर है और उसमें षाड्जी, गान्धारी, धैवती और मध्यमा का संसर्ग है। यथा—

वीणा पर सारी संख्या (चल थाट के अनुसार)	मध्यमग्राम के मध्यम से प्राप्त स्वरावली (आधार भूत)		षाड्जी (षड्जग्राम के षड्ज से)	गान्धारी (मध्यमग्राम के गान्धार से)		धैवती (षड्जग्राम के धैवत से)		मध्यमा (मध्यमग्राम के मध्यम से) (स्वर-साधारण सहित)		स्वरित मध्यम से प्राप्त स्वरावली में सभी मूर्च्छनाओं का एकत्र दर्शन
मरु०				ग़	सा					
१										
२	म	सा	सा	म	रि			म	सा	सा
३										
४	प	रि	रि	प	ग			प	रि	रि
५			ग़							ग़
६	ध	ग		ध	म़			ध	ग	ग
७	नि़	म	म	नि़	प			नि़	म	म
८	सा	प	प	सा	ध			वा नि	म़	म़
९								सा	प	प
१०	रि	ध	ध	रि	नि	ध	सा			
११	ग़	नि़	नि़	ग़	सा	नि़	रि़	रि	ध	ध
१२								ग	नि़	नि़
१३	म	सा	सा			सा	ग	म गा	नि	नि
१४						रि	म	म	सा	सा
१५						ग	म़			
१६										
१७						म	ग			
१८						प	नि़			
१९						धं	सा			
२०										

यहाँ दो गान्धार दो मध्यम और दो निषाद वाली स्वरावली प्राप्त हुई। किंतु यहाँ षड्जग्राम की षाड्जी अथवा धैवती—किसी एक के ग्रहण से भी यही फल प्राप्त होता तद्वत् स्वरसाधारणयुक्त मध्यमा के ग्रहण के साथ-साथ गान्धारी का ग्रहण भी निरर्थक जान पड़ता है। दोनों ग्रामों की स्वरावलियों का एकत्र दर्शन तो प्रत्येक ग्राम की एक एक जाति के संसर्ग से हो हो सकता है। फिर दो से अधिक जातियों के संसर्ग से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है ?

नीचे दी हुई सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि इस मिश्रण विधि में जहाँ एक ओर पुनरुक्ति का बाहुल्य है वहाँ दूसरी ओर और जातियों के संसर्ग की सार्थकता भी सिद्ध नहीं हो पाती। अतः इस विधि में एक न्यास स्वर के अनुसार,

सरल मिश्रण से भिन्न मिश्रण-प्रक्रिया की सारिणी

संसर्गप्राप्त जाति नाम	ग्राम	न्यास स्वर	संसर्गप्राप्त जातियाँ	न्यास स्वर के अनुसार, संसर्गप्राप्त जातियों के एकत्र दर्शन से उपलब्ध स्वरावली	विशेषोल्लेख
१. षड्जकैशिकी	षड्ज	गान्धार	षाड्जी, गान्धारी,	सा-रि्-रि-ग-म्-प-ध-नि् सां	
२. षड्जोदीच्यवा	■	मध्यम	षाड्जी, गान्धारी, धैवती	सा-रि-ग-म-प-ध-नि्-नि-सां	गान्धारी, धैवती का संयोग व्यर्थ, केवल काकली निषाद के ग्रहण से काम चल सकता था।
३. षड्जमध्यमा	„	षड्ज, मध्यम	षाड्जी मध्यमा	सा रि ग् ग-म-म्-प-ध् ध-नि्-नि-सां	'मध्यमा' में भरत-वचनानुसार स्वर-साधारण का उपयोग।
४. गान्धारोदीच्यवा	मध्यम	मध्यम	षाड्जी, गान्धारी धैवती, मध्यमा	सा रि-ग् ग म-म्-प-ध-नि्-नि-सां	गान्धारी तथा धैवती अथवा षाड्जी का संयोग व्यर्थ।
५. मध्यमोदीच्यवा	„	„	गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, मध्यमा	सा-रि-ग्-ग-म-म्-प-ध नि्-नि-सां	गान्धारी, पञ्चमी का संयोग व्यर्थ, गान्धारोदीच्यवा की पुनरुक्ति।
६. रक्तगान्धारी	„	गान्धार	गान्धारी, पञ्चमी, नैषादी, मध्यमा	सा-रि-रि ग-म-म्-प-ध् ध नि सां	'मध्यमा-पञ्चमी' के कारण स्वर साधारण का प्रयोग। गान्धारी का संयोग व्यर्थ; मध्यमा अथवा पंचमी एक ही आवश्यक।
७. आन्ध्री	„	„	गान्धारी, षाड्जी	सा-रि-ग म-म्-प-ध-नि-सां	
८. नन्दयन्ती	„	„	गान्धारी, पञ्चमी, आर्षभी	सा-रि-ग-म-म्-प-ध-नि-सां	आन्ध्री की पुनरुक्ति।
९. गान्धारपञ्चमी	„	„	गान्धारी, पञ्चमी	सा-रि्-रि ग-म्-प-ध् ध नि सां	रक्तगान्धारी की स्वरावली के अन्तर्भूत।
१०. कार्मारवी	„	पञ्चम	नैषादी, आर्षभी, पञ्चमी	सा-रि्-रि-ग्-ग-म-प-ध्-ध-नि् सां	नैषादी अथवा आर्षभी व्यर्थ।
११. कैशिकी	„	गान्धार, निषाद, वर्जित पञ्चम	षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, नैषादी,	सा रि्-रि-ग्-ग-म-म्-प ध्-ध-नि्-नि-सां	गान्धारी, षाड्जी अथवा नैषादी, मध्यमा अथवा पञ्चमी का संयोग व्यर्थ।

संसर्गप्राप्त जातियों का एकत्र समावेश करने से जो रूप बनते हैं, उन्हें देख कर यह अनुमान या कल्पना भी नहीं की जा सकती कि भरत को कुछ ऐसा मिश्रण अभिप्रेत रहा होगा।

प्रथम विकल्प की मिश्रण-विधि में भिन्न २ जातियों से प्राप्त राग-रूपों के सादृश्य का मिश्रण और तदंगभूत स्वरावलियों में पुनरुक्ति दोष का बाहुल्य हमने देखा। प्रस्तुत विकल्प में न्यास स्वर के नियंत्रण के बावजूद स्वरों की पुनरुक्ति और संसर्ग की निरर्थकता भी हमने देखी। अतः इन दोनों ही विकल्पों के अंतर्गत द्विविध सम्मिश्रण अग्राह्य जान पड़ता है।

इन उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण संसर्गजा जातियों में क्षीर-नीर अथवा दुग्ध शर्करा जैसा मिश्रण त्याज्य ही मानना पड़ता है। ध्यान रहे कि भरत ने भी इस प्रसंग में 'मिश्रण' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया है। उन्होंने 'संसर्ग', 'समवाय' और 'संयोग'—इन शब्दों का ही प्रयोग किया है। ये तीनों शब्द सम्बन्ध-विशेष के द्योतक हैं।* इन शब्दों के अर्थ को देखते हुए ऐसी प्रतीति होती है कि मिश्रण की इस प्रकार की प्रक्रिया मान्य नहीं हो सकती जिसमें कि संसर्गप्राप्त जातियों का 'येन-केन प्रकारेण' केवल एकत्रीकरण ही प्रयोजन हो। 'सम्बन्ध-विशेष' की स्थापना के लिये तो संसर्गप्राप्त जातियों में परस्पर अंगांगिभाव से संयोग आवश्यक है। अर्थात् संसर्गजा जातियों में जिन जिन जातियों का संयोग या समवाय या संसर्ग अभिप्रेत हो वे सब किसी केन्द्र-स्थानीय स्वररूप (अंगी) के अंगों के रूप में सबद्ध रहें और अंगांगिभाव-युक्त समग्र रूप 'संसर्गजा जाति' अभिधान प्राप्त करे, ऐसा अर्थ भरत के 'संयोग', 'समवाय' और 'संसर्ग' शब्दों में निहित जान पड़ता है। इस अर्थ के अनुसार हम निम्नलिखित तीन विकल्प प्रस्तुत करते हैं।

'संसर्गजा जातियों में 'समवाय' दृष्टि से संयोग—तीसरा विकल्प'

संसर्गजा जातियों में पारस्परिक संसर्ग (मिश्रण) के दो रूप हम इसके पूर्व बता चुके हैं। उनके समवाय का कोई विशेष विधान ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होने से क्रिया-रूप में जो जो सम्भव संयोग हो सकता है, उसका एक अन्य रूप यहां दिया जा रहा है। अर्थात् मिश्रण की प्रक्रिया का त्याज्यत्व और 'समवाय' के अर्थानुसार अंगांगिभाव की स्थापना का ग्राह्यत्व—इन दोनों का ऊपर जो प्रतिपादन किया गया है तदनुसार इस विकल्प में एक विशिष्ट समवाय-विधि का निरूपण प्रस्तुत है। इस विधि के प्रमुख पहलू ये हैं —

(१) संसर्गजा जाति का जो ग्राम है, उसी ग्राम की मूल स्वरावली को केन्द्रस्थ रखा जाएगा।

(२) उस केन्द्रस्थ स्वरावली में संसर्गजा जाति का जो भी न्यास स्वर होगा वह मुकाम का या ठहराव का स्थान लेगा, षड्ज का नहीं।

(३) संसर्गजा जाति के अंतर्गत जिन-जिन जातियों का संसर्ग अभिप्रेत हो, उनके पृथक्-पृथक् रूपों के निर्माण के लिए क्रमशः भिन्न २ ग्रह अंशों को षड्ज का स्थान देना होगा।

(४) इन विभिन्न स्वर रूपों को केन्द्रस्थ स्वरावली के साथ समवाय सम्बन्ध द्वारा आबद्ध करने के लिए उपर्युक्त न्यास स्वर सन्धि-स्थल का कार्य करेगा और इस प्रकार न्यास का नियामकत्व अक्षत रहेगा।

षड्जोदीच्यवा का उदाहरण

उदाहरण के लिये षड्जोदीच्यवा नाम की जाति में षाड्जी, गान्धारी और धैवती—इन तीनों जातियों का परस्पर संयोग कहा गया है। षड्जोदीच्यवा जाति षड्जग्राम की है और उसमें, जैसा कि हम

---

* न्यायदर्शन में 'समवाय-सम्बन्ध' उस सम्बन्ध-विशेष को कहते हैं जो अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, जाति व्यक्ति, क्रिया-क्रियावान् में रहता है।

पहले कह आये हैं षड्जग्राम की षाड्जी और धैवती तथा मध्यग्राम की गान्धारी जाति का संयोग है। कैसे ? किस ढंग से ? यह जाति षड्जग्राम की होने से षाड्जी इसका स्थायी रूप होगा, गान्धारी और धैवती का उसमें यथा-नाट्य भाव यथा संचारि-भाव विनियोग होगा। षाड्जी को स्थायिभाव मानकर उसके अन्तर्गत अन्य संचारिभाव जहाँ जिस प्रकार नाट्यानुकूल प्रयुक्त करने की आवश्यकता हो तदनुसार गान्धारी और धैवती का संसर्ग करना चाहिए।

यहाँ यह ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि इन तीनों जातियों के संसर्ग के लिये मध्यम, जो कि इस संसर्गजा जाति का न्यास कहा गया है, वह इन तीनों जातियों का समन्वय स्थापित करने का माध्यम रहेगा। यहाँ 'न्यास' यहाँ विश्राम या मुकाम का स्थान पाता है। जहाँ मुकाम है वहीं से अन्य स्वरावलि का योग जोड़ा जाएगा; और वहीं से मूल स्वरावली पर लौटने की सुविधा होगी। षड्जग्राम का मध्यम और मध्यमग्राम का मध्यम दोनों षड्ज-मध्यम-भाव से पारस्परिक संवाद से आबद्ध हैं। षड्जग्राम का षड्ज ही मध्यमग्राम का मध्यम है यह हम जानते हैं। मध्यमग्राम के मध्यम पर न्यास करना यानी षड्जग्राम के षड्ज पर मुकाम करना। तद्वत् षड्जग्राम के मध्यम पर न्यास करना यानी मध्यमग्राम के निषाद पर न्यास करना। मध्यमग्राम की गान्धारी जाति का आरंभस्थान गान्धार और षड्जग्राम का निषाद ये दोनों एक ही स्थान पर स्थित हैं। मध्यमग्राम के गान्धार को यानी षड्जग्राम के निषाद को षड्जस्थानीय मान कर चलने से षड्जग्राम का मध्यम गान्धारी का पंचम हो जाएगा। अब हम पहले षाड्जी और गान्धारी, इन दोनों का समन्वय कर के देखें :—

षाड्जी—षड्ज ग्रह-अंश—न्यास मध्यम

सा रि ग् रि म, सा म, म ग् रि ग् ऽ म, सा रि ग् सा रि म, प म, प ध ऽ म, म प ध ऽ म, म ग् रि म, म ग रि सा। सा ग् रि ग् म।

मध्यम को न्यास रखते हुए षाड्जी का यह रूप बना। अब इसी मध्यम को न्यास रखते हुए गान्धारी की स्वरावली ली जाए तो यही षड्जग्राम का मध्यम उस गान्धारी में पञ्चम का स्थान पाएगा और इस प्रकार षाड्जी के ही स्वरों में गान्धारी का कल्याण-सदृश रूप बनेगा। यह ध्यान रहे कि गान्धारी मध्यमग्राम की जाति है। मध्यमग्राम में षड्जग्राम का अन्तर गान्धार ही धैवत का स्थान पाता है। इसलिए गान्धारी का रूप-निर्माण करते समय षड्जग्राम का अन्तर गान्धार प्रयुक्त करना होगा। और वह गान्धारी जाति में तीव्र मध्यम का स्थान पाएगा। मध्यमग्राम के गान्धार को यानी षड्जग्राम के निषाद को ग्रह-अंश बनाने से अन्तर गान्धार-युक्त षाड्जी जाति की स्वरावली में ही निम्नोक्त प्रकार से गान्धारी का आविर्भाव होगा। यथा :—

पाड्जी— मगरिग्रिसानि॒, नि॒सारिगम, मगरिग्रिसा, नि॒सारिगमभरिग्रिसा, ध॒सारिग्रिसा,
गान्धारी—पम्गमगरिसा, सारिगम्प, पम् गमगरि, सारि गम्पम् गम गरि, नि॒रि गम गरि,
पाड्जी— रिगमगरिग्रिसाऽनि॒, नि॒सारिगम।
गान्धारी—गम्पम्गमगरिऽसा, सा रिगम्प।

अथवा

पाड्जी— मगरिग्रिसाऽनि॒, ध॒सारिगम, मगमपगम, रिग्रिसारिगम, रिगमपगम, रिग्रिसा,
गान्धारी—पम् गम गरिऽसा, नि॒रिगम्प, पम्पधम्प, गमगरिगम्प, गम्पधम्प, गमगरि,
पाड्जी— नि॒सारिगम, सारि रिग गम मप प ध ध नि ध पऽम, मगपम ऽ गरिगरिसा ऽ रिगऽम।
गान्धारी—सारिगम्प, रिग गम् म्प पध धनि निसां निधऽप, पम्धप ऽ म् गम गरि ऽ गम्ऽप।

इस प्रकार हमने देखा कि ग्रह अंश बदलने से आज के जैमिनि-कल्याण के रूप का भास होता है और मूल षड्जग्रामिक स्वरावलि को देखते हुए दो गान्धारवाले काफ़ी अथवा कहीं-कहीं जयजयवन्ती सदृश रूप का दर्शन होता है। इसी से धैवती का संसर्ग करते समय भरत के कथनानुसार धैवती को ग्रह अंश बनाना होगा। यथा —

षाड्जी— ध़ नि़ ध़, म़ ध़ नि़ सा ऽ ध़ नि़ ध़, म़ धनि़ ध़ ऽ, म़ नि़ ध़, म़ नि़ ध़ सा ऽ ध़ नि़ ध़,
धैवती— सा रि़ सा, ध़ सा रि़ ग ऽ सारिसा, ध़ सा रि सा ऽ, ध़ रि़ सा, ध़ रि़ साग़ ऽ सा रि़ सा,

षाड्जी— नि़ साग़ऽसाऽध़नि़ ध़ ध़नि़ सागऽम, गमग़सा ऽ नि़ ऽ ध़नि़ ध़, मऽगमऽग़माऽनि़ साऽध़नि़ ध़,
धैवती— सारि़ गमऽग़ऽसारिसा, सारिगमऽध़, मध़मग ऽ रि़ ऽ सारि़सा, ध़ऽमध़ऽमग़ऽरिग़ऽसारि़सा,

षाड्जी— ध़नि़ साग़म ऽ, म ग़ ऽ साग़ ऽ म ऽ, म ग म सा, ग़सागनि़, सानि़सा ध़ ऽ नि़ ध़,
धैवती— सारि़ गमध़ऽ, ध़ म ऽ ग म ऽ ध ऽ, ध म ध़ ग़, मग़मरि़, ग़रि़ग़सा ऽ रि़सा,

षाड्जी— म़प़ ध़ नि़ ध़ प़ नि़ ध़, म़ प़ ध़ ऽ प़ ध़ नि़ ऽ, धनि़साऽ ध़ नि ध़ ।
धैवती— ध़ नि़ सारि़सानि़ रि़सा, ध़ नि़ सा ऽ नि सा रि़ ऽ, सारि़ग़ ऽ सारि़सा ।

षाड्जी— ध़नि़ रिसाऽध़नि़ ध़, ध़नि़ सारिनि़ साऽध नि़ ध़, ध़नि़ सारिग़रिऽसाऽध़नि़ ध़,
धैवती — सारि़ म ग ऽसारि़सा, सारि ग़ मरि़ गऽसारि़सा, सारि ग़ मम़ म ऽ ग़ऽसारि़सा,

अथवा

षाड्जी— ध़नि़ सागमऽमग़सानि सागम, मग़सानि ग़सानि ध, धनि़ साग़मऽमधनि़ साऽ धनि़ ध, म़ ऽमऽग़म ध,
धैवती— सारि़ग़ मध़ऽध़मग़रि ग़ मध, धम ग़रि़ म ग़रि़सा, सारि़ गमध़ऽध़ सारि ग़ऽसारिसा, ध़ ऽ ग़ऽमध़सा,

षाड्जी— ध प धनि़ ध प मऽ मग नि़ ध पम ऽ गमग़साऽ ध़नि़ ध, धनि़सा ग़म, गमग़साधनि़ ध,
धैवती — सानि़सारि सानि़ध़ऽ धनि़रि सानि़ध़ऽ मध़म ग़ऽ सारिसा, सारिग़मध़, मध़मग़सारि सा,

षाड्जी— धनि़ सारिसा ऽ धनि़ धऽ ।
धैवती— सारिग़ म ग ऽ सारिसाऽ ।

धैवत को ग्रह अंश बनाने से ऊपर लिखी स्वरावली प्राप्त हुई जिसमें 'धैवती' जाति में संनिहित तोडी भैरवी का सा रूप उपलब्ध हुआ। यह ध्यान रहे कि पुनः उस धैवत का छोड़ कर षड्ज को ही ग्रह अंश बनाने से षाड्जी की पुनः स्थापना होगी और इस प्रकार स्थायी स्वरों पर लौट कर पुनः स्थायिभाव का परिपोष किया जायगा। षड्जोदीच्यवा का न्यास मध्यम इस पुनरावर्तन की क्रिया के लिए सविश्वस्त बनेगा।

इस जाति के ग्रह अंशों में मध्यम का भी स्थान दिया गया है। तदनुसार मध्यम को अंशत्व देने से खमाज-सदृश स्वरावली प्राप्त होगी। किन्तु 'मध्यम' यहाँ किसी संसर्गप्राप्त जाति के न्यास स्वर का प्रतिनिधि नहीं है। संसर्गजा जातियों में कहीं २ इस प्रकार ग्रह अंशों का जो आधिक्य पाया जाता है, उस पर कुछ आगे चलकर विचार किया जायगा।

रक्तगान्धारी का उदाहरण

रक्तगान्धारी मध्यमग्राम की जाति है। इसमें गान्धारी, मध्यमा, पंचमी और नैषादी—इन चार जातियों का समवाय है। मध्यमग्राम का गान्धार न्यास है अर्थात् इन चारों के सम्मिलन का स्थान है। ग्रह अंश 'सा, रे ग म प, नि' हैं। यह जाति मध्यमग्राम की होने से मध्यमग्राम के गान्धार को न्यास अर्थात् ठहराव का स्थान बनाते हुए, मूल मध्यमग्रामिक स्वरों में इस जाति के आधारभूत (केन्द्रीय) रूप का निर्माण करना होगा।

१—रिससनि॒, नि॒सारिग॒ऽमग॒मरिगसरिनि॒, नि॒सासारिरिग॒रि,
२—गरिरिस, सरिगमऽधपमपगमरिगस, सरिरिगगमग,
३—पममग॒, ग॒मपधऽसांनि॒ध॒नि॒धमपग॒, ग॒मम॒पपधप,

१—नि॒सारिग॒रि, सरि॒मग॒, रिग॒मपम, पमऽग॒, मरिऽग॒स, रिनिऽऽ
२—सरिगमग, रिगमपम, गमपधप, धपऽधम, पगऽमरि, गसऽऽ
३—ग॒मपध॒प, मपनि॒नि॒ध॒, पध॒नि॒सांनि, सांनि॒ऽर्मध॒, नि॒प॒ऽध॒म, पगऽऽ

सग॒मपग॒मपनि॒पग॒, ग॒मपनि॒ग॒, सग॒ऽऽ—यह स्वरावली सन्धिस्थल है जहाँ से पुन. गान्धारी पर लौट सकते हैं।

ध्यान रहे कि रक्तगान्धारी के ग्रह्-अंश में भरत ने 'गमपनि' के अतिरिक्त ऋषभ को भी स्थान दिया है। ऋषभ से षड्जग्राम की आर्षभी जाति बनती है। यहाँ आर्षभी जाति का संसर्ग नहा कहा गया है। षडजग्राम का पंचम ही मध्यमग्राम का ऋषभ है। मध्यमग्राम के पचम को ग्रह्-अंश का स्थान देकर हमने अभी ऊपर पचमी का ससर्ग निर्दशित किया। मध्यमग्राम के पचम को यदि षडज्ग्राम का ऋषभ मानकर चलेंगे तो द्विश्रुतिक (कोमल) 'रे' प्राप्त होगा और ऊपर लिखी पचमी की आसावरी-सदृश स्वरावली के स्थान पर भैरवी-सदृश स्वरावली प्राप्त होगी यथा .—

ष० ग्रा० ऋ० ग्रहअंश १—रिग॒मप, पमग॒ऽरि, सानि॒ऽसारि, रिग॒मप, मपधनि॒ध,
(ऋषभ को 'सा' मानकर प्राप्त स्वरावली) २—सरि॒गम, मग॒रि॒ऽस, नि॒ध॒ऽनिम, सरि॒ग॒म, ग॒मपध॒प,
म० ग्रा० स्वरावली ३—पध॒नि॒सा, सांनि॒ध॒ऽप, मग॒ऽमप, पध॒नि॒सां, नि॒सांरिगं॒रिं,
१—पमग॒ऽरि, सानि॒ऽसाऽरि, रिग॒मपधनि॒सांरिं,
२—मग॒रि॒ऽस, नि॒ध॒ऽनि॒ऽसा, सरि॒ग॒मपध॒नि॒सां,
३—सांनि॒धऽप, मग॒ऽमऽप, पध॒नि॒सांरिगं॒मं,

मध्यमग्राम का पञ्चम और षड्जग्राम का ऋषभ—दोना एक ही स्थान पर स्थित होने पर भी ग्रामभेद के कारण दोनों से उत्थित स्वरावलियो में जो भिन्नता है, उसी के निदर्शन के लिए सभवत भरत ने ऋषभ को भी ग्रह अंशो मे, स्थान दिया होगा।

ससर्गजा जातियो मे जिन जातियो का ससर्ग कहा गया है, उनमे परस्पर 'समवाय सबन्ध' की स्थापना के लिये हमने एक विधि, विकल्प के रूप में प्रस्तुत की। 'ससर्ग', सयोग', 'समवाय' इन शब्दा के अर्थ पर अधिक विचार करते हुए दो बातें मुख्यत विचारणीय जान पडती हैं जो निम्नलिखित हैं। इन पर विचार करते हुए हम एक अन्य समवाय—विधि को विकल्प के रूप मे प्रस्तुत कर रहे हैं।

समवाय का एक विशिष्ट दर्शन—चौथा विकल्प

(१) अपवादरूप षड्जमध्या और कैशिकी को छोड़कर प्रत्येक संसर्गजा जाति में न्यास स्वर एक एक ही कहा गया है। शुद्धा जातिया के अवान्तर विकृत भेद बनाने के निमित्त जिस प्रकार उनमे अनेक ग्रह अंशा का निर्देश किया गया है उसी प्रकार शुद्धाओ के ससर्ग से उत्पन्न इन एकादश जातियो म भी दो एक अपवादो को छोड कर प्राय सभी मे एकाधिक ग्रह अंश कहे गए हैं, किन्तु न्यास स्वर इनम भी प्राय एक एक ही कहा है।

(२) एक ओर हम देखते हैं कि संसर्गजा जातियो में न्यास-स्वर प्राय एक-एक ही कहे गए हैं और दूसरी ओर उनमें एकाधिक जातियो का संसर्ग भी बताया गया है। ऐसी अवस्था म किसी एक न्यास-स्वर को संसर्गजा जाति के स्वरूप का नियामक कैसे समझा जाय ? तथा इन संस र्गजा जातिया म न्यासस्वर स भिन्न जो ग्रह अंश कहे गए हैं, उनका संसर्गज रूप की निष्पत्ति मे क्या और कैसा योगदान समझना चाहिये ?

(३) भरतोक्त 'समवाय' 'संयोग' 'संसर्ग' आदि शब्दों के भावार्थ पर विचार करने से ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि जिन जातियों का संसर्ग बताया गया है, उनके व्यक्तिगत रूप को बनाये रखते हुए उनका एकत्र समावेश करना अभिप्रेत है। इस प्रकार एकत्र समावेश से समवायी रूपों के निर्माण के लिये किसी न किसी नियामक आधार की आवश्यकता है। वह आधार हमें भिन्न भिन्न संसर्गजा जातियों में भरत के बताए हुए न्यास स्वरों में उपलब्ध होता है। ध्यान रहे यहाँ एकादश में से उन नौ संसर्गजा जातियों का ही प्रसंग है जिनमें कि एक ही एक न्यास स्वर कहा गया है। जिन दो जातियों में एकाधिक न्यासस्वर कहे हैं उन पर अन्यत्र पृथक् रूप में विचार किया जाएगा। यह हमें कभी नहीं भूलना चाहिये कि इन सभी जातियों का विनियोग प्रसंगानुकूल भावाभिव्यक्ति के लिये नाट्य में किया गया है। इसका विशद स्पष्टीकरण कुछ आगे चल कर दिया जाएगा। अस्तु।

'समवाय' सम्बन्ध से संसर्गजा जातियों के निर्माण के लिये उनके अपने अपने एक एक न्यास स्वर तो नियामक आधार हैं ही, साथ ही जिन जातियों का संसर्ग या संयोग अभीप्सित है उनके अपने अपने व्यक्तित्व के निदर्शन के लिए संसर्गज-रूपों में एकाधिक ग्रह अंश कहे गये हैं। संसर्गजा जातियों में जो ग्रह अंश कहे हैं वे प्राय* उन शुद्धा जातियों के नियामक स्वरूप न्यास स्वरों के प्रतिनिधि हैं जिनका कि वहाँ संसर्ग अभिप्रेत है। पृष्ठ ५१-२ पर दी हुई सारिणी में यह बात स्पष्ट होगी। जिन स्वरों को रेखांकित किया गया है वे संसर्गप्राप्त जातियों के ऐसे न्यास स्वर हैं जिन्हें संसर्गजा जाति के 'ग्रह अंशों' में अथवा 'न्यास' में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

प्रस्तुत सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि केवल कुछ एक संसर्गजा जातियाँ ऐसी हैं जिनमें संसर्गप्राप्त जातियों के न्यास स्वरों में से एकाध स्वर को ग्रह अंश या न्यास में कहीं भी स्थान नहीं मिल पाया है। इन अपवादों के पीछे ग्रन्थकारों का क्या विशेष हेतु होगा यह ग्रन्थों से स्पष्ट नहीं होता, यह कठिनाई बुधजनों के समक्ष यथावत् निवेदित है। साथ ही कुछ संसर्गजा जातियाँ ऐसी भी हैं जिनके ग्रह अंशों में कुछेक स्वरों का आधिक्य है जो सारिणी में दिखाया गया है। उस पर कुछ आगे चल कर विचार किया जाएगा।

प्रस्तुत विकल्प में संसर्गजा जातियों के ग्रह-अंशों के आधार पर उनके अन्तर्गत संसर्गप्राप्त जातियों की अपनी अपनी स्वरावलियों का क्रमशः आविर्भाव करना होगा। इस विकल्प में न्यास स्वर को षड्ज का स्थान देना होगा और उससे उत्थित स्वरावली केन्द्रस्थ बनेगी। ग्रह अंश, संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावलियों के निर्माण के आधार बनें। इन स्वरावलियों को समवाय-सम्बन्ध-युक्त बनाने के हेतु न्यास स्वर से उत्थित स्वरावली केन्द्रस्थ बनकर इनके संयोग का नियमन करेगी और इस प्रकार 'न्यास' का नियामकत्व यहाँ भी अक्षुण्ण रहेगा।

प्रत्येक संसर्गज रूप के व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए जब एक से अधिक रूपों का संसर्ग करना अभिप्रेत हो, तब आविर्भाव के साथ-साथ तिरोभाव की क्रिया भी आवश्यक होगी, क्योंकि एक रूप के तिरोभाव के बाद ही अन्य रूप का आविर्भाव हो सकेगा। इस आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया के नियमन के लिये किसी निश्चित आधार की आवश्यकता है ही। यही अपेक्षित आधार भरत-कथित न्यास स्वर में उपलब्ध होता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मध्यमग्राम की रक्तगान्धारी जाति में गान्धारी, पञ्चमी, मध्यमा ये तीन मध्यमग्राम की और 'नैषादी' षड्जग्राम की, यों चार जातियों का संसर्ग कहा गया है। इस संसर्गज रूप का एक ही न्यास स्वर कहा गया है और वह है मध्यमग्राम का गान्धार। अब न्यास स्वर के अनुसार, मध्यमग्राम के गान्धार से उत्थित स्वरावली को पंचमी, मध्यमा और नैषादी के संसर्ग के लिए आधार बनाया जाए एवं उसी आधार से इन उन जातियों के आविर्भाव और तिरोभाव की क्रिया की जाए। इस प्रकार रक्तगान्धारी का न्यासस्वर गान्धार उसी संसर्गज रूप का नियामक

* 'प्राय' का उल्लेख उन अपवादों के कारण किया गया है जिनकी संख्या नगण्य नहीं है।

संसर्गजा जाति का नाम	संसर्गग्राम जातियाँ	ग्राम	न्यासस्वर	संसर्गग्राम जातियों के अपने-अपने स्वरूप के नियामक न्यास स्वर	संसर्गजा जाति के ग्रह-अंश	विशेषोल्लेख
षड्जकैशिकी	षाड्जी, गान्धारी	षड्ज	गान्धार	सा ग	सा, ग, प	ग्रह अंशों मे पंचम का आधिक्य है।
षड्जोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी धैवती	,,	मध्यम	सा, ग, म	सा, म, ध, नि	संसर्गग्राम गान्धारी जाति के न्यास-स्वर गान्धार को ग्रह-अंशों मे स्थान नहीं है, किन्तु, ष ग्राम का निषाद ही म. ग्राम का गान्धार है, इसलिए निषाद को यहाँ म. ग्राम की गान्धारी जाति के न्यास का प्रतिनिधि मान सकते हैं। ग्रह अंशों के अन्तर्गत मध्यम, षड्जकैशिकी के अपने न्यास स्वर का प्रतिनिधि है।
रक्तगान्धारी	गान्धारी, पञ्चमी, नैषादी, मध्यमा	मध्यम	गान्धार	ग, प, नि, म	(सा)रि,ग,म,(प),नि	पञ्चमी के न्यास स्वर पञ्चम के स्थान पर ग्रह-अंशों में ऋषभ [illegible] स्थान दिया गया है। षड्जग्राम का 'रि' ही मध्यमग्राम का 'प' है। ग्रह, अंशों में अन्तर्गत 'सा' का आधिक्य है। इसके ग्रह-अंशों के लिए भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। भरत ने 'रिगमपनि', शार्ङ्गदेव और मतंग ने 'सागमपनि' और नान्यदेव ने 'सारिगमनि' कहे हैं। इसीलिए 'सा' और 'प' को कोष्ठक में रखा गया है।
गान्धारोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी धैवती, मध्यमा	,,	मध्यम	सा, ग, ध, म	सा, म	गान्धारी और धैवती के न्यास स्वर 'ग,ध' को ग्रह अंशों में कोई स्थान नहीं। षड्जग्राम की षाड्जी का 'सा' और मध्यम ग्राम की मध्यमा का 'म', इन दोनों को ग्रह अंशों में स्थान दे कर संसर्गग्राम जातियों के दोनों ग्रामों को ग्रहण कर लिया गया है।

संसर्गजा जाति का नाम	संसर्गप्राप्त जातियाँ	ग्राम	न्यासस्वर	संसर्गप्राप्त जातियों के अपने-अपने स्वर-रूप के नियामक न्यास स्वर	संसर्गजा जाति के ग्रह अंश	विशेषोल्लेख
मध्यमोदीच्यवा	गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, मध्यमा	मध्यम	मध्यम	ग, प, ध, म	प	मध्यमा जाति के न्यास स्वर का प्रतिनिधि 'मध्यमोदीच्यवा' के अपने न्यास स्वर में है, किन्तु गान्धारी और धैवती के न्यास-स्वरों को ग्रह अंशों में कहीं प्रतिनिधित्व नहीं है।
गान्धारपञ्चमी	गान्धारी, पञ्चमी	,,	गान्धार	ग, प	प	गान्धारी के न्यास स्वर गान्धार को गान्धारपञ्चमी के न्यास के रूप में ही स्थान प्राप्त है।
आन्ध्री	गान्धारी, षाड्जी	,,	गान्धार	ग सा	प, रि, ग, नि	षाड्जी के न्यास स्वर षड्ज को ग्रह अंशों में स्थान नहीं है और 'रिप' तथा 'नि' इन तीन ग्रह-अंशों का आधिक्य है।
नन्दयन्ती	गान्धारी, पञ्चमी, आर्षभी	,,	गान्धार	ग, प, रि	ग्रह 'ग,' अंश 'प'	आर्षभी के न्यास स्वर 'रि' को मध्यम-ग्राम के 'प' में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।
कार्मारवी	नैषादी, आर्षभी, पञ्चमी	,,	पञ्चम	नि, रि, प	प, रि, नि, ध	ग्रह-अंशों में 'ध' का इस जाति में आधिक्य है।

बनता है। इस संसर्गजा जाति मे '(सा) रि ग म (प) नि' ये मह अंश कहे गये ह। इन मह अंश स्वरो से कभी गान्धारी, कभी मध्यमा, कभी पचमी, और कभी नैषादी जातियों की स्वरावलियों का रक्तगान्धारी के न्यासस्वर से उत्थित केन्द्रीय स्वरावलि के साथ सम्बन्ध जोडते हुए आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया की जाए।

यहा पुनरुक्ति की आवश्यकता नही है कि इन जातियो के जो शुद्ध रूप हैं उन्ही का यहा मलकारिक आविर्भाव-तिरोभाव होता रहेगा। संसर्गजा जाति के अपने न्यास-स्वर से प्राप्त मूल स्वरावलि इन आविर्भाव तिरोभाव के बीच बीच में विराम और सधिस्थल बनकर संसर्गज रूप का नियमन करेगी और केन्द्रीय स्थान ग्रहण करेगी।

ग्रह अशो के आधिक्य पर विचार

यहा स्मरण रहे कि कुछ ससर्गजा जातियो मे ग्रह अंश मे कुछेक स्वरो का आधिक्य है। अर्थात् उन उन संसर्गजा जातियो के अन्तर्गत जिन जिन शुद्धा जातियो का समर्ग अभिप्रेत है उनके अपने अपने न्यास स्वर तो उन उन ससर्गजा जातियो के ग्रह अशो मे स्थान पाए ही हैं किन्तु उनके अतिरिक्त भी कुछ अधिक ग्रह अश बनाए गये ह। उदाहरणार्थ रक्तगान्धारी जाति के ग्रह अश '(सा) रे ग म (प) नि' मे से षड्ज किसी भी संसर्गप्राप्त जाति का प्रतिनिधि नहा है। सभव है कि ऐसे अतिरिक्त ग्रह अश-स्वर संसर्गजा जाति के केन्द्रस्थ रूप मे कुछ वैविध्य लाने के लिये उपयोगी होते होगे।

संसर्गप्राप्त जातियो के आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया के बीच बीच मे केन्द्रस्थ स्वरावलि का पुनरावर्त्तन होना क्रमप्राप्त है। इस पुनरावर्त्तन मे एकरसता (monotony) न आ जाएँ इस दृष्टि से सभवत उसमें कुछ वैविध्य लाने के लिये भरत ने कहा-कहीं ग्रह अशो का आधिक्य रखा हो। जैसे आज गुणिजन किसी राग का विस्तार करते समय राग मे नियमित रूप से प्रयुक्त स्वरो के अतिरिक्त अन्य स्वरो के प्रयोग से या अन्य राग की छाया या आभास दिखाकर भावपूर्ण चमत्कार की सृष्टि करते हैं, कुछ उसी ढग की क्रिया ससर्गजा जातियो की केन्द्रीय स्वरावलि म भरत को अभिप्रेत रही होगी और सभवत इसी लिये उन्होने कहीं-कहीं एक आध ग्रह अश का आधिक्य रखा होगा।

जातियो के समवाय की वीणावादन में प्रत्यक्ष सिद्धि

ससर्गजा जातियो के बारे मे 'समवाय' का जो चौथा विकल्प हमने अभी देखा उसे प्रत्यक्ष वीणा-वादन मे कैसे प्रयुक्त किया जाए या कैसे किया जा सकता है, इसका स्वल्प स्पष्टीकरण यहां स्थानीय होगा, क्योकि स्वर-सन्निवेश तथा स्वरान्तरालो की प्रत्यक्ष सिद्धि के लिए वीणा ही प्रामाणिक साधन है।

'सा' 'म' और 'प' ये तीन स्वर tonic (स्वरित) के रूप में परापूर्व से मान्य माने गए है।* वीणा पर इन तीन स्वरो की स्थिति कहां है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह उल्लेखनीय है कि वीणा पर बाज के तार को मन्द्र मध्यम अथवा मन्द्र षड्ज अथवा मध्य षडज मे मिलाने की परम्परा और ग्रन्थस्थ उल्लेख मिलते हैं। बाज के तार को पञ्चम मे मिलाने का उल्लेख या परम्परा कहीं नहीं है। बाज के मुक्त तार (मेरु) को मध्यम मानने से सातवां पर्दा षड्ज का स्थान पाता है और यही स्थान भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर के व्यवहार में मध्य सप्तक का आरंभक है। वीणा पर मतगोक्त मध्य सप्तक भी यही से आरभ होता है। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि मेरु पर मध्यम मानने से मेरु से दूसरा पर्दा पचम का स्थान पाता है। मेरु का षड्ज मानने स सातवां पर्दा पचम बन जाता है। इस प्रसग में यह भी स्मरणीय है कि षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम की स्वरावलियां विशिष्ट अन्तरालयुक्त होने से उनका स्थान वीणा पर नियत है, जो अपरिवर्त्तनीय है। वह स्थान है, मेरु से दूसरा पर्दा जिस पर षडजग्राम का षड्ज तथा मध्यमग्राम का मध्यम स्थित हैं। मेरु से सातवां पर्दा षड्जग्राम का मध्यम बनता है। इस प्रकार मेरु पर 'सा' अथवा 'म', दूसरे पर्दे पर 'सा' (षड्जग्राम) 'म' (मध्यमग्राम) अथवा 'प' (मध्य सप्तक का मन्द्र पञ्चम) तथा सातवें पर्दे पर भी 'स' 'म' 'प' की स्थिति है जो निम्न सारिणी से स्पष्ट होगी।

---

* यहां 'स्वरित' से वेद के 'उदात्त, अनुदात्त, स्वरित' इन तीन स्वरो म जो 'स्वरित' है उससे अभिप्राय नहीं है, अपितु अंग्रेजी के tonic शब्द को ही 'स्वरित' कहा गया है।

मेरु	मेरु से दूसरा पर्दा	मेरु से सातवाँ पर्दा
षड्ज	——	पञ्चम
मध्यम	पञ्चम ('मध्यम' साधक या मन्द पं०)	षड्ज
——	षड्ज (ष. ग्राम)	मध्यम
——	मध्यम (म. ग्राम)	——

वादन-क्रिया की सुविधा, संवादयुक्त स्वर-सन्निवेश की सुविधा तथा नवीन मूर्च्छना-निर्माण की सुविधा—इन सब दृष्टियों से वीणा पर यही तीन स्थान स्वरित के रूप में मान्य माने गए हैं और यही समुचित भी है। इसीलिये गुणिजनों की क्रिया में अन्य स्वरित का व्यवहार नहीं होता। अन्य स्थानों को स्वरित मानने से क्या असुविधाएँ होती हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि परम्परागत रूप से मिली हुई वीणा पर 'स' 'म' 'प' के अतिरिक्त 'रि' 'ग' 'ध' 'नि' में से किसी स्वर को यदि स्वरित के रूप में स्थापित करना हो तो आवश्यकतानुसार बाज के तार को घटाना या बढ़ाना होगा। किन्तु उसमें दो कठिनाइयाँ सामने आएँगी—(१) तरफ़ों वाले वाद्यों में बदले हुए स्वरित के अनुसार तरफ़ों को मिलाना होगा। इससे महफ़िल में रस-भंग होगा जिस से कोई भी कलाकार सदैव बचना चाहेगा। (२) स्वरित बदलने से जो अनिष्ट अन्तराल आएँगे उन्हें इष्ट बनाने के लिए पर्दे खिसकाने होंगे और यह सारी प्रक्रिया अत्यन्त श्रमसाध्य और कष्टप्रद होगी। इसी से उपरिकथित 'सा-म-प' को ही स्वरित मानना हर दृष्टि से इष्ट है।

इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि दोनों ग्रामों की मूल स्वरावलियाँ कभी वीणा के मध्य सप्तक में नहीं लाई जा सकतीं क्योंकि षड्जग्राम का त्रिश्रुति 'रि' तथा त्रिश्रुति 'ध' वीणा के संवादसिद्ध स्वर-स्थानों पर मध्य सप्तक में कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते। यदि कोई मध्य सप्तक में (यानी मेरु से सातवें पर्दे को षड्ज मान कर) दोनों ग्रामों की मूल स्वरावलियों को स्थापित करने का यत्न करे तो वीणा का बेसुरा हो जाना अवश्यम्भावी है जो किसी स्वरज्ञ को, किसी क्रियाकुशल गुणी को स्वीकार नहीं होगा। दोनों ग्रामों की मूल स्वरावलियाँ तो मेरु से दूसरे पर्दे को षड्ज अथवा मध्यम मानने से ही अबाध रूप से प्राप्त हो सकती हैं।

वीणा पर 'सा, म, प' की विभिन्न स्थानों पर स्थिति तथा इन्हीं तीन स्थानों को स्वरित (tonic) मानने की सुविधा और साथ ही उभयग्राम की वीणा पर नियत अथवा अपरिवर्तनीय स्थिति—इन तीनों विषयों पर ऊपर के उल्लेख से जो सिद्धान्त स्थिर हुए तदनुसार जातियों की वादन-विधि निम्नलिखित निरूपण में प्रस्तुत है।

शुद्धा जातियों की वादन-विधि

इस प्रसंग में संसर्गजा विकृता जातियों की वादन-विधि के निरूपण के पूर्व शुद्धा जातियों के लिए स्वल्प उल्लेख आवश्यक है। शुद्धा जातियों में जहाँ न्यास स्वर ग्रामविशेष की मूल स्वरावली का आरंभस्थान हो वहाँ तो ग्राम की मूल स्वरावली को अक्षत रखने के लिए उस जाति का वादन उसी स्थान को स्वरित मानकर किया जाए जो उस ग्रामविशेष का आरंभक हो। यथा षाड्जी में षड्जग्राम का षड्ज और मध्यमा में मध्यमग्राम का मध्यम न्यास स्वर है। अतः इन दोनों जातियों में वीणा के मन्द्र पञ्चम (मेरु से दूसरे पर्दे) को ही स्वरित मानना समीचीन होगा। यह स्थान मध्य षड्ज की अपेक्षा से मन्द्र पञ्चम है, अतः इससे वादनक्रिया सुविधापूर्वक हो सकेगी और उभयग्राम की मूल स्वरावलियाँ भी अक्षुण्ण रह सकेंगी। दोनों ग्रामों के श्रुत्यन्तरों का अपना विशिष्ट महत्त्व है जिसके कारण उन्हें अविकल बनाए रखना अनिवार्य है। किन्तु आर्षभी, गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, और नैषादी—इन जातियों में ग्राम की मौलिक स्वरावली को स्थान नहीं है, अतः उसे अक्षत रखने का कोई प्रश्न नहीं उठता। हम जानते हैं कि प्रत्येक ग्राम की सात मूर्च्छनाओं में से एक ही मूर्च्छना में ग्राम के मौलिक श्रुत्यन्तर प्राप्त होते हैं और अन्य मूर्च्छनाओं में स्वरों के संवादभेद

के कारण अन्तराल बदलते रहते हैं। इसीलिये यह कहा है कि षाड्जी और मध्यमा को छोड़कर अन्य शुद्धा जातियों मे ग्रामो के मौलिक श्रुत्यन्तर बनाए रखने का प्रश्न नही है। अत इन शेष पांच जातियां के अपने अपने स्वर से जो मूर्च्छना बने, उससे जो स्वरान्तराल प्राप्त हो उनका वीणा पर प्रयोग सुविधानुसार 'सा, म, प' मे से किसी भी स्थान से किया जा सकता है। यह सत्य है कि क्रियागत सुविधा मध्य सप्तक मे ही प्रचलित होगी, किन्तु फिर भी इच्छानुसार मेरु को अथवा दूसरे पर्दे को स्वरित मानकर वादन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए षड्जग्राम की आर्षभी जाति मे ऋषभ की मूर्च्छना से निम्नलिखित स्वरावली प्राप्त होगी :—

रि—ग—म—प—ध—नि—सा—रि

सा—रि—ग—म—प—ध—नि—सा

—२—४—४—३—२—४—३—

इस प्राप्त स्वरावली को मध्य सप्तक मे ले आने से अथवा मेरु को अथवा षड्जग्रामिक षड्ज को स्वरित मानकर प्रयुक्त करने से स्वर-संवाद का कहीं भंग नहीं होगा। इस मूर्च्छना मे 'सा म' का जो दस श्रुति अन्तराल है, उसके स्थान पर नव श्रुति का संवादी अन्तराल इन तीनो स्थानो से प्राप्त होगा। अत इस स्वरावली को मेरु से अथवा दूसरे पर्दे से अथवा मध्य षड्ज (सातवें पर्दे) से प्रयुक्त कर सकते हैं। वादन-सुविधा अवश्य ही 'मध्य सप्तक' (सातवें पर्दे से) मे अधिक होगी।

संसर्गजा जातियों की वादन विधि

यह तो हुई शुद्धा जातियो की बात। संसर्गजा जातियो मे 'समवाय' का वादन क्रिया मे कैसे उपयोग किया जा सकता है? इस का विवेचन इस प्रकार है। जहाँ न्यास स्वर ग्राम के आरम्भक स्वरसे भिन्न है, अर्थात् षड्जग्राम का षड्ज अथवा मध्यमग्राम का मध्यम नहीं है, वहां न्यास स्वर की मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावली को मध्य सप्तक मे ला कर केन्द्रीय स्थान देना होगा। जिन जातियो का संसर्ग बताया गया हो, उन जातियो के अपने न्यास स्वर को बारी बारी से आरम्भस्थान मानना होगा अर्थात् उन उन न्यास स्वरो से उत्थित मूर्च्छनाओ का प्रयोग करना होगा। जब जिस मूर्च्छना का प्रयोग होगा, तब उसी का आरम्भस्थान थोड़ी देर के लिए षड्ज का स्थान पा जाएगा और मध्य सप्तक के षड्ज के स्वरित रूप का तिरोभाव हो जाएगा। उस मूर्च्छना-विशेष का प्रयोग पूरा होते ही पुन मध्य सप्तक की स्वरावलि मे लौट कर मध्य षड्ज को स्वरित का रूप देना होगा। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। षड्जकैशिकी मे षाड्जी और गान्धारी का संसर्ग कहा गया है। और इसका अपना न्यास स्वर गान्धार कहा गया है। यह जाति षड्जग्राम की है, अत षड्जग्राम के गान्धार से उत्थित स्वरावली को सर्वप्रथम देख लें।

षड्जग्राम के गान्धार की मूर्च्छना—ग म–प ध–नि सा–रि–ग

गान्धार को षड्ज मानने से प्राप्त सा–रि–ग म प–ध नि–सा

स्वरावली— –४–४ ३–२ ४–३–२ –

इसी कल्याण-सदृश स्वरावली को मध्य सप्तक मे ला कर उसे उक्त जाति में केन्द्रीय स्थान दे दें। अब षाड्जी जाति के न्यास स्वर षड्जग्राम के षड्ज और गान्धारी जाति के न्यास स्वर मध्यमग्राम के गान्धार को कुछ अवधि तक क्रमश आरम्भस्थान मानते हुए उन उन स्वरो की मूर्च्छनाओ मे कुछ विस्तार कर के पुन मध्य सप्तक मे केन्द्रीय रूप पर लौट आना होगा। हाँ, जहाँ संसर्गजा जाति का न्यास स्वर ग्राम का आरम्भस्थान हो, जैसे गान्धारोदीच्यवा और मध्यमोदीच्यवा मे मध्यम ग्राम का मध्यम न्यास है, वहाँ ग्राम की मूल स्वरावली को प्रधान रखने के लिए उसे मध्य सप्तक मे लाए बिना ही उसी मूल आरंभस्थान से उत्थित स्वरावली को केन्द्रीय स्थान देना होगा। साथ ही जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया हो उन के न्यास स्वर के अनुसार उन का क्रमश प्रयोग करना होगा।

षड्जमध्यमा तथा कैशिकी ये दो ऐसी संसर्गजा जातियाँ हैं जिनमें एक से अधिक न्यास स्वर बताए गए हैं।

एकाधिक न्यास वाली दो संसर्गजा जातियाँ

षड्जमध्यमा में 'सा म' ये दो न्यास हैं और कैशिकी में 'ग नि' और क्वचित् 'प' भी, ये तीन न्यास हैं। इसीलिए इन पर पृथक् रूप से विचार करना आवश्यक समझा गया है। इन दोनों का अन्य संसर्गजा जातियों की अपेक्षा वैशिष्ट्य है, क्योंकि एक (षड्जमध्यमा) सर्वसंसर्गजा है और दूसरी (कैशिकी) में पाँच जातियों का संसर्ग है। ये दोनों विशेषताएँ अन्य किसी संसर्गजा जाति में नहीं हैं।

षड्जमध्यमा में षड्जग्राम की षाड्जी और मध्यमग्राम की मध्यमा—इन दो ही जातियों का संसर्ग है। ये दोनों जातियाँ क्रमशः षड्जग्राम और मध्यमग्राम की मूल स्वरावलियों की प्रतिनिधि हैं। यह जाति सर्वसंसर्गजा होने से इसमें उभयग्रामिक मूल स्वरावली का एकत्र समावेश रससिद्धि के लिए आवश्यक है। इसीलिए षड्जग्राम के षड्ज और मध्यमग्राम के मध्यम—इन दोनों का इसमें न्यासत्व रखा गया है। ये दोनों स्वर वीणा के एक ही स्थान अर्थात् मेरु से दूसरे पर्दे पर स्थित हैं। ध्यान रहे कि इस जाति में उभय स्वर-साधारण का प्रयोग विहित है और सातों स्वरों को इसमें ग्रहांश का स्थान दिया गया है। ये सातों स्वर उभयग्रामिक समझने चाहिए, क्योंकि यद्यपि संभवतः नामाभिधान में 'षड्ज' का प्रथम स्थान होने से, षड्जमध्यमा को षड्जग्राम की संसर्गजा जातियों में अन्तर्निविष्ट किया गया है, तथापि यह पूर्णरूप से उभयग्राम का सश्लिष्ट रूप है। यह श्लेष उभयग्राम के मूल स्वर षड्ज और मध्यम के न्यासत्व से स्पष्ट है।

कैशिकी में षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, और नैषादी—इन पाँच जातियों का संसर्ग है। इसके ग्रह-अंश 'सा' 'ग' 'म' 'प' 'ध' 'नि' कहे हैं, और धैवत के अंशत्व के कारण इसका रस बीभत्स-भयानक बताया गया है। इसके न्यास गान्धार निषाद बताकर भरत ने यह कहा है कि क्वचित् पञ्चम भी इसमें न्यास बनता है। हम जानते हैं कि षड्जग्राम का निषाद और मध्यमग्राम का गान्धार वीणा के एक ही स्थान पर अर्थात् मेरु पर स्थित हैं। अतः गान्धार-निषाद को न्यासत्व देने से उभयग्रामिक प्रतिभाव के अतिरिक्त वास्तव में 'न्यास' का द्वित्व नहीं है। पञ्चम को 'क्वचित् न्यास' कहने के पीछे कदाचित् भरत की रस-दृष्टि रही हो।

संसर्गजा जातियों के 'समवाय' या संयोग या 'संसर्ग' का स्वर-दृष्टि से क्या तात्पर्य है, यह हमने ऊपर विभिन्न

भाव-दृष्टि से संसर्गजा जातियों का दर्शन

विकल्पों में देखा। अब भाव-दृष्टि से इस विषय का कुछ विवेचन आवश्यक है। इस सबन्ध में सर्वप्रथम यह स्मरण रखना चाहिए कि 'जाति' का निरूपण नाट्य के प्रसंग में ही हुआ है अर्थात् नाट्योपयोगी संगीत प्रयोग की दृष्टि से 'जाति' के निरूपण में रखी गई है। भरत ने जातियों के रसों का जो उल्लेख किया है, उसे हम कुछ आगे चलकर देखेंगे। यहाँ इतना ही उल्लेखनीय है कि नाट्यगत संगीत प्रयोग के सन्दर्भ में 'जाति' पर विचार करने से संसर्गजा जातियों की 'समवाय-विधि' अधिक स्पष्ट हो जाएगी।*

हम जानते हैं कि किसी भी नाट्य-प्रयोग में केवल एक ही रस या भाव का निरन्तर अस्तित्व नहीं रहता। यहाँ तक कि एक दृश्य या 'प्रेक्षणक' में भी बहुत त्वरित गति से भावों का परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न स्थायि भावों की पुष्टि के लिए संचारि-भावों का आवागमन भी बना रहता है। इस प्रतिक्षण बदलती हुई भाव भूमिका के अनुरूप जब गीत या वाद्य या दोनों का प्रयोग करना अभीप्सित हो तब एक ही स्वरावलि के सतत प्रयोग से अभीष्ट सिद्धि नहीं हो सकती, यह स्पष्ट ही है। बदलती हुई भाव-परिस्थिति के साथ संगति बिठाने के लिए, संगीत प्रयोग में भी तदनुकूल परिवर्तन आवश्यक होते हैं। इन परिवर्तनों को एक नियमित स्वरूप देने के लिए भरत ने विभिन्न शुद्धा जातियों के समवाय से संसर्गजा जातियों का निर्माण किया होगा ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

* आजकल शास्त्रीय संगीत की महफिलें, कान्फ्रेंस और जलसे जिस प्रकार होते हैं उनका नाट्य से स्वतन्त्र या पृथक् रूप है। इस प्रकार के आयोजनों में आज शास्त्रीय संगीत जिस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, उस से नाट्यगत 'जाति'-संगीत भिन्न है। इसलिए भरतोक्त 'जाति' को हमें नाट्य की भाव-दृष्टि के अन्तर्गत समझना समीचीन होगा।

एक जाति के अपने रूप के अतिरिक्त अन्य जिस या जिन जातियों का उस एक ही जाति-विशेष में समवाय-रूप दर्शन अभिप्रेत हो, उन-उन जातियों के न्यास-स्वर से उद्भूत स्वरावलियां नाट्य के रसभाव-परिवर्तन के अनुकूल प्रयोग में लाई जाएं, अर्थात् उनका यथाभाव, यथानाट्यप्रसंग, यथारस उपयोग किया जाए और पुनः संसर्गजा जाति के अपने न्यास स्वर से प्राप्त स्वरावलि पर आकर उस प्रयोग-विशेष को पूर्ण किया जाए। उदाहरण के लिए षाड्जी जाति का रूप उसके न्यास-स्वर से दिखाते हुए जहां अन्य भाव के परिवर्तन की नाट्य में आवश्यकता प्रतीत हो, तदनुसार गान्धारी या धैवती, मध्यमा, पञ्चमी जो कुछ अन्य जातियां उस संसर्गज रूप में बताई गई हों, उनका यथास्थान, यथा-भाव विनियोग करना यही भरतमुनि का संसर्गजा जातियां बताने का आशय हो सकता है।

जैसे काव्य-क्षेत्र में स्थायिभाव को स्थिर रखते हुए, (क्योंकि वह 'स्थायी' है) संचारि-भावों में संचरण किया जाता है और एक से अधिक संचारि-भावों में सञ्चरण करते हुए पुनः मूल स्थायि-भाव पर लौट आते हैं, तद्वत् एक संसर्गजा जाति के अपने न्यास स्वर से उत्थित स्थायी स्वरावली में अन्य संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावली द्वारा संचरण करते हुए भिन्न २ भावाभिव्यक्ति के साथ पुन. स्थायी स्वरावली द्वारा स्थायिभाव की पुष्टि करना भरत को अभिप्रेत रहा होगा।

ऊपर तीसरे और चौथे विकल्प में हमने 'समवाय' विधि पर जो विचार किया उसके साथ इस रस-दृष्टि का सामंजस्य इस प्रकार स्थापित किया जा सकता है कि संसर्गजा जाति के केन्द्रीय-रूप को प्रस्तुत स्थायिभाव का अभिव्यञ्जक समझा जाए और अन्य संसर्गप्राप्त रूपों को सञ्चारिभावों के अभिव्यञ्जक माना जाए। अर्थात् इन संसर्गजा जातियों द्वारा एक केन्द्रीय स्थायिभाव की परिधि में अनेक सञ्चारिभावों की अभिव्यक्ति संभव है। जब स्थायी (केन्द्रीय) स्वरावली का तिरोभाव कर के किसी अंगभूत स्वरावली द्वारा किसी सञ्चारिभाव की अभिव्यक्ति की जाएगी तब केन्द्र से परिधि की ओर गति समझी जाए और जब पुन. केन्द्रीय स्वरावली में लौटेंगे तब परिधि से केन्द्र की ओर गति समझनी चाहिए। इस प्रकार संसर्गजा जातियों द्वारा नाट्य में क्षण क्षण बदलते हुए भावों का स्वर-चित्रण भी संभव होता है और पुन -पुन केन्द्रीय रूप पर लौट कर स्थायिभाव का समुचित परिपोष भी सिद्ध होता है। साथ ही रसों के युग्मों की अभिव्यक्ति भी संभव समझी जा सकती है, यथा—एक ओर रौद्र तो दूसरी ओर करुण, एक ओर वीर तो दूसरी ओर अद्भुत, एक ओर बीभत्स तो दूसरी ओर भयानक, एक ओर शृंगार तो दूसरी ओर हास्य।* अस्तु।

जातियों के संसर्गज रूपों की इयत्ता

संसर्गजा जातियों में नाट्य—अन्तर्गत रस भाव की दृष्टि से विभिन्न शुद्धा जातियों का 'संसर्ग' या समवाय कहा गया है, यह विचार-सरणी ग्राह्य होने पर भी कुछ प्रश्न अवश्य उद्भूत होते हैं। यथा—इन संसर्गज रूपों के निर्माण में क्या नियम रहा होगा? किस नियम के आधार पर इतने ही संसर्गज रूप बनाए गए? कम या अधिक क्यों नहीं बनाए? अमुक-अमुक जातियों का ही संयोग क्यों किया गया? अन्यों का क्यों नहीं किया गया?—इत्यादि। उदाहरण के लिए षाड्जी के साथ गान्धारी या धैवती का ही संयोग क्यों, अन्य किसी का क्यों नहीं? इत्यादि। ग्रन्थकारों ने तो केवल इतना ही उल्लेख किया है कि अमुक-अमुक जातियों के संयोग या संसर्ग से अमुक-अमुक संसर्गज रूप निष्पन्न होते हैं। ऐसे संसर्गज रूप एकादश ही माने हैं और इतने में ही संसर्ग की मर्यादा बांध दी है। इस मर्यादा के कारण का कहीं कोई स्पष्टीकरण नहीं है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि इतने ही समवायी रूपों का निर्माण क्यों किया गया? कम या अधिक का क्यों नहीं? इसका कहीं कोई उत्तर प्राप्त नहीं है। किन्तु उपर्युक्त विचार सरणी के अनुसार 'जाति' के संगीत को नाट्य प्रयोग में रस-भाव का पोषक तत्व मानने पर यह कहा जा सकता है कि नाट्यानुकूल रस-भाव की अभिव्यक्ति के लिए इतने ही समवायी रूपों का विनियोग आवश्यक और पर्याप्त समझा गया होगा।

---

*भरत ने रसों के इन युग्मों का प्रतिपादन नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में किया है।

८

संसर्गजा जातियों के समवायी रूपों की रचना के बारे में जो योजनाएं हो सकती हैं, उनमें से दो योजना हम ऊपर तीसरे-चौथे विकल्प में पढ़ आए हैं, तीसरी योजना निम्नोक्त है—

'कुतप'-योजना में जातियों के समवायी रूप — पाँचवां विकल्प

रंगभूमि के रङ्ग को उज्ज्वल बनाने के लिए भरतमुनि ने कुतप की योजना का निदर्शन किया है। 'कु' नाम रङ्गो-नाट्यभूमिर्वा; तस्य नाम (त) तपति उज्ज्वलयतीति कुतपः, अर्थात् "रङ्ग तपति उज्ज्वलयति इति कुतपः"। वैणिक, वंशवादक, मार्दङ्गिक, पाणविक, दैर्दुरिक आदि तत, अवनद्ध, घन और सुषिर वाद्य-वादकों के समूह का कुतप-विन्यास नाट्य में प्रयुक्त होता था, जिसे आज हम स्थूलमान से वृन्द-वादन का रूप समझ सकते हैं; तद्वत् स्त्री-पुरुषों का वृन्द-गान भी होता था जिसके साथ वाद्यों की संगत होती थी। उसी प्रकार कण्ठ के भिन्न भिन्न प्रकार के गुण धर्म (Tonal quality) वाले, भिन्न भिन्न व्याप्ति (Range) वाले तथा भिन्न भिन्न प्रकार की भावाभिव्यक्ति की सामर्थ्यवाले स्त्री-पुरुष चाहे व मयूर कंठी हों, कोकिल कंठी हों, चातक कंठी हों, क्रौञ्च कंठी हों, या दादुर कंठी हों—इन सब विभिन्न कण्ठों का वाद्य-समूह की संगत के साथ नाट्य की भावाभिव्यक्ति के लिए यथास्थान, यथारस विनियोग करते समय इन संसर्गजा जातियों का उपयोग होता होगा। आज विश्व की नाट्यभूमि को देखते हुए यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि नाट्य के अन्तर्गत भावानुकूल संगीत प्रयोग में वाद्य-वृन्द तथा भिन्न गुण-धर्म के कण्ठ आदि का समूहगत उपयोग जाति-गान में होता ही होगा।

भरत की कही हुई संसर्गजा जातियों के समवायी या संयोगी रूप अथवा ग्रुपिङ्ग (Grouping) को देखते हुए उपर्युक्त अनुमान पुष्ट होता है।

मान लें कि किसी नाट्यप्रेक्षण में किसी रस-विशेष के प्रकाशनार्थ किसी विशेष संसर्गजा जाति का करना है। ऐसे अवसर पर उस जाति के न्यास स्वर से उत्थित स्वरावलि को स्थायिभाव के निदर्शन के लिए प्रयुक्त किया जाए। उसके लिए विशेष प्रकार के कण्ठों का और वाद्य-समूहों का कुतप प्रयोग किया जाए और उसी प्रसंग में विभिन्न संचारि-भावों के सञ्चार की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न ग्रह-अंशादि स्वरों से उत्थित उन-उन संसर्गजा जातियों की उन-उन स्वरों से कुतप-सहित गान-क्रिया की जाए। स्थायि-भाव के गायक-समूह का गान समाप्त होते ही कुछ समय मौन सेवन किया जाए अथवा उस संसर्गजा जातिविशेष के अन्तर्गत जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है उनमें से जिस भी जाति का ग्रहण क्रमप्राप्त हो, उसकी स्वरावलि का वाद्यों में भूमिका के रूप में गुम्फन किया जाए। उसके पश्चात् भिन्न कण्ठवाले गायक-समूह उसकी स्वरावलि में कुतप सहित गान करें और इस क्रम से भिन्न भिन्न स्वरावलियों में भिन्न भिन्न सञ्चारिभावों का निदर्शन करते हुए बीच-बीच में जहां-जहां रसानुकूल प्रतीत हो, वहां-वहां स्थायी स्वरावलि पुनः प्रयुक्त की जाए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हुआ होगा कि भरत-प्रतिपादित संसर्गजा जातियां नाट्य-प्रसंग में रस-भावाभिव्यक्ति के लिए कैसे व्यवहृत होती होंगी। आज के नाट्य-संगीत, सिने-संगीत, कुतप विन्यास, वृन्द-वादन, नृत्य-नाट्य (बैले), गीति-नाट्य (आपेरा) आदि को देखते हुए और साथ ही भरतोक्त नाट्यशास्त्रान्तर्गत जिन-जिन विषयों का उल्लेख हुआ है, उनका अध्ययन करते हैं तो कम से कम दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये, खेले गये और प्रयुक्त किये गये शास्त्र, नाट्य और संगीत कितने विकसित और उच्च भूमिका पर स्थित थे, इसका अनुमान लगा सकते हैं।

जातिगत रसप्रकरण

भरत नाट्यशास्त्र में उल्लिखित जातियों को हमने विभिन्न दृष्टियों से देखा और उन को किस प्रकार प्रत्यक्ष प्रयोग में लाया जा सकता है, इसका भी सोदाहरण विशद स्पष्टीकरण किया। अब इस प्रकरण में एक ही विषय अवशिष्ट है और वह है जातियों के सम्बन्ध में भरत की रस-दृष्टि। इस सम्बन्ध में भरत के वचन निम्नोद्धृत हैं। षाड्जी,

ाशी तथा निर्णयसागर, बम्बई से प्रकाशित नाट्यशास्त्र के संस्करणों के पाठ हम एक साथ दे रहे हैं, जिससे पाठकों को ाठभेद स्पष्ट गोचर हो सके। भरत के वचनों के उद्धरण के पश्चात् एक तालिका में सभी जातियों का भरतोक्त रस-दर्शन प्रस्तुत कर दिया गया है।

चौखम्भा (बनारस) संस्करण

षड्जोदीच्यवती चैव षड्जमध्या तथैव (च)।
षड्जमध्यमबाहुल्यात् कार्ये शृंगारहास्ययोः ॥१॥

आर्षभी चैव षाड्जी च षड्जर्षभग्रहस्वरात्।
वीराद्भुते च रौद्रे च निषादाङ्ग (दांश) परिग्रहात् ॥२॥

गान्धार्यंशोपपत्त्या च करुणे षड्जकैशिकी।
धैवती धैवतांशा च बीभत्से सभयानके ॥३॥

ध्रुवाविधाने कर्त्तव्या जातिगाने प्रयत्नतः।
रसं कार्यमवस्था च ज्ञात्वा योज्या प्रयोक्तृभिः ॥४॥

षड्जग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेया जातयो बुधैः।
अत.परं प्रवक्ष्यामि मध्यग्रामसमाश्रया. ॥५॥

गान्धारीरक्तगान्धार्योर्गान्धारांशोपपत्तित.।
करुणे तु रसे कार्यो जातिगाने प्रयोक्तृभि ॥६॥

मध्यमा पञ्चमी चैव नन्दयन्ती तथैव च।
मध्यपञ्चमबाहुल्यात् कार्ये शृंगारहास्ययो ॥७॥

मध्यमोदीच्यवा चैव गान्धारोदीच्यवा तथा।
षड्जर्षभांशनिग्रहया कर्त्तव्या वीररौद्रयो ॥८॥

कार्मारवी तथा चान्ध्री निषादांशोपत्तित।
अद्भुते तु रसे कार्ये जातिगाने प्रयोक्तृभि ॥९॥

कैशिकी धैवतांशा स्यात् तथा गान्धारपंचमी।
प्रयोक्तव्या बुधे सम्यक् बीभत्से सभयानके ॥१०॥
एकैव षड्जमध्या ज्ञेया सर्वरससंश्रया जातिः।
तस्या ह्यंशाः सर्वे स्वरास्तु विहिता प्रयोगविधौ ॥११॥
(ना० शा० २९।१-११)

निर्णयसागर (बम्बई) संस्करण

षड्जोदीच्यकरं चैव बहु (षड्ज) मध्यं तथैव च।
मध्यमञ्चमबाहुल्यात्कार्य शृंगारहास्ययोः ॥१॥

षाड्जी त्वथार्षभी चैव स्वरांशपरितग्रहात्।
वीररौद्राद्भुते-ष्वेते प्रयोज्यो (ज्या) गानयोक्तृभिः ॥२॥

निषादं (दा) शे च (च) नैषादी गान्धारो (री) षड्जकैशिकी।
करुणे च रसे कार्या जातिर्गानविशारदैः ॥३॥

धैवती धैवतांशे तु बीभत्से सभयानके।
धैवती करुणे योज्या चोन्मादे (?) षड्जमध्यमा ॥४॥

ध्रुवाविधाने कर्त्तव्या जातिगाने प्रयत्नतः।
षड्जग्रामाश्रिता ह्येताः प्रयोज्या जातयो बुधैः ॥५॥

अत परं प्रवक्ष्यामि मध्यमग्रामसंश्रया.।
गान्धारीरक्तगान्धार्यो गान्धारांशोपपत्तितः ॥६॥

करुणे तु रसे कार्ये निषादेंऽशे तथैव च।
मध्यमा पंचमी चैव नन्दयन्ती तथैव च ॥७॥

गान्धारपंचमी चैव मध्योदीच्यवती तथा।
मध्यपंचमबाहुल्यात्कार्यो (र्याः) शृंगारहास्ययोः ॥८॥

कार्मारवी तथा चान्ध्री गान्धारोदीच्यवा तथा।
वीररौद्रेऽद्भुते कार्या षड्जर्षभांशयोजिता ॥९॥

कैशिकी धैवतांशा स्याद्बीभत्से सभयानके।
एकैव षड्जमध्या ज्ञेया सर्वरससंश्रया जातिः।
तस्यास्त्वंशाः सर्वे स्वरा (:) सुविज्ञेया (स्तु विहिता)
प्रयोगविधौ ॥१०॥ (ना० शा० २९।१-१०)

जाति-नाम	ग्रह-अंश	रस	रस-निर्धारण का आधार	विशेषोल्लेख
१. षाड्जी	सा, ग, ग, ध	वीर, अद्भुत, रौद्र	षड्ज, ग्रह-अंश	
२. आर्षभी	रि, नि, ध	"	ऋषभ "	
३. गान्धारी	सा, ग, म, प, नि	करुण	गान्धार अंश	
४. मध्यमा	सा, रि, म, प, ध	शृङ्गार, हास्य	मध्यम का बाहुल्य	
५. पञ्चमी	रि, प (ध)	"	पञ्चम "	
६. धैवती	रि, ध	बीभत्स, भयानक	धैवत अंश	
७. नैषादी	नि, रि, ग	करुण	निषाद अंश	
८. षड्जोदीच्यवती	सा, म, नि, ध	शृङ्गार, हास्य	षड्ज, मध्यम अथवा मध्यम, पंचम बाहुल्य	
९. षड्जकैशिकी	सा, ग, प	करुण	गान्धार-निषाद अंश	ग्रह अंशो में निषाद नहीं है।
१० षड्जमध्यमा	सात स्वर	शृङ्गार, हास्य, सर्वरस	षड्जमध्यम-बाहुल्यअथवामध्यम-पंचमबाहुल्य,सातस्वरअंश	
११. रक्तगान्धारी	(सा,रि ग म (प)नि	करुण	गान्धार अंश	
१२ नन्दयन्ती	ग, प	शृङ्गार, हास्य	मध्यम-पञ्चम बाहुल्य	ग्रह अंशो में मध्यम नहीं
१३. मध्यमोदीच्यवा	प (सा, म)	"	"	
१४.गान्धारोदीच्यवा	सा, म (प ?)	वीर, रौद्र अद्भुत	षड्ज-ऋषभ अंश	ग्रह अंशो में ऋषभ नहीं
१५. कार्मारवी	(म) प, रि, नि ध	अद्भुत	निषादांश (?)	निषाद का करुण रस से सं स्थापित है, उससे अद्भुत रस कैसे ?
१६. आन्ध्री	प, रि, ग, नि	"	"	"
१७. गान्धारपञ्चमी	प	बीभत्स, भयानक	धैवतांश	ग्रह-अंशो में धैवत नहीं है।
१८. कैशिकी	सा,ग,म,प, ध, नि,	"	"	

भरत ने जातियों के रस निर्धारित करने के लिए जो आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किया है, वह उनके निम्नोक्त वचन में प्रतिपादित है :—

> यो यदा बलवान् यस्मिन् स्वरो जातिसमाश्रयात् ।
> तत्प्रयुक्ते रसे गानं कार्यं गेये प्रयोक्तृभि. ।।

(ना. शा. २८।१२

अर्थात् जब जिस जाति में जो स्वर बलवान् हो, तब प्रयोक्ताओं को उसी स्वर के अनुरूप रस में गायन करना चाहिए ।

भरत ने भिन्न भिन्न स्वरो के बाहुल्य को भिन्न-भिन्न रसो की अभिव्यक्ति का कारण माना है । यथा :—

> मध्यमपञ्चमभूयिष्ठं हास्यशृङ्गारयोर्भवेत् ।
> षड्जर्षभप्रायकृतं वीररौद्राद्भुतेषु च ।।
> गान्धारसप्तमप्रायं करुणे गानमिष्यते ।
> तथा धैवतभूयिष्ठं बीभत्से सभयानके ।।

(ना. शा. २८।१३-१४)

अर्थात् मध्यम पञ्चम का बाहुल्य हास्य शृङ्गार में, षड्ज-ऋषभ का बाहुल्य वीर-रौद्र-अद्भुत में, गान्धार-निषाद का बाहुल्य करुण में और धैवत का बाहुल्य बीभत्स-भयानक में उपयोगी होता है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि गायन में रसाविर्भाव या भावाभिव्यक्ति मुख्यतः निम्नोक्त बातों पर अवलम्बित रहती है—पारस्परिक स्वरान्तर, (frequency) सवादान्तर, अनुवादान्तर, विवादान्तर, सप्तकान्तर, स्वर-संगति, काक्वादि उच्चार-भेद, स्वरों पर अल्प-अधिक ठहराव, विलम्बित मध्य-द्रुत गति, गमकभेद इत्यादि। भरत ने काकुस्वर-व्यञ्जन शीर्षक उन्नीसवें अध्याय में पाठ्यविधि के प्रकरण में इसी विषय की विशद चर्चा की है।* 'पाठ्य' के लिए जो भी विधान हैं, वे सभी 'गीत' को भी लागू होते हैं, क्योंकि पाठ्य और गीत में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। यद्यपि जातियों के प्रसंग में केवल एक या दो स्वरों के बाहुल्य के आधार पर ही रस-निर्धारण किया गया है, तथापि 'पाठ्य-विधि' के अन्तर्गत जिन सब तत्वों पर विचार किया गया है, उन सबकी दृष्टि से भी जातियों का भाव-पक्ष अथवा उनसे होनेवाली रस-निष्पत्ति सूक्ष्म रूप से विचारणीय है। यह विषय अत्यन्त गहन तथा मार्मिक चिन्तन की अपेक्षा रखता है। स्थूल दृष्टि से यह जितना सुगम जान पड़ता है, वास्तव में उससे कहीं अधिक दुर्गम, गूढ़, सूक्ष्म तथा समस्या संकुल है।

उदाहरणार्थ सात शुद्धा जातियों में से प्रथम षाड्जी और आर्षभी के भरत-कथित रसों पर विचार करें। इन दोनों जातियों में वीर, अद्भुत, रौद्र—ये तीन रस कहे गए हैं। षड्ज और ऋषभ इन दो स्वरों को भरत ने इन तीन रसों के वाहक माना है और इन्हीं दोनों के बाहुल्य के आधार पर क्रमशः षाड्जी और आर्षभी में इन तीनों रसों की अभिव्यक्ति बताई है। इन जातियों के स्वर-रूप के साथ इनके रसों का समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से जब विचार करते हैं, तब कुछ प्रश्न उद्भूत होते हैं जो निम्नोक्त हैं :—

(१) षाड्जी में षड्ज ही ग्रह, अंश और न्यास है यानी हर पहलू से षड्ज इस जाति का बलवान् स्वर है। किन्तु क्या षाड्जी के इस षड्ज को ग्रहत्व, अंशत्व और न्यासत्व देने मात्र से अथवा इसके अधिक बार प्रयोग मात्र से वीराद्भुतरौद्र रसों की निष्पत्ति हो सकेगी ?

(२) षाड्जी की स्वरावली इस प्रकार है—सा – रि – ग् – म – प – ध – नि् – सां। इसमें त्रिश्रुति
३ २ ४ ४ ३ २ ४

ऋषभ और पंचश्रुति गान्धार, तद्वत् त्रिश्रुति धैवत और पंचश्रुति निषाद प्रयुक्त होते हैं। षाड्जी के इन स्वरान्तरालों से क्या वीर, अद्भुत, रौद्र, रसों का आविर्भाव हो सकेगा ?

(३) षाड्जी की मूर्च्छना उसके ग्रह से, अंश से अथवा न्यास से—कहीं से भी उत्थित हो—इन तीनों अवस्थाओं में षड्जग्राम के षड्ज ही से आरम्भ करना होगा और वही स्वरावली निष्पन्न होगी जो ऊपर दिखाई गई है। जिस स्वरावली में ऐसे अन्तराल समाविष्ट हैं जिन्हें हम ऊपर देख चुके हैं, उससे वाञ्छित रस-सिद्धि हो सकेगी क्या ?

षाड्जी जैसी ही स्थिति आर्षभी की भी है। आर्षभी की मूर्च्छना ग्रह, अंश और न्यास की दृष्टि से ऋषभ से ही उठाई जाए तो निम्नलिखित भैरवी-सदृश रूप निष्पन्न होता है :—

ऋषभ की मूर्च्छना—रि—ग्—म—प—ध—नि्—सां—रिं
सा—रि्—ग्—म—प—ध्—नि्—सां
—२—४—४—३—२—४—३—

क्या आर्षभी की इस भैरवी-सदृश स्वरावली से उपर्युक्त रस निष्पन्न हो सकेंगे ? यहाँ स्वानुभव का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। इंग्लैण्ड से लेकर रशिया तक जहाँ-जहाँ भैरवी को प्रस्तुत करने का अवसर आया, वहाँ-वहाँ गीत

---

* द्रष्टव्य संगीताञ्जलि तृतीय भाग—भूमिका पृ० ६—६.

की भाषा से अनभिज्ञ, उसके शब्दार्थ से अज्ञात जाता केवल उस विशिष्ट स्वर-संयोग के श्रवण द्वारा करुणरस की अनुभूति पाती थी और तदनुसार चातुर और समालोचक (Critics) पूछते थे—"क्या यह स्वरावली विरह एवं या करुणा की द्योतक है ?"

आर्षभी की इस भैरवी-सदृश स्वरावली में षाड्जादि और मध्यमादि भेद प्रयुक्त करने पर भी बीभत्स-रौद्र रसों की निष्पत्ति संभव है क्या ? ऐसी अवस्था में आर्षभी तथा षाड्जी के स्वरों के साथ उनके रसों का संबंध कैसे स्थापित किया जाए ? जिन स्वरों का बाहुल्य बताया गया है, उन स्वरों को ग्राम के मूल स्वर समझें अथवा मूर्च्छना में प्राप्त स्वर समझें दोनों प्रकार से उपर्युक्त समस्या बनी ही रहती है। षाड्जी का षड्ज तो षड्जग्राम का मूल स्वर है ही। आर्षभी में ऋषभ को यदि षड्जग्रामिक मूल स्वरावली में से ग्रहण किया जाए तो वही ऋषभ यहाँ षड्ज का स्थान पा जाएगा। यदि षड्जग्रामिक मूल ऋषभ की मूर्च्छना में प्राप्त ऋषभ का ग्रहण करें तो यह भी त्रिश्रुति अन्तरालयुक्त कोमल ऋषभ होने से वांछित रस निष्पत्ति में सहायक कैसे होगा ?

जो प्रश्न षाड्जी और आर्षभी के सम्बन्ध में ऊपर उल्लिखित हैं, वैसे ही प्रश्न प्रायः सभी शुद्धा जातियों के साथ जुड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ गान्धारी के ग्रह, अंश, न्यास स्वर गान्धार से उत्पन्न स्वरावली कल्याण-सदृश है। इसमें करुण रस की उत्पत्ति कैसे होगी ?

उपर्युक्त प्रश्नों के अतिरिक्त एक अन्य समस्या भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। शुद्धा जातियों के रस उनके नामस्वरों पर से निर्धारित किए गए हैं। यह सत्य है कि नामस्वर ही शुद्धा जातियों में ग्रह अंश न्यास होता है। किन्तु प्रत्येक शुद्धा जाति में जो एकाधिक ग्रह अंश स्वर कहे हैं उनके विनियोग से जब शुद्धाओं के विकृत भेद बन जाएँगे तब रस की स्थिति किस प्रकार समझी जाएगी ? तब क्या नाम-स्वर के स्थान पर जिस जिस स्वर का जब-जब ग्रह अंश के रूप में ग्रहण हो, उस उस स्वर के अनुसार रस निर्धारण करना होगा ? जहाँ जिस जाति में जो ग्रह-अंश हो क्या केवल उनके बाहुल्य मात्र से रस निष्पत्ति हो सकेगी ?

शुद्धा जातियों के रसों के सम्बन्ध में जो उलझनें हमने ऊपर कहीं, उनसे कहीं अधिक उलझनें संसर्गजा विकृता जातियों में हैं। ऊपर पृ० ६० पर दी गई सारिणी से यह स्पष्ट हुआ होगा कि कुछ संसर्गजा जातियों के ग्रह अंश स्वरों से भिन्न स्वरों का बाहुल्य बताकर उनका रस निर्धारण किया गया है। यथा— गान्धारोदीच्यवा के ग्रह-अंश तो 'सा म' हैं, किन्तु उसका रस बताते समय 'सा रि' का प्रभाव बहुधा और रौद्र अद्भुत रसों के लिए उसे उपयोगी ठहराया गया है। साथ ही संसर्गजा विकृता जातियों के एकाधिक ग्रह अंशों का उनकी रस निष्पत्ति में कैसा और कितना योगदान समझा जाए ? यह प्रश्न भी विचारणीय है।

उदाहरण के लिए कैशिकी जाति में सा, ग, म प, ध, नि'—ये छः स्वर अंश कहे गए हैं, किन्तु उसके रस निर्धारण के प्रसंग में केवल 'धैवतांश' कहकर बीभत्स भयानक रस कह दिए गए हैं। ऐसी अवस्था में शेष पाँच अंश स्वरों का उक्त जाति की रस निष्पत्ति में क्या स्थान होगा ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमने जो प्रामाणिक यत्न किए उनके उदाहरण-स्वरूप षड्जकैशिकी और गान्धारोदीच्यवा—इन दो जातियों का रस दृष्टि से विस्तृत विवेचन नीचे प्रस्तुत है।

१ षड्जकैशिकी —षड्जकैशिकी में षड्जग्राम की षाड्जी और मध्यमग्राम की गान्धारी—इन दो जातियों का संसर्ग कहा गया है और उसका न्यास स्वर गान्धार स्थिर किया गया है। यह संसर्गजा जाति षड्जग्राम की है। अतः षड्जग्राम के ही गान्धार को इसमें न्यास स्वर मानना होगा।

षड्जकैशिकी को करुणरसाश्रया कहा है और सम्भवतः इसीलिए करुणरसग्राही गान्धार को न्यासत्व दिया गया है। इसके ग्रह अंश के रूप में सा, ग, प बताए गए हैं। इस संसर्गजा जाति में षाड्जी और गान्धारी इन दो जातियों

का संसर्ग किए जाने पर भी ग्रह-अंशों के रूप में तीन स्वरों (सा, ग, प) को स्थान दिया गया है। प्रतीत होता है कि इसके पीछे ग्रन्थकारों का विशेष हेतु सन्निहित है। षड्जग्राम का 'पधनि' और मध्यमग्राम का 'सारिग' एक ही है। 'सारिग्' और 'पधनि' ये दोनों ग्रामों के पारस्परिक प्रतिबोध हैं और इस प्रकार दोनों के मिलने से रसाविभक्ति का एक पूर्ण रूप खड़ा होता है। हम यह भी जानते हैं कि षड्जग्राम का निषाद ही मध्यमग्राम का गान्धार है। षड्जग्राम के निषाद को और मध्यमग्राम के गान्धार को जोड़ने के लिए ही, रसभाव की दृष्टि से इन्हें आबद्ध करने के लिए ही पंचम को विशेष रूप से ग्रह-अंशों में स्थान दिया गया है ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। बुधजन से यह अज्ञात नहीं है कि षड्जग्राम का पंचम ही मध्यमग्राम का षड्ज है। और इस प्रकार षड्जग्राम के पंचम को ग्रह अंश बनाने से जो स्वरावली उद्भूत होगी उसमें मध्यमग्राम की दृष्टि से षड्जग्रामिक 'पधनि' ही 'सारिग्' हो जाएंगे। षड्जकैशिकी जाति के करुणरस को देखते हुए यह कहने में कोई अत्यवाय नहीं है कि उभयग्राम के गान्धार को न्यास बनाने के हेतु से ही भरत ने पंचम को ग्रह-अंशों में 'सा, ग' के अलावा स्थान दिया है। पूर्वांग में पंचश्रुति गान्धार और उत्तरांग में पंचश्रुति निषाद करुण रस के वाहक माने गए हैं। षड्जग्राम का पंचश्रुति निषाद ही मध्यमग्राम का पंचश्रुति गान्धार बनता है। इन उभय गान्धारों का प्रयोग तभी संभव हो सकता है जब पंचम को ग्रह अंश में स्थान दिया जाए जिसमें 'सारिग्' के प्रतिबोध के रूप में 'पधनि' (मध्यमग्रामिक 'सारिग्') का प्रयोग हो सके। इस प्रकार उभयग्रामिक पंचश्रुति गान्धार जो कि करुणरसवाहक हैं, प्रयुक्त हो सकते हैं और षड्जकैशिकी की करुणरसप्रधानता की सिद्धि हो सकती है। संभवतः इसी अभिप्राय से भरत ने पंचम को ग्रह-अंशों में स्थान दिया है।

इस जाति के करुण रस की ओर ध्यान रख कर, जब भी हम स्वर-सन्निवेश बनाएं अथवा कूटयोजना करें तब मध्य या द्रुत गति से सदैव दूर रहें। साथ ही काकु-प्रयोग सहित स्वरों में मन्द कम्प भी प्रयुक्त करें।

प्रथम षड्ज को ग्रह अंश मान कर इसकी स्वरावली को देखें।

सारिग्‌~सारिऽसा, सारिमग~सारिऽसा, सारिमग्‌रिग~सारिऽसा, सागमपऽमग्‌रिग्‌~ग्‌रिसारिऽसा, सागऽमधपग्‌~मग्‌~रि ऽ सा। सागमप ऽ गमपध ऽ मपधनि ऽ पधपग्‌ ऽ मग्‌रिग्‌~सारिऽसा। सारिमपधग्‌~सारिमगनिधग~ग्‌रिसारिमगधनि~सनि~धपधग्‌~मग्‌~सारि ऽ सा।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, षड्जकैशिकी के ग्रह अंश में पंचम को उभयग्रामिक स्वरावलियों के सन्धिस्थल के रूप में स्थान दिया गया है, क्योंकि षड्जग्राम का 'पधनि' ही मध्यमग्राम का 'सारिग्' होता है। तदनुसार पंचम को ग्रह अंशत्व देने से षड्जग्राम की स्वरावली में निम्नलिखित रूप से मध्यमग्राम की स्वरावली का दर्शन होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि षड्जग्राम में अन्तर गान्धार का प्रयोग करते से ही मध्यमग्राम का चतुःश्रुति धैवत प्राप्त होता है। किन्तु यह षड्जकैशिकी जाति षड्जग्राम की होने से और इसमें करुण रस का विधान होने से इसमें षड्जग्रामिक मूल गान्धार को त्याग करके अन्तर गान्धार को स्थान नहीं दे सकते, क्योंकि (१) मूल षड्जग्रामिक गान्धार का त्याग षड्जग्राम की जाति में वाञ्छनीय नहीं और (२) मूल षड्जग्रामिक गान्धार ही षड्जग्राम के पंचम को ग्रह अंशत्व देने से कोमल धैवत का स्थान पाएगा जो रसदृष्टि से आवश्यक है। अतः हम यहाँ षड्जग्राम के मूल गान्धार को बनाए रखते हुए बीच २ में अन्तर गान्धार का प्रयोग करेंगे ताकि मध्यमग्रामिक स्वरावली का भी साथ-साथ दर्शन हो सके। यथा :--

पंचम को ग्रह अंशत्व देने से प्राप्त स्वरावली—१—ग ऽ पमग्‌रिग्‌~, म ग म प ऽ ग्‌~, रिग्‌~, पधपनि~, (रि ध)

पंचम को षड्ज का स्थान देने से प्राप्त स्वरावली—२—सा ऽ सानि्‌ रपुर्‌~, नि्ध्‌नि्साऽ ध्‌~, पुध्‌~, सारि (प रि)

म   रि   ग   म   ग
१—ध प ग्॰, सागऽमधपग्॰, साग॰, ग म॰, म प॰, पध॰, धनि॰,

नि   प   ध   नि   सा
२—रिसाप्॰, मधऽनि रिसाध्॰, मध्॰, धनि्॰ नि्सा॰, सारि॰, रिग्॰,

१—ध प ग्॰, ग्रिग्ऽप,

२—रिसाध्॰, धपध्ऽसा,

यदि मध्यमग्राम का दर्शन इस स्वरावली में अभिप्रेत न समझा जाए तो केवल षड्जग्राम की दृष्टि से निम्नलिखित रीति से स्वर विस्तार किया जा सकता है :—

षड्जग्राम के पंचम का ग्रह-अंशत्व—१—ग ऽऽ म प ग्॰, ग म प ध म प ग्॰, रिमपध मधपग्॰, सारि्॰,
पंचम को षड्ज मानने से प्राप्त
स्वरावली —२—साऽऽनि्साध्॰, सानि्सारिनि्साध॰, धनि्सारिनि्रिसाध्॰, मधध॰,

१—रिमपऽ म प धऽ म ध प ग्॰, सारिग्॰, सारिमपधनि्॰, धसांनि्॰,
२ —धनि्साऽ निसारिऽ नि्रिसाध्॰, म पध्॰, मधनि्सारिग्॰, रि म ग्॰,
१—ध प धऽऽग्॰, रिम ऽग्॰, रिऽसारिऽग
२—रिसारिऽऽध्॰, पनि ऽध्॰, प ऽम धऽसा

षड्ज-पञ्चम का ग्रह अंशत्व तो हम देख चुके। अब गान्धार का ग्रह-अंशत्व इस जाति में विशेष विचारणीय है। यदि गान्धार को षड्ज का स्थान देते हैं तो कल्याण सदृश स्वरावली प्राप्त होती है, जो षड्जकैशिकी के करुण रस के अनुकूल नहीं हो सकती। अत यहाँ हम गान्धार को गान्धार ही मान कर उसे आरंभ-स्थान (ग्रह) और केन्द्रबिन्दु (अंश) तथा ठहराव (न्यास) का स्थान बना रहे हैं, उसे षड्ज का स्थान देकर कल्याण-सदृश स्वरावली बनाना यहाँ रस दृष्टि से अभिप्रेत नहीं प्रतीत होता।

गान्धार का ग्रह-अंशत्व

ग्सारिग्॰, ग्मग्॰, ग्रिग्मग्॰, ग्मधपग्॰, ग्रिग्मपऽ, ग्रिग्सारिमग्॰, ग्रिग्सारिग्पऽमग॰, ग्रिसानि्ऽसारिग्॰, ग्रिसानि्धनि्ग्॰, ग्रि्सारिग्पऽमग्॰, ग्रि रिसा सानि् नि्धधपपधधसा सारि रिग्ऽ॰, [illegible]

यह पुन उल्लेखनीय है कि गान्धारी जाति के न्यास स्वर गान्धार से उत्थित स्वरावली को तो कल्याण-सदृश है, किन्तु यह होते हुए भी उस गान्धार को षड्ज का स्थान न देकर गान्धार ही मानकर उसका ग्रह-अंशत्व दिखाने से प्राप्त स्वरावली कल्याण की छाया को निकट मे फटकने तक नहीं देगी। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि षड्ज-पंचम को ग्रह-अंशत्व देने से प्राप्त जो स्वरावलियां कोमल कारुण्य की अभिव्यक्ति कर चुकी हैं, उनकी छाया में, गान्धार के ग्रह अंश-न्यासत्व से उपजाया हुआ स्वर-विस्तार कोमल-करुण ही बना रहेगा।

२. गान्धारोदीच्यवा—गान्धारोदीच्यवा जाति में निम्नोक्त चार जातियों का संयोग कहा गया है—

गान्धारी, षाड्जी, धैवती, मध्यमा। चार जातियों का समवाय होने पर भी इसके ग्रह अंश के रूप में केवल दो ही स्वर कहे हैं—'सा' तथा 'म'। (गान्धारोदीच्यवांशौ विज्ञेयौ षड्जमध्यमौ) इस प्रकार गान्धारी और धैवती के न्यास स्वर गान्धार धैवत को ग्रह अंश मे स्थान नहीं प्राप्त है। इसका न्यास स्वर मध्यम है, जिसे मध्यमग्राम का समझना चाहिए, क्योंकि यह जाति मध्यमग्राम की है।

दूसरी ओर जातियों के रसप्रकरण में इस जाति के रस के सम्बन्ध में भरत का निम्नोक्त कथन विचारणीय है —

मध्यमोदीच्यवा चैव गान्धारोदीच्यवा तथा।
षड्जर्षभांशनिलत्या कर्त्तव्या वीररौद्रयोः ॥ (ना. शा. काशी संस्करण २९।८)

कार्मारवी तथा चान्ध्री गान्धारोदीच्यवा तथा।
वीररौद्रेऽद्भुते कार्या षड्जर्षभांशयोजिता ॥ (ना.शा. निर्णयसागर संस्करण २९।९)

स्पष्ट है कि एक ओर गान्धारोदीच्यवा जाति के ग्रह अंश में 'सा' 'म' रखे गए हैं और दूसरी ओर उसी जाति का रस बताते हुए 'सा रि' स्वरों का ग्रह अंशत्व कहा है। इन दोनों उल्लेखों में सम्पूर्ण विरोधाभास है जिसका सामञ्जस्य बिठाना कठिन है। वीर, रौद्र और अद्भुत रसों के लिए "सरी वीरेऽद्भुते रौद्रे" यह कह कर इन दो स्वरों के साथ उन तीन रसों का सम्बन्ध भरत ने जोड़ा है। इस अवस्था में रस प्रकरण में बताए हुए 'सा रि' स्वरों का ग्रह-अंशत्व माना जाए अथवा जाति के लक्षणों में कहे गए 'सा-म' को ही ग्रह अंशत्व दिया जाए? इस प्रसंग में तीन प्रश्न उद्भूत होते हैं—(१) भरत का स्वरों के रसों के सम्बन्ध में जो विधान है वह षड्जग्रामिक सप्त स्वरों की दृष्टि से समझा जाए या मध्यमग्रामिक सप्त स्वरों की दृष्टि से समझें? (२) या ऐसा समझें कि षड्जग्रामाश्रित जातियों में षड्जग्राम के स्वर और मध्यमग्रामाश्रित जातियों में मध्यमग्राम के स्वरों से तात्पर्य है? (३) या जिन जिन न्यास स्वरों से जाति की मूर्च्छना बनती है, उन उन स्वरों को षड्ज मान कर उन्हीं के अनुपात से बनने वाले स्वरों से रस का सम्बन्ध है? इन प्रश्नों की स्पष्टता ग्रन्थों में कहीं उपलब्ध नहीं होती। इसलिये हमने इन संसर्गजा जातियों के स्वरों का, उनके संसर्गों का, उनके रसों का, उनके ग्रह अंश-न्यासादि नियमन का विवेचन करते समय भिन्न भिन्न विकल्पों के रूप में सारी सम्भावनाएँ यथास्थान प्रस्तुत कर देना उचित समझा है। इन संसर्गजा जातियों के कैसे, किस प्रकार से, कितने रूप से संसर्ग किये जा सकते हैं उसके लिए हम जो विचार उद्भूत हुए, जो सम्भावनाएँ ध्यान में आईं उन्हें विकल्प के रूप में कह आए हैं।

गान्धारोदीच्यवा जाति मध्यमग्राम की कही है, किन्तु उसमें दो षड्जग्राम की (षाड्जी, धैवती) और दो मध्यमग्राम की (गान्धारी, मध्यमा) जातियों का समवाय है। दोनों ग्रामों की जातियों का तुल्य प्रमाण देखते हुए यह प्रश्न उठ सकता है कि गान्धारोदीच्यवा का न्यास स्वर मध्यम, षड्जग्राम का समझा जाए या मध्यमग्राम का? इस प्रश्न का विवेचन इस प्रकार है।

गान्धारोदीच्यवा इस नाम से गान्धारी का प्राधान्य सूचित होता है। साथ ही इसके वीर-रौद्र-अद्भुत रसों को देखते हुए गान्धारी की मूर्च्छना में उत्पन्न कल्याण-सदृश स्वरगतों से इस संसर्गजा जाति का सम्बन्ध जुड़ता-सा दिखाई देता है। किन्तु, गान्धार तो इसमें न ग्रह अंश है और न न्यास ही है। हम जानते हैं कि गान्धार को स्थूल मान से करुण रस का वाहक मान लिया गया है, कहीं इसलिए तो उसका इस जाति के ग्रह अंशों में से बहिष्कार नहीं किया गया होगा? साथ ही वीर अद्भुतादिक रसों का आविर्भाव भरत ने जिस प्रकार 'सा' और 'रि' से माना है उसे देखते हुए हम ऐसा अनुमान कर रहे हैं कि यहाँ पर गान्धारी के गान्धार को ही षड्ज का स्थान दिया जाए और उसका ऋषभ जो चतुःश्रुति है, और जो मध्यमग्राम का 'म' है उसे प्राधान्य दिया जाए। उन 'सा रि' के प्राधान्य से वाञ्छित रस सिद्धि प्राप्त हो सकेगी। (मध्यमग्राम का 'म' इस जाति का न्यास स्वर है और वही मध्यम उपर्युक्त गान्धार की मूर्च्छना में ऋषभ का स्थान पाता है)। भरत ने जातियों के रस प्रकरण में गान्धारोदीच्यवा में 'सा रि' का बाहुल्य कहा ही है। गान्धारी जाति की मूर्च्छना में ऋषभ का जो स्थान आता है, उसे प्राधान्य देने से मध्यमग्राम का मध्यम भी मुख्य के रूप में न्यास का स्थान पा जाता है और साथ ही रस दृष्टि से ऋषभ का भी बाहुल्य बन जाता है। इसलिए मध्यमग्रामिक गान्धार से उत्थित कल्याण सदृश स्वरावली को इस जाति की मूल स्वरावली या स्वाभिमान का प्रतिनिधि

मान कर उसी के संचारिभावों में अन्य संसर्गप्राप्त जातियों का समवाय किया जाए तो संभवतः भरत-कथित रसविधान सिद्ध हो सकेगा। यथा :-

मध्यमग्रामिक मूल स्वरावली १—गृमपपनि् सांरिंग, गृंरिंसांनि् धपमग् ,

म ग्राम के गान्धार को षड्ज २—सारिगमग़ धनिसां, सांनिधग मगरिसा ,

मानने से प्राप्त स्वरावली

१—रि म ऽ ग़् , ग़् रि म ऽ ग़् , रि सा रि म ऽ ग़् रि म प ग ऽ, रि म प ध नि् ध प म,
२—नि़ रि ऽ सा, सा नि़ रि ऽ सा, नि़ ध़ नि़ रि ऽ सा नि़ रि ग रि ऽ, नि़ रि ग म़ प म़ ग रि,
१—रि म रि प म ध प नि् नि् ध प म, प ध सां ऽ नि् ध प म रि म ऽ ग़्
२—नि़ रि नि़ ग रि म़ ग प प म़ ग रि, ग म़ ध। प म़ ग रि नि़ रि ऽ सा
१—रि म प ध सां रिं ऽ, ध सां गं ऽ गृं रिं सां नि् ऽ ध प म ग़् , रि म प म रि म ऽ ग़्—
२ – नि़ रि ग म़ ध नि ऽ, म़ ध सां ऽ सां नि ध प ऽ म़ ग रि सा, नि़ रि ग रि नि़ रिऽसा—

गान्धारोदीच्यवा में ऋषभ-रहित षाडव भेद कहा गया है। एक ओर 'सा-रि' का प्राधान्य बता कर इस जाति का रस निर्धारण और दूसरी ओर रस प्रकरणोक्त अंश स्वर ऋषभ का षाडव-भेद निर्माण-विधि में लोप-विधान – इन दो परस्पर विरोधी बातों की संगति कैसे बैठाई जाए ?

इसके औडव भेद का अन्यस्य विधान नहीं है। किन्तु इसकी रस सिद्धि के लिए समवत औडव रूप अधिक उपादेय होंगे, क्योंकि खड़े खड़े स्वरों का आघातसहित उच्चार और औडव स्वरावली के दूरस्थ अन्तराल – ये दोनों बातें वीर-रौद्र रसों की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी हैं। इसी रस दृष्टि के अनुसार, षाडवकारी ऋषभ के सवादी पचम को भी लोप्य बना कर 'रि प' रहित कुछेक औडव रूपों का निर्माण कर के यहाँ दिखाया जा रहा है।

ऊपर दी गई स्वरावली में से यदि मध्यमग्रामिक मूल 'रि-प' वर्ज्य करें तो 'सा- रि—म़—प ध—सां'— ऐसा औडव रूप बनेगा। और यदि गान्धार को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावली में ऋषभ-पचम का लोप करें तो 'सा ग—म़—ध—नि सां' यह हिण्डोल की स्वरावली प्राप्त होगी, जो, निश्चित रूप से वीर रस की वाहक है।

षाड्जी का संसर्ग —षाड्जी में भी मध्यम को न्यासत्व देना होगा। प्रश्न हो सकता है कि यह मध्यम क्या षड्जग्राम का होगा या मध्यमग्राम का ? मध्यमग्राम का मध्यम ही षड्जग्राम का षड्ज है। इसलिए षाड्जी के संसर्ग के समय षड्जग्राम के षड्ज को न्यास या ठहराव का स्थान बना सकते हैं। षाड्जी में नियमानुसार षड्ज को ही ग्रह, अंश, न्यास बनाते हुए षड्जग्रामिक मूल स्वरावली का उपयोग करना होगा। यह स्वरावली इस प्रकार है—

सा—रि—ग़्—म— प—ध—नि़—सां
—३ –२— ४—४—३—२—४—

इससे वीर-रौद्र रसों की निष्पत्ति किसी प्रकार संभव नहीं जान पड़ती, क्योंकि इसके स्वरान्तराल करुण कोमल भावों के लिए अधिक उपयुक्त हैं, कठोर या परुष भावों के लिए नहीं। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि वीर-रौद्राद्भुत रसों की निष्पत्ति के लिए निर्मित गान्धारोदीच्यवा में षाड्जी के संसर्ग का विधान देने के पीछे भरत की क्या रस दृष्टि रही होगी ? सूक्ष्म और गहन विचार करने पर भरत के इस विधान की ओर ध्यान जाता है जिसमें उन्होंने आठ रसों को चार युग्मों (जोड़ों) में सन्निविष्ट किया है। यथा :—

शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्रात्तु करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥

शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति संज्ञितः।
रौद्रस्यापि च यत्कर्म स ज्ञेयः करुणो रसः॥

वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्भुत परिकीर्तितः।
बीभत्सदर्शनं यच्च भवेत् स तु भयानकः॥

(ना. शा. ६।३९-४१)

अर्थात् शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत तथा बीभत्स से भयानक रस की 'उत्पत्ति' होती है। यथा--शृङ्गार का अनुकरण हास्य का कारण होता है, रौद्र का कर्म (प्रभाव) करुण होता है, वीर का कर्म (प्रभाव) अद्भुत होता है और जो 'बीभत्स—दर्शन' (देखने में जुगुप्साजनक) हो वह भयानक होता है।

इस भरत-प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार रौद्र और करुण का सहभाव समझना चाहिए अर्थात् 'रौद्र' का प्रभाव करुण के रूप में अभिव्यक्त होता है। नाट्य में जहाँ एक ओर एक या अधिक पात्रों द्वारा रौद्र रस का अभिनय होता हो, वहाँ दूसरी ओर उस रौद्र का प्रभाव अभिव्यक्त करने के लिए एक या अधिक पात्रों द्वारा करुण रस का अभिनय भी रस-परिपोष के लिए आवश्यक होता है। सम्भवत: इसी दृष्टि से गान्धारोदीच्यवा में वीर-रौद्र अद्भुत रसों की अभिव्यञ्जक स्वरावलियों के साथ साथ करुण रस की अभिव्यक्ति के लिए षाड्जी की स्वरावली का भी संसर्ग कहा गया हो। षाड्जी का स्वर विस्तार कुछ निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:—

सा, सारिसा, सारिग्ऽसारिसा, सारिमग्ऽसारिसा सारिग्ऽसारिमग्ऽसारिसा, सारिपमग्रिग्ऽसारिसा, साग्रिग्ऽसारिपमग्रिग्ऽसारिसा, ग्सारिग्ऽरिमपधऽग्ऽरिमग्ऽसारिसा, नि्धृनि्ऽग्रिग्ऽसारिसा।

मध्यमा का संसर्ग— हम जानते हैं कि षड्जग्राम का षड्ज ही मध्यमग्राम का मध्यम बन जाता है। उस मध्यमग्राम के मध्यम को षड्ज मान कर चलेंगे तो वही 'म-ध' ही 'सा-ग' हो जाएगा। और अगर भरत के कथनानुसार मध्यमा में स्वर साधारण (अन्तर-काकली) का प्रयोग किया जाए तो उसका स्वर-रूप इस प्रकार बनेगा:— 'सारिगमम्पधनि्सां'। इसलिए कहीं 'सागमध, निसांनिधमगऽसा' कहीं 'सागमधऽ, निसांनिधऽ मग'सा,' अथवा— सागऽमधऽनिसांनि धनि्धऽमग, नि्सानि्धनि्धऽ गमगऽसा—यों प्रयोग किये जा सकते हैं।

यह मध्यमा का 'रि-प' रहित औडव रूप हुआ। केवल ऋषभ का त्याग करने से इसका षाडव रूप यों बन जाएगा. —

सागम्धऽप, सागऽमधऽ धनि्धऽप, गमगऽसा, सागमप गमधप, मृपनिसांनि धनि्धऽप, गमगऽसा।

ऊपर जो औडव षाडव रूप बनाए गए हैं, उनमें मध्यमा की स्वरावली के 'रि-प' तथा 'रि' का क्रमश लोप किया गया है। यदि वैसा न करके मध्यमग्रामिक मूल 'रि-प' अथवा 'रि' को वर्ज्य किया जाए तो निम्नलिखित औडव-षाडव रूप बनेंगे —

मूल मध्यमग्रामिक 'रि-प' वर्ज्य करने से प्राप्त औडव रूप—यथा सागऽमग, सागऽधमगऽसा, सानि्सागऽ पम्गऽगमप, सांऽनिऽप, पनिसांगंऽसांऽनिऽपऽमग मगऽसा। इस प्रकार औडव मालश्री का रूप दिखाई देगा।

मूल मध्यमग्रामिक 'रि' वर्ज्य करने से प्राप्त षाडव रूप—सामऽगपऽमरि'सा, सामऽगप, मृपनिसांनिपऽमऽ मगप, मरिऽसा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वे श्रोता-पाठक रस निश्चय ही इस जाति के वीर, रौद्र, अद्भुत रसों के सचारिभावों में प्रविष्ट हो जाएंगे। इस प्रकार विभिन्न योजनाओं द्वारा रस भावानुकूल स्वर विन्यास द्वारा पर सचारिन का संचरण आविर्भूत किया जा सकता है।

धैवती का ससर्ग—गान्धारोदीच्यवा में गान्धारी और मध्यमा के अतिरिक्त धैवती का भी ससर्ग रहा है। धैवती के स्वरसमूह में भैरवी और तोडी का मिला-जुला रूप आता है यह हम जानते हैं। विशेष रूप से क्योंकि, प्रत्येक स्वर का आघात के साथ उच्चार, इत्यादि वाक्यादि भेद प्रयुक्त न किये जाएँ तो सामान्यत उसमें करुणोत्पादन ही माननी पडेगी। इस दृष्टि से धैवती का ससर्ग वीर, अद्भुत और रौद्र-रस-वाहिनी गान्धारोदीच्यवा में जो कहा गया है, उसका Contrast (असमानता, विरोध) के रूप में उपयोग समझा जा सकता है। रस-परिपोष में भावों और रसों की मैत्री या साम्य सम्बन्ध के साथ-साथ उनके Contrast (असमानता, विरोध) का भी विशेष स्थान है। रस निष्पत्ति में अकेला स्थायिभाव उपयोगी नहीं होता, उसके परिपोष के लिए जिस प्रकार सचारि भावों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अन्य स्थायिभाव भी सचारी बन कर अलकार के लिए उसका परिपोष कर सकते हैं। तदनुसार रौद्र के परिपाक के लिए करुण का उपयोग उचित ही है। संभवत इसीलिए भरत ने गान्धारोदीच्यवा में धैवती को स्थान दिया होगा। धैवती का स्वर विस्तार हम शुद्धा जातियों के प्रकरण में दिखा ही चुके हैं।

जाति साधारण

भरत के जाति निरूपण के विस्तृत विवरण के पश्चात् उनके परवर्ती प्रसग का मन प्रस्तुत करने के पूर्व एक लघु विषय का उल्लेख आवश्यक है और वह है जाति साधारण। भरत ने कहा है —

द्वे साधारणे—स्वरसाधारण जातिसाधारणञ्चेति। जातिसाधारणमेकग्रामाशाना जातीना जात्योर्वा अन्यतर ग्राम प्रत्यङ्गदर्शन स्वराणामवगमात्। (ना० शा० २८)

अर्थात् 'साधारण' दो प्रकार का होता है—एक स्वरसाधारण, दूसरा जाति-साधारण। एक ग्राम (षड्जग्राम अथवा मध्यमग्राम) के अश वाली दो अथवा अधिक जातियों का दूसरे ग्राम (मध्यमग्राम अथवा षड्जग्राम) में स्वरों के अवगम से जो प्रत्यङ्गदर्शन होता है, वह 'जातिसाधारण' है।

भरतोक्त जातिसाधारण उभयग्राम के परस्पर सम्बन्ध पर आधृत है। एक ग्राम की जाति या जातियों का अन्य ग्राम की जाति या जातियों में प्रत्यङ्गदर्शन ही जातिसाधारण है। अत इसे स्पष्टतया समझने के लिए भरतोक्त उभयग्राम का परस्पर सम्बन्ध पुन समझ लेना यहाँ आवश्यक है।

षडजग्राम और मध्यमग्राम के स्वरों में तत्वत तादात्म्य-सम्बन्ध है, जो कुछ व्यवहारगत अन्तर है वह केवल सज्ञाभेद में निहित है। इस सिद्धान्त को हम 'सगीताञ्जलि' पञ्चम भाग में पृ० ५६-५८ पर भरत के शब्दों द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं। यहाँ भरत के तत्सम्बन्धी वचन को उद्धृत करना मात्र पर्याप्त होगा। यथा —

द्विविधैवमूर्च्छनासिद्धि, द्विश्रुत्युत्कर्षाद्धैवतीकृते गान्धारे मूर्च्छनाग्रामयोरन्यतरत्व षडजग्रामे। तद्वशान्मध्यमादयो निषादादिमत्व (निषादादित्व) प्रतिपद्यन्ते। मध्यमग्रामेऽपि धैवतमार्दवात् (धैवतमार्दवात्) निषादोत्कर्षात् (च) द्वैविध्य भवति। तुल्यश्रुत्यन्तरत्वाच्च सज्ञान्यत्वम्। चतुःश्रुतिकमन्तर पञ्चमधैवतयो। तद्वद्गान्धारोत्कर्षाच्चतुःश्रुतिमन्तरं भवति। शेषाश्चापि मध्यम पञ्चम-धैवत निषादषड्जर्षभा मध्यमादित्व (षड्जादित्वं) प्राप्नुवन्ति।* (ना शा. २८)

---

*इस उद्धरण का पाठ नाट्यशास्त्र के काशी और बम्बई से प्रकाशित सस्करणों को मिला कर बनाया गया है तथा विषय के यथार्थ प्रतिपादन की दृष्टि से इसमें हमने कोष्ठक में अपनी ओर से सशोधन प्रस्तुत किये हैं।

भरत का यह वचन उस प्रकरण में है जहाँ कि मूर्च्छनाओं के पूर्णा, षाडवा, औडुवा और साधारणीकृता —ये चार भेद कहे गए हैं। इन चार भेदों के उल्लेख के ठीक बाद ही ऊपर उद्धृत वचन मिलता है। इस वचन में उभयग्राम का परस्पर तादात्म्य-भाव निरूपित किया गया है। एक ग्राम की मूर्च्छना-विशेष में ही दूसरे ग्राम की उपलब्धि हो जाती है, यह इसका तात्पर्य है। षड्जग्राम के गान्धार का द्विश्रुति उत्कर्ष करके उसी गान्धार को धैवत बना देने से मध्यमग्राम की निष्पत्ति हो जाती है और मध्यमग्राम में धैवत का दो श्रुति अपकर्ष करके उसी को गान्धार बना देने से पुन. षड्जग्राम की उपलब्धि हो जाएगी। यथा:—

षड्जग्रामिक स्वरावली —सा—रि—ग्—अं० गा०—म—प—ध—नि—सां

संज्ञाभेद से मध्यमग्रामिक स्वरावली—म—प—मा० मे०—ध—नि—सा—रि—ग्—म
—३—२ —— २—२—४—३—२—४—

भरत के इस उद्धरण का पाठ शुद्ध करके हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं उसी की पुष्टि दत्तिल और कुम्भा राणा के निम्नोद्धृत वचनों से भी होती है:—

गान्धारं धैवतीकुर्याद् (द्वि) श्रुत्युत्कर्षणाद् यदि।
तद्वशान्मध्यमादींश्च निषादादीन् यथास्थितान्॥

ततोऽभूद् यावतिथ्येषा षड्जग्रामस्य मूर्च्छना।
श्रुतिद्वयापकर्षेण गान्धारीकृत्य धैवतम्।
पूर्ववन्मध्यमाद्यांश्च भावयेत् षड्जमूर्च्छनाः॥

(दत्तिलम् २६-२८)

षड्जग्रामभवा एव मूर्च्छना मध्यमाश्रिताः।
चित्रं मध्यमगा एव ताः स्युः षड्जगता यथाः॥

षड्जे श्रुतिद्वयोत्कर्षाद् गान्धारो धैवतीभवेत्।
द्विश्रुत्यपचयाद्ग्रामे मध्यमे धो गतां व्रजेत्॥

तद्वशान्मादिकाः षड्जे भजन्ते न्यादिता स्वराः।
न्याद्या. स्युर्मादिका मध्ये श्रुतिसाम्यात्स्वतः स्वराः॥

एवं यावतिथा षड्जग्रामे या मूर्च्छना भवेत्।
तावतिथ्येव सा मध्ये चित्रमत्राभवत्स्वयम्॥
वणिकानाममयं पन्थाः सुगमः श्रुतिशालिनाम्।
(संगीतराज, गीतरत्नकोश, स्वरोल्लास, स्थानादि-परीक्षण ३७०-७५)

ऊपर के उद्धरणों में प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार उभयग्राम की मौलिक स्वरावलियों में तात्विक ऐक्य है, किन्तु संज्ञाभेद से दोनों का व्यवहारगत पार्थक्य है। अत. उभयग्राम की मौलिक स्वरावलियों में एक दूसरे का प्रत्यङ्गदर्शन निहित है। उभयग्राम के तात्विक ऐक्य पर आश्रित इस 'प्रत्यङ्गदर्शन' के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार से भी उभयग्राम का प्रत्यङ्गदर्शन सिद्ध किया जा सकता है। संगीताञ्जलि पञ्चम भाग में मूर्च्छनाप्रकरण में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि उभयग्रामिक सात स्वरों से जो मूर्च्छनाएं निष्पन्न होती हैं, उनमें सूक्ष्म श्रुत्यन्तर-भेद रहने पर भी सादृश्य पाया जाता है। जैसे षड्जग्रामिक मध्यम और मध्यमग्रामिक मध्यम में स्थानगत ऐक्य नहीं है, किन्तु दोनों की मूर्च्छनाओं से खमाज-सदृश स्वरावली निष्पन्न होती है; इसी प्रकार अन्य सभी स्वरों की मूर्च्छनाओं में सादृश्य-संबंध है। यह भी उभयग्राम का एक प्रकार का

प्रत्यक्षदर्शन है। प्रथम प्रत्यक्षदर्शन में संज्ञाभेद है, किन्तु स्थानैक्य है, द्वितीय में संज्ञा ऐक्य है, किन्तु स्थान-भेद होने पर भी मूर्च्छना-सादृश्य है। जिस प्रकार का द्विविध प्रत्यक्षदर्शन उभयग्राम में हमने अभी ऊपर किया उसी प्रकार का प्रत्यक्षदर्शन उभयग्राम से उत्पन्न जातियों में जाति साधारण द्वारा लक्ष्य को अभिप्रेत है। अतः जातिसाधारण को भी दो प्रकार से समझा जा सकता है :—(१) स्थानगत ऐक्य तथा संज्ञा-भेद से एवं (२) मूर्च्छनागत सादृश्य से। यह दोनों प्रकार का जातिसाधारण क्रमशः नीचे दी तालिकाओं में प्रस्तुत है।

१. उभयग्रामिक स्वरगत ऐक्य तथा संज्ञा-भेद से सिद्ध जाति-साधारण

षड्जग्राम की षाड्जी तथा मध्यमग्राम की मध्यमा		षड्जग्राम की आर्षभी तथा मध्यमग्राम की पञ्चमी		षड्जग्राम की नैषादी तथा मध्यमग्राम की गान्धारी	
षाड्जी	मध्यमा	आर्षभी	पञ्चमी	नैषादी	गान्धारी
सा	सा	सा	सा	सा	सा
—३	—३	—२	—४	—४	—४
रि	रि	रि	रि	रि	रि
—२	—४	—४	—३	—३	—३
ग्	ग	ग्	ग्	म	म
—४	—२	—४	—४	—२	—४
म	म	म	म	म	म
—४	—४	—३	—३	—४	—२
प	प	प	प	प	प
—३	—३	—२	—२	—४	—३
ध	ध	ध्	ध्	ध	ध
—२	—२	—४	—४	—३	—४
नि	नि	नि	नि	नि	नि
—४	—४	—३	—३	—२	—२
सां	सां	सां	सां	सां	सां

षड्जग्राम का षड्ज तथा मध्यमग्राम का मध्यम, ष०ग्राम का ऋषभ तथा म०ग्राम का पञ्चम, तद्वत् ष०ग्राम का निषाद तथा मध्यमग्राम का गान्धार वीणा पर एक ही स्थान पर स्थित हैं; इसीलिए षाड्जी—मध्यमा, आर्षभी-पञ्चमी तथा नैषादी-गान्धारी – इन उभयग्रामिक जाति-युग्मों का प्रत्यक्षदर्शन ऊपर प्रस्तुत किया गया है। इन युग्मों में श्रुत्यन्तर-भेद के अतिरिक्त एक-एक स्वर की भिन्नता के प्रसंग में षड्जग्रामिक 'गान्धारोत्कर्ष' और मध्यमग्रामिक 'धैवतापकर्ष' को स्मरण रखना आवश्यक है।

२. उभयग्रामिक मूर्च्छनासादृश्य से निष्पन्न जाति साधारण

उभयग्रामिक षड्ज का मूर्च्छना-सादृश्य (काफी-सदृश)		उभयग्रामिक मध्यम का मूर्च्छना सादृश्य (खमाज सदृश)		उभयग्रामिक पञ्चम का मूर्च्छना-सादृश्य (आसावरी सदृश)		उभयग्रामिक धैवत का मूर्च्छना-सादृश्य (तोडी-भैरवी सदृश)	
षड्जांश षाड्जी ष. ग्राम	षड्जांश मध्यमा म. ग्राम	मध्यमांश षाड्जी ष. ग्राम	मध्यमांश मध्यमा म. ग्राम	पञ्चमांश षाड्जी ष. ग्राम	पञ्चमांश मध्यमा म. ग्राम	धैवतांश षाड्जी ष. ग्राम	धैवतांश मध्यमा म. ग्राम
सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा
—३	—३	—४	—३	—३	—४	—२	—२
रि	रि	रि	रि	रि	रि	रि	रि्
—२	—२	—३	—४	—२	—२	—४	—४
ग्	ग्	ग	ग	ग्	ग्	ग्	ग्
—४	—४	—२	—२	४	—४	—३	—३
म	म	म	म	म	म	म	म
—४	—३	—४	—४	—३	—३	—२	—२
प	प	प	प	प	प	म्	म्
—३	—४	—३	—३	—२	—२	—४	—४
ध	ध	ध	ध	ध्	ध्	ध्	ध्
—२	—२	—२	—२	—४	—४	—४	—३
नि्	नि्	नि्	नि्	नि्	नि्	नि्	नि्
—४	—४	—४	—४	—४	—३	—३	—४
सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां

ऊपर प्रथम सारिणी में उभयग्रामिक संज्ञाभेद के आधार पर जातियों का प्रत्यक्षदर्शन प्रस्तुत किया गया था। द्वितीय सारिणी में उभयग्रामिक मूर्च्छना-सादृश्य का आधार लिया गया है। षड्जग्रामिक षड्ज और मध्यमग्रामिक षड्ज का वीणा पर भिन्न स्थान होने पर भी दोनों की मूर्च्छनाओं में पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है। इसी सादृश्य के आधार पर जातियों का प्रत्यक्षदर्शन करने के लिए हमने यहाँ अंश स्वरों को षड्ज का स्थान देकर स्वरावलियाँ बनाई हैं।*

*ध्यान रहे कि अंशस्वर को षड्ज का स्थान देने की मनमानी क्रिया यहाँ जातियों के प्रत्यक्षदर्शन के प्रयोजन से ही की गई है। शुद्ध जातियों के स्वर रूप के नियामकत्व को न्यास में ही निहित मानने के सिद्धान्त में इससे कोई बाधा नहीं आती।

मतंग

भरतोक्त व्यवस्थानुसार हमने शुद्धा, विकृता तथा संसर्गजा विकृता जातियों की रचना विभिन्न पहलुओं से देखी। अब हम इस सम्बन्ध में मतंग की विचारधारा का भी संक्षिप्त दर्शन कर लें, क्योंकि भरत के परवर्ती ग्रन्थकारों में इनका प्रमुख स्थान है।

ध्यान रहे कि भरत ने जातियों के स्वर-रूप दिखाने के लिए किसी मूर्च्छना का निर्देश नहीं ही किया है। किन्तु मतंग ने जातियों का विवरण देते समय उनकी मूर्च्छनाएं बताई हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भरतोक्त सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं के अतिरिक्त मतंग ने द्वादश-स्वर मूर्च्छना भी कही है। अतः जातियों के सम्बन्ध में मतंग की इस मूर्च्छना विधान पर विचार करते समय उनकी द्वादश-स्वर-मूर्च्छना पद्धति को आलोचनात्मक दृष्टि से प्रथम देख लेना आवश्यक है।

मतंग ने द्वादश स्वर-मूर्च्छना का प्रयोजन निम्नांकित प्रकार बताया है। यथा :—

अत्र मूर्च्छनानिर्देश स्थानत्रयप्राप्त्यर्थमिति वचनात् मन्द्रतारसिद्ध्यर्थमिति वचनाच्च द्वादशस्वरसम्पन्ना मूर्च्छना द्रष्टव्या प्रयोगकाले। तथा चाह कोहल:—

> योजनीयो बुधैर्नित्यं क्रमो लक्ष्यानुसारतः।
> संस्थाप्य मूर्च्छनां जातिरागभाषादिसिद्धये॥

अर्थात् जाति, राग, भाषादि की सिद्धि के लिए मूर्च्छना का लक्ष्यानुसार क्रम स्थापित करना चाहिए।

स्मरण रहे कि कोहल के इस उद्धरण में द्वादशस्वर मूर्च्छना का कहीं उल्लेख नहीं है।

इसी प्रसंग में मतंग ने नन्दिकेश्वर का उद्धरण भी दिया है : नन्दिकेश्वरेणाप्युक्तं—

> द्वादशस्वरसम्पन्ना ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः।
> जातिभाषादिसिद्ध्यर्थं तारमन्द्रादिसिद्धये॥

अर्थात् जाति-भाषादि-सिद्धि के लिए तथा तारमन्द्रादि सिद्धि के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छना समझनी चाहिए।

षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं के द्वादश-स्वर-रूप मतंग ने जिस प्रकार दिए हैं, वे निम्नोक्त तालिकाओं से स्पष्ट हो जाएंगे और इन द्वादश स्वर मूर्च्छना की भरतोक्त सप्तस्वर मूर्च्छना से भिन्नता भी स्पष्ट हो जाएगी।

१. षड्जग्राम

सांकेतिक मूर्च्छना-नाम	द्वादश-स्वर मूर्च्छना	परम्परागत मूर्च्छना नाम	ग्राम का मूल आरंभस्वर (सप्तस्वर-मूर्च्छना के अनुसार)
धैवतादि	धनिसारिगमपधनिसारिग	उत्तरमन्द्रा	षड्ज
निषादादि	निसारिगमपधनिसारिगम	रजनी	निषाद
षड्जादि	सारिगमपधनिसारिगमप	उत्तरायता	धैवत
ऋषभादि	रिगमपधनिसारिगमपध	शुद्धषाड्जी	पञ्चम
गान्धारादि	गमपधनिसारिगमपधनि	मत्सरीकृता	मध्यम
मध्यमादि	मपधनिसारिगमपधनिसा	अश्वक्रान्ता	गान्धार
पञ्चमादि	पधनिसारिगमपधनि	अभिरुद्गता	ऋषभ

२. मध्यमग्राम

सांकेतिक मूर्च्छना-नाम	द्वादश स्वर मूर्च्छना	परंपरागत मूर्च्छना-नाम	ग्राम का मूल आरंभस्वर (सप्तस्वर मूर्च्छना के अनुसार)
निषादादि	निसारिगमपधनिसारिगम	सौवीरी	मध्यम
षड्जादि	सारिगमपधनिसारिगमप	हरिणाश्वा	गान्धार
ऋषभादि	रिगमपधनिसारिगमपध	कलोपनता	ऋषभ
गान्धारादि	गमपधनिसारिगमपधनि	शुद्धमध्यमा	षड्ज
मध्यमादि	मपधनिसारिगमपधनिसा	मार्गी	निषाद
पञ्चमादि	पधनिसारिगमपधनिसारि	पौरवी	धैवत
धैवतादि	धनिसारिगमपधनिसारिग	हृष्यका	पञ्चम

इन सारिणियों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि केवल षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना में ही त्रिस्थानप्राप्ति का उद्देश्य पूर्ण हुआ है, क्योंकि वह षड्ज की मूर्च्छना है और धैवत से उसका आरंभ किया गया है। इस प्रकार मन्द्र में 'ध नि' तथा तार में 'रि ग' प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु अन्य किसी भी मूर्च्छना में इस क्रम का पालन नहीं हुआ है। निषाद से आरंभ होने वाली मूर्च्छना 'रजनी' को इस क्रम के अनुसार पंचम से आरंभ करना चाहिए था; किन्तु उसे निषाद से ही आरंभ किया गया है। इस प्रकार न तो त्रिस्थान प्राप्ति का उद्देश्य पूरा हुआ है और न ही सप्तस्वर मूर्च्छनाओं के मौलिक आरंभस्थानों के साथ द्वादश-स्वर मूर्च्छनाओं के आरंभस्थानों का सामंजस्य स्थापित हो सका है। यह स्मरणीय है कि सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को यदि द्वादशस्वर मूर्च्छनाओं में, त्रिस्थान प्राप्ति के उद्देश्य से स्थापित करना हो तो वहाँ अवरोह-क्रम रखना चाहिए—यथा 'ध' के बाद 'प' से तथा 'प' के बाद 'म' से षड्जग्राम की मूर्च्छनाएं बनाना चाहिए। किन्तु मतंग के विधान में इसके विपरीत आरोहक्रम रखा गया है। यानी 'सानिधपमगरि' इस क्रम में स्थित सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को 'धपमगरिसानि' इस अवरोह-क्रम से द्वादश-स्वरों में स्थित करना चाहिए था, उसकी बजाय उन्हें 'धनिसरिगमप' यों आरोह-क्रम में रख दिया गया है। इस प्रसंग में मतंग का निम्नलिखित वाक्य भी विचारणीय है :—

> सारिगमधनि अन्या (?) मूर्च्छना धनिगमपाद्याश्रिप (?) मूर्च्छना द्रष्टव्या। (बृहद्देशी पृ० ३२)
>
> इस पंक्ति का शुद्ध पाठ निम्नलिखित होगा :—
>
> सारिगमपधन्याद्या सप्तस्वर मूर्च्छना धनिसारिगमपाद्या द्वादशस्वरमूर्च्छना द्रष्टव्या।

अर्थात्—(षड्जग्राम की) जो सप्तस्वर मूर्च्छनाएं क्रमशः 'सारिगमपधनि' से आरंभ होती हैं, वही द्वादश स्वर-व्यवस्थानुसार क्रमशः 'धनिसरिगमप' से शुरू होती हैं। ध्यान रहे कि इस उद्धरण में सप्तस्वर मूर्च्छनाओं को भी 'सारिगमपधनि' यों आरोह क्रम में रखा गया है। यदि इसी क्रम से द्वादश-स्वर-मूर्च्छनाओं के साथ सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को स्थापित किया जाता तब तो दोनों में सामंजस्य रहता। किन्तु इस उद्धृत वाक्य के बाद 'बृहद्देशी' के वर्तमान उपलब्ध पाठ में सप्तस्वर मूर्च्छनाओं का तो परंपरागत अवरोह-क्रम ही रख लिया गया है और द्वादश-स्वर मूर्च्छनाओं को आरोह-क्रम में ही बनाया गया है। इसीलिए क्रम-भंग की सृष्टि हुई है और इसी क्रम भंग के फलस्वरूप न तो त्रिस्थान प्राप्ति का प्रयोजन ही सिद्ध हो सका है और न ही सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं के साथ सामंजस्य स्थापित हो सका है। अस्तु।

द्वादश-स्वर-मूर्च्छना का प्रयोजन भरत ने तो 'त्रिस्थान-प्राप्ति' या 'मन्द्रमध्यतारसिद्धि' इतना ही कहा है। किन्तु कोहल और नन्दिकेश्वर के जो वचन उन्होंने इस प्रकरण में उद्धृत किए हैं, उनमें इस प्रयोजन के अतिरिक्त 'जाति रागादिसिद्धि' पर ही विशेष बल दिया गया है। इस द्वितीय प्रयोजन की सिद्धि भी द्वादश-स्वर-मूर्च्छना से होती है या नहीं, यह भी हम जांच लें। दोनों ग्रामों की जातियों में उन्होंने जिन-जिन मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है, वे निम्नोक्त सारिणी में दिखाई गई हैं। ध्यान रहे कि इस सारिणी में हम मतंग की कही हुई जातिगत मूर्च्छनाओं का यथावत् उल्लेख कर रहे हैं। ये मूर्च्छनाएं सप्तस्वर की हैं या द्वादश स्वर की हैं, इस बारे में मतंग मौन हैं। इसलिए जिस द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-पद्धति का उन्होंने विशेष रूप से प्रतिपादन किया है, उसी का प्रयोग जाति प्रकरण में मानना [illegible]

१०

प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यह स्पष्ट करना भी यहाँ आवश्यक है कि मतंग ने जातियों की मूर्च्छनाओं के नामों का दो प्रकार से उल्लेख किया है, कहीं 'ऋषभादि', 'पंचमादि', 'धैवतादि'—इस प्रकार के नाम दिए हैं तो कहीं परम्परागत सप्तस्वर-मूर्च्छना-नाम यथा हृष्यका आदि प्रयुक्त किए हैं। इससे कुछ भ्रम हो सकता है कि कहाँ सप्तस्वर-मूर्च्छना समझी जाए और कहाँ द्वादश-स्वर समझी जाए। किन्तु उनके द्वादश स्वर मूर्च्छना के आग्रह को देखते हुए हम दोनों प्रकार के नामोल्लेख को निम्न सारिणी में उनके स्व-निर्मित द्वादश स्वर मूर्च्छना के क्रम से ही रखना हमने उचित समझा है। उदाहरण के लिए यदि हृष्यका मूर्च्छना नाम कहा है तो उसका द्वादश-स्वर-मूर्च्छना रूप धैवत से प्रारंभ होता है और सप्तस्वर रूप पंचम से। हमने तदनुसार उसका द्वादश स्वर रूप धैवतादि रखा है और साथ ही पाठकों के सौकर्य के लिए प्रत्येक मूर्च्छना के सप्तस्वररूप का प्रारंभस्थान भी दिखा दिया है। तद्वत् जहाँ ऋषभादि मूर्च्छना कही है, वहाँ उसे द्वादश स्वर मूर्च्छना का नाम मानकर उसका सप्तस्वर-नाम तदनुसार कलोपनता दिखा दिया है। पाठक इसी प्रकार सब मूर्च्छनाओं के लिए समझ लें। कुछेक जातियों की मूर्च्छनाओं का नामोल्लेख मतंग के बृहद्देशी के वर्तमान उपलब्ध पाठ में प्राप्त नहीं होता। ऐसे स्थलों पर प्रश्न चिन्ह लगाकर 'रत्नाकर' में प्राप्त उल्लेखों से पूर्ति कर ली गई है। 'रत्नाकर' में जातिगत मूर्च्छनाओं के विषय में मतंग की बृहद्देशी का ही अविरल अनुसरण स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए प्रस्तुत 'बृहद्देशी' के जो अंश इस प्रकरण में लुप्त हैं, उनकी पूर्ति 'रत्नाकर' के आधार पर निःसंदेह की जा सकती है।

मतंगोक्त जातिगत मूर्च्छनाएँ

जाति नाम	ग्राम	मूर्च्छना का द्वादश-स्वर नाम	द्वादश स्वर के अनुसार सप्तस्वर-नाम	सप्तस्वर मूर्च्छना का अपना आरंभ स्थान	जाति का अंश न्यास स्वर
१. षाड्जी	षड्ज	धैवतादि	उत्तरमन्द्रा	षड्ज	षड्ज
२. आर्षभी	„	पञ्चमादि	अभिरुद्गता	ऋषभ	ऋषभ
३. धैवती	„	धैवतादि	उत्तरमन्द्रा	षड्ज	धैवत
४. नैषादी	„	गान्धारादि	मत्सरीकृता	मध्यम	निषाद
५. षड्जकैशिकी	„	?	—	—	गान्धार
६. षड्जमध्यमा	„	मध्यमादि	अश्वक्रान्ता	गान्धार	षड्ज, मध्यम
७. षड्जोदीच्यवा	„	गान्धारादि	मत्सरीकृता	मध्यम	मध्यम
८. गान्धारी	मध्यम	धैवतादि	हृष्यका	पञ्चम	गान्धार
९. मध्यमा	„	? ऋषभादि	कलोपनता	ऋषभ	मध्यम
१०. पञ्चमी	„	? „	„	„	पञ्चम
११. मध्यमोदीच्यवा	„	मध्यमादि	मार्गी	निषाद	मध्यम
१२. गान्धारोदीच्यवा	„	धैवतादि	हृष्यका	पञ्चम	मध्यम
१३. रक्तगान्धारी	„	ऋषभादि	कलोपनता	ऋषभ	गान्धार
१४. कैशिकी	„	गान्धारादि	शुद्धमध्यमा	षड्ज	ग, प, नि
१५. गान्धारपञ्चमी	„	„	„	„	गान्धार
१६. कार्मारवी	„	षड्जादि	हरिणाश्वा	गान्धार	पञ्चम
१७. आन्ध्री	„	मध्यमादि	मार्गी	निषाद	गान्धार
१८. नन्दयन्ती	„	हृष्यका (धैवतादि)	हृष्यका	पञ्चम	„

जातियों में स्वर-रूप का निर्णय कैसे किया जाए? किस आधार पर किया जाए? ऐसा प्र
ता है कि इसी प्रश्न के हल के लिए मतंग ने जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है। यहां यह पुनः
भरत ने शुद्धा जातियों में तो उनके नाम-स्वरों को ही ग्रह-अंश, न्यास कहकर और न्यास को अपरिवर्तनशील
न-उन न्यास स्वरों द्वारा ही अपनी अभिप्रेत जातिगत मूर्च्छनाओं का निर्देश कर दिया है। किन्तु मतंग ने उपर्युक्त भरत-
व्यवस्था का यथावत् उल्लेख करके भी शुद्धा और संसर्गजा जातियों को भिन्न भिन्न मूर्च्छनाओं का स्वतन्त्र रूप से
रूपण किया है और इन मूर्च्छनाओं का न्यास-स्वर के साथ कोई सामंजस्य नहीं है।

उपसंहार

मतंगकथित मूर्च्छनाएँ भरतोक्त न होने पर भी उनके स्वीकार में हमें आपत्ति न होती यदि हमें उन
र्च्छनाओं द्वारा प्राप्त स्वरावलियों में शुद्धा जातियों के रूपों का और उनके संसर्ग से बनी हुई संसर्गजा जातियों के
भवायी रूपों का यथायथ दर्शन उपलब्ध होता। किन्तु मतंग की जातिगत मूर्च्छनाओं का विभिन्न पहलुओं से जो दर्शन
मने प्राप्त किया, तदनुसार भरत के अनुयायी का यही कर्तव्य है कि वह उन्हीं की परंपरा का अनुसरण करे और
नकी प्रतिपादित न्यास स्वर की अपरिवर्तनशीलता, जो मतंग को भी मान्य है, उसके आधार पर न्यास स्वर को ही जाति
स्वर-रूप का नियामक माने। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इसके पूर्व जातियों का विवरण दे ही चुके हैं।

यह भी सत्य है कि मतंग का 'बृहद्देशी' आज जिस रूप में उपलब्ध है, उसमें पाठ अतिशय भ्रष्ट और अपूर्ण
है; यहां तक कि कई पृष्ठ के पृष्ठ लुप्त हैं। मतंग के इस जाति-प्रकरण की वर्तमान दुरूहता के लिए यह वस्तुस्थिति
भी पर्याप्त मात्रा में उत्तरदायी है। इसलिए जब हम इस प्रसंग में प्राप्त उल्लेखों से मतंग का सिद्धान्तांश समझने की
असमर्थता प्रकट करते हैं, तब इस कथन में ग्रन्थकार के प्रति अनादर की कोई भावना नहीं है; उनके प्रति हमें सम्पूर्ण
आदर है। सत्य का प्रकाश हम उन्हीं के उल्लेखों में खोजते हैं। हां, जहां-जहां कठिनाइयां हों वहां उन्हें स्पष्ट कर
देना तो हमारा कर्तव्य हो जाता है।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस वैदिक प्रार्थना के अनुसार हम भी प्रकाश पाने के लिए प्रार्थना करते हैं और
जो कुछ आलोक प्राप्त हो उसे सानुनय विनिरित करने के बल की कामना करते हैं। इसलिए जिस तथ्य की जैसी
उपलब्धि हुई है, यत्नपूर्वक जो जैसा समझ में आया है, उसे उसी रूप में रख देने के कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।

इस प्रकरण के उपसंहार में मतंगोक्त द्वादश स्वर मूर्च्छना पर भी अपना मन्तव्य देना हम आवश्यक समझते हैं।
हमने देखा कि मतंगोक्त द्वादश स्वर मूर्च्छना से किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। त्रिस्थान प्राप्ति की दृष्टि
से भी यह द्वादश स्वर विधान अनावश्यक ठहरता है, क्योंकि सप्तस्वर मूर्च्छना में भी तारमन्द्रादि का सिद्धि के लिए
उन्हीं स्वरों का तीनों सप्तकों में उपयोग किया जा सकता है। जिसकी सहज उपलब्धि सप्तस्वर मूर्च्छनाओं में ही
परंपरा से प्राप्त है, उसके लिए द्वादश स्वर मूर्च्छना का विधान आवश्यक नहीं ही है। हमने यह भी देखा कि जातियों
के स्वररूप निर्धारित करने में भी द्वादश स्वर मूर्च्छना की कोई उपयोगिता नहीं है; इसलिए हम भरतोक्त सप्तस्वर
मूर्च्छनाओं को ही ग्राह्य मानते हैं। मतंग के परवर्ती जिन आचार्यों ने उनकी द्वादश स्वर मूर्च्छना को अग्राह्य माना है,
उनमें से 'संगीतराज' के रचयिता कुम्भा राणा के शब्द निम्नोक्त हैं :—

> अत्र या मूर्च्छना प्राह द्वादशस्वरसंभवा । मतङ्गस्तन्मतं नैव सुन्दरं प्रतिभाति मे ॥
> अत्रैव कोहलाचार्यो नन्दिकेश्वर एव च । मतङ्गमनुसृत्यैवोचतुस्तदिह वर्ण्यते ॥
> द्वादशस्वरसंपन्ना ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः । जातिभाषादिसिद्ध्यर्थं तारमन्द्रादिसिद्धये ॥
> त्रिस्थानप्राप्तिसिद्ध्यर्थं द्वादशस्वरमूर्च्छना । प्रयोक्तव्यान्यथा चोडवषाडवौ नैव सिद्ध्यतः ॥
> त्रिस्थानप्राप्तिपर्यन्तं यावद्गाणो न मूर्च्छति । न तावत्तच्छरीरस्य लाभः संजायते क्वचित् ॥

न च सप्तस्वरैरेव त्रिस्थानव्याप्तिसंभव.। अत्र प्रतिसमाधत्ते सुम्भाएगुननन्दन. ॥
क्रमात्स्वराणामारोहावरोहौ मूर्च्छनेति यत्। लक्षणं तद् विहन्येत क्रमादारोहणादृते ॥
यदुक्तं जातिभाषादितारमन्द्रादिसिद्धये। द्वादशस्वरयुक्तेन मूर्च्छना स्यात्प्रयोजिता ॥
नन्दयन्त्या तदव्याप्ते तस्यास्त्रयोदशसंभवात्। षाडवौडुवितास्त्वव्याप्तिर्लोप्यादिसंभवात् ॥
यत्सभवाद्गतार्थत्वात्तारमन्द्रावधी कृते। न तावत् क्रमतोचारे रक्ति. क्वापि जायते ॥
विसंवादिसमावेशाद्रक्तिभङ्गो यत. स्मृत । ईषत्स्पर्शोऽस्त्वितनार्थ. क्रमभङ्गस्य शासनात् ॥
कूटतानोपयोगित्वं मुख्यमागा प्रयोजनम्। न रागजनिरेपातथोर्गो सप्तस्वरैरिता ॥

(संगीतराज, गीतरत्नकोश, रागोल्लास ३८२-६४)

अर्थात्—"मतंग ने जो द्वादशस्वर-मूर्च्छना कही हैं, वह मुझे 'सुन्दर' (उचित) प्रतीत नहीं होती। कोहलाचार्य और नन्दिकेश्वर ने मतंग के मत का अनुसरण करके जो कुछ कहा है* वह इस प्रकार है—'द्वादश की जातिभाषादि सिद्धि के लिए और तारमन्द्रादि त्रिस्थान की सिद्धि के लिए द्वादशस्वर-मूर्च्छना प्रयुक्त करनी पड़ी। जब तक राग का त्रिस्थान में विस्तार न किया जाए तब तक उसका शरीर (रूप) बुधजनों को प्रतीतिगोचर नहीं हो सकता। सप्तस्वरों से त्रिस्थान व्याप्ति सम्भव नहीं होती, अतः द्वादशस्वरमूर्च्छना आवश्यक है।' इसका समाधान यह है—'मूर्च्छना का लक्षण है—क्रम से सप्तस्वरों का आरोहावरोह। इस लक्षण का द्वादशस्वर-मूर्च्छना में हनन हो जाता है क्योंकि उसमें क्रम से सप्त स्वरों का आरोहावरोह नहीं होता। यह जो कहा गया है कि जाति-भाषादि-सिद्धि के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छना आवश्यक है—यह भी यथार्थ नहीं है, क्योंकि नन्दयन्ती जाति में द्वादश-स्वर से भी काम नहीं चलता, पञ्चदश स्वरों से नन्दयन्ती की सिद्धि होती है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि षाडव-औडव जाति-भेदों में लोप्य स्वरों की गिनाई न होने से द्वादशस्वर मूर्च्छना ढाई या तीन सप्तकों में व्याप्त हो जाएगी। यदि लोप्य स्वरों की भी गिनाई की जाए तो फिर षाडव औडव जातियों या रागों की सिद्धि नहीं हो सकेगी। इस प्रकार द्वादशस्वर मूर्च्छना नन्दयन्ती के प्रसंग में अव्याप्ति-दोष-युक्त है और षाडव-औडव जातियों या रागों के लोप्य स्वरों के प्रसंग में यह अतिव्याप्ति दोष-युक्त है। इन दोषों के अतिरिक्त विसंवादि अन्तरालों के समावेश के कारण इस मूर्च्छना-पद्धति में रक्तिभङ्ग होता है। अतः द्वादशस्वर मूर्च्छना का केवल कूटतान में उपयोग हो सकता है। उनसे 'राग की उत्पत्ति सम्भव नहीं है अतः सप्तस्वर मूर्च्छना ही ग्राह्य है' (द्वादशस्वर नहीं)।"

शार्ङ्गदेव

मतंग के पश्चात् शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' का उल्लेख क्रम प्राप्त है। 'संगीत रत्नाकर' के जाति-प्रकरण को देखने से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि शार्ङ्गदेव ने इस संबंध में मतंग का ही अनुसरण किया है। हम देख चुके हैं कि शार्ङ्गदेव के पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों में जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख मतंग ने ही किया है। 'रत्नाकर' में मतंग के उल्लेख का अविकल अनुसरण मिलता है। उदाहरणार्थ षाड्जी जाति के लिये 'मूर्च्छना धैवतादिका' इन शब्दों का शार्ङ्गदेव ने मतंग के अनुसार प्रयोग किया है। षाड्जी जाति शुद्धा जातियों में प्रथम है। शुद्धा जातियों की व्याख्या देते हुए स्पष्ट कहा गया है कि उनके ग्रह, अंश और न्यास उनके अपने नाम-स्वर से ही होते हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि षाड्जी जाति का ग्रह, अंश और न्यास षड्ज ही है। यह होते हुए भी इसकी मूर्च्छना धैवतादिका क्यों कही गई ? ग्रह, अंश या न्यास—इन तीन में से जो भी जाति के स्वर रूप का नियामक माना जाए वहीं से, उसी स्वर से मूर्च्छना का

* वास्तव में तो मतंग ने द्वादशस्वर मूर्च्छना के प्रकरण में कोहल और नन्दिकेश्वर को पूर्वाचार्य मानकर उनका मत उद्धृत किया है। ऐसी अवस्था में कुम्भ का यह कथन कि मतंग के मत का अनुसरण कोहल और नन्दिकेश्वर ने किया है, चिन्त्य है।

ाए। अर्थात् पाड्जी की मूर्च्छना पड्ज से ही कहनी चाहिए। उसके स्थान पर धैवतादि मूर्च्छना कहने का क्या र्थ है ? उसी प्रकार 'आर्षभी' की मूर्च्छना 'पंचमादि', 'गान्धारी' की 'धैवतादि', मध्यमा की 'ऋषभादि', 'पंचमी'—ती' की 'ऋषभादि', नैषादी की 'गाधारादि'—यो जातिया की मूर्च्छनायें शार्ङ्गदेव ने कही हैं।

जातियो के स्वर-रूप का निर्णय किस आधार पर हो यानी उनमें प्रयुक्त स्वरो के अंतराल कैसे रहेंगे, यह किस ार निश्चित किया जाए ? दो ग्रामों की मूर्च्छना विभिन्न अन्तरालों की द्योतक हैं। शार्ङ्गदेव ने तो अपने ग्रन्थ में र्छनाओं में अतिरिक्त स्वरो के शुद्ध विकृत भेद भी कहे हैं। उनमें से उन उन जातियो में कौन से शुद्ध विकृत स्वर क्त होंगे इसकी कोई स्पष्टता इन्होंने नहीं की है। यदि उनकी कही हुई जातिगत मूर्च्छनाओ को जातियो के स्वर-रूप निर्णायक मान लें तो पाड्जी को धैवतादि मूर्च्छना कहने से पाड्जी के ग्रह अंश और न्यास जो षड्ज ही है उसकी ंति कैसे बैठेगी ? साथ ही यह भी स्मरणीय है कि एक ही धैवतादि या ऋषभादि मूर्च्छना को कई जातियों के साथ संबद्ध ताया गया है। इससे स्पष्ट है कि जातिगत मूर्च्छनाओं को जातियों के स्वर रूप का निर्णायक मानने से कोई प्रयोजन द्ध नहीं होता। साथ ही यह भी हमें कहना पडता है कि स्वरलिपि और कथित शुद्ध विकृत स्वरो का भी जातियो के र-रूप स्पष्ट करने के लिये उपयोग नहीं किया है। ऐसा उपयोग यदि किया होता तो अनुमान करने के लिए कुछ ाधार मिल जाता।

शार्ङ्गदेव ने भिन्न भिन्न जातियो के स्वर-प्रस्तार के साथ-साथ गीत भी दिये हैं, जो उनके पूर्ववर्ती किसी ग्रन्थ मे लब्ध नहीं हैं। * 'रत्नाकर' के ये जाति गीत मतंगोक्त जाति प्रस्तारों के स्वरो मे ही अविकृत रूप से जडित हैं; पाठको सौकर्य के लिये यहा हम उनके कुछ जातिगीत उद्धृत करते हैं और साथ ही मतंग के जाति प्रस्तार भी दे रहे हैं।

शुद्धा जातियाँ—मतंग की शुद्धा जातियो के विवरण मे स्वर-प्रस्तार प्राय उपलब्ध नहीं है, किन्तु सस ंजा ातियों मे शार्ङ्गदेव द्वारा मतंग का जिस प्रकार का अविकल अनुसरण पाया जाता है उससे यह मानने मे कोई बाधा नहीं जाती है कि शुद्धा जातियो के प्रस्तार-गीत भी मतंग के प्रस्तारो के अनुसार ही बनाये गये होंगे। सर्वप्रथम हम ड्जग्राम की पाड्जी और मध्यमग्राम की गान्धारी इन दो जातियो के प्रस्तार गीत यहा उदाहरणार्थ उद्धृत कर रहे हैं।

पाड्जी

मतंग

तत्र पाड्ज्या षड्जग्रामसम्बन्धाया अंशा ग्रहा पञ्च ि। तद्यथा षड्जगान्धारमध्यमपञ्चमधैवता (ग्रहा ा ?) ग्रहा अंशाश्च। गान्धारपञ्चमावपन्या (सो ? सौ)। ादहीना षाडवा षड्जो न्यास। षड्जगान्धारयो जधैवतयोश्च सङ्गति.। गान्धारोऽतिवेलापित्वात्। रगमनं च सङ्गति। पञ्चमस्वरपरा तारगति। षड्ज- रात् परा या म (न्त्र ? न्द्र) गति। षड्जधैवतयोश्च हुलित्वं च सर्वथैव नास्ति। सम्पूर्णा षाडवा। यदा पूर्णा गीयते तदा ऋषभपञ्चमयोर्निषादपञ्चमयोरल्पत्वं र्मम्। युत —

शार्ङ्गदेव

षाड्ज्यामंशा स्वरा पञ्च निषादर्षभवर्जिता।
निलोपात्षाडव सोऽत्र पूर्णं नै काकली क्वचित् ॥६०॥
सगयो सधयोश्चात्र सगतिर्बहुलस्तु ग।
गाधारोंऽशो न नैलोंगो मूर्च्छना धैवतादिका ॥६१॥
चित्रा ताल पञ्चपाणिरत्र चैककलाऽऽदिम।
क्रमान्मार्गास्त्रिवृत्तिदक्षिणा गीतय पुन ॥६२॥
मागधी सभाविता च पृथुलेति क्रमादिमा।
नैष्क्रामिकध्रुवाया च प्रथमे प्रेक्षणे स्मृत. ॥६३॥
विनियोगो द्वादशात्र कला अष्ट लघुः कला।

* नान्यदेव के 'भरतभाष्य' मे यही जातिगीत उल्लिखित हैं, जो कि शार्ङ्गदेव ने दिए हैं। किन्तु नान्यदेव का ाल अभी निश्चित नहीं हो पाया है, इसीलिए उपरिलिखित सामान्य उल्लेख कर दिया गया है।

यं विना हीनता यस्याः स्यात् चेतस्या तु सोऽन्तर ।
इति वचनात्। ष (षा ? दा) षाडवा गीयते तदा ऋषभस्याल्पत्वं कार्यम्। शेषाणां स्वराणां बहुत्वम्। अस्याश्च दशांशका । तद्यथा। शुद्धा विकृताश्च पञ्चपूर्णाश्चत्वारः षाडवाः गान्धारेंऽशे षाडवापवादात् तेनांशाः स्फुरन्ति तेन लिखिता षड्जांशेन शुद्धत्व षड्जस्यान्यास सम्पूर्णावस्थायामष्टविध उपगमम्। षाडवावस्थाया न (य ? व) विधत्वम्। शुद्धां परित्यज्य चतुर्विधा षाड्जी विकृता बोद्धव्या। अस्याश्च धैवतादिमूर्च्छना पञ्चपाणिश्चित्रे मार्गे मागधी गीतिः पञ्चपाणिद्विकल वार्तिकमार्गे सम्भाविता गीतिश्चतुष्कल पञ्चपाणि दक्षिणे मार्गे पृथुला गीतिः। अनेन क्रमेण सर्वासां जातीनां बोद्धव्यम्। वीररौद्राद्भुता रसा कार्या। प्रथमोपक्षेपगे ध्रुवागाने विनियोग ॥

अस्या षाड्ज्या षड्जो न्यास। गांधारपञ्चमावपन्यासौ। वराटी दृश्यते। अस्या प्रस्तार —

१. षाड्जी

१. सा सा सा सा पा निध पा धनि
ह भ व ल ला ▪

२ री गम गा मा सा रिग धस धा
न य ना यु आ धि

३. रिग सा री गा सा सा गा सा
क

४ घा धा नी निस निध पा सां सां
न ग सू नु प्र ण य

५. नी धा पा धनि री गा सा गा
के लि स मु द्भ

६ सा धा धनि पा सा सा सा सा
वं

७. सा सा गा सा मा पा मा मा
स र स कु ङ ति ल क

८ सा गा मा धनि निध पा गा रिग
प का नु ले प

९. गा गा गा गा सा सा सा सा
म

१०. धा सा री गरि सा मा मा मा
प्र ण मा मि श म

११. धा नी पा धनि री गा री सा
दे ह ध मा न

१२. रिग सा री गा सा सा सा सा
सं

टिप्पणी

षाड्जी जाति के प्रस्तार गीत की टीका में कल्लिनाथ ने स्वरो के 'अल्पत्व बहुत्व-परिज्ञान' के लिए गीत के अन्तर्गत आए हुए स्वरो की सख्या का निर्देश किया है। यथा—षड्ज ३६, ऋषभ १२, गान्धार २४, मध्यम ८ पचम ८, धैवत १६, निषाद १२—और यह भी कहा है कि प्रस्तुत गीत का षोडश कला प्रस्तार षड्जाश षाड्जी का है। प्रत्येक कला मे स्वरों की कितनी मात्रा हैं, कौन सा स्वर लघु है, कौन सा गुरु है, यह भी कल्लिनाथ ने प्रत्येक जातिगीत की टीका में विस्तारपूर्वक बताया है।

षाड्जी की मूर्च्छना 'धैवतादि' कही गई है। क्या ? 'षड्जादि' क्यो नहा ? इस प्रश्न के साथ ही यह भी विचारणीय है कि शार्ङ्गदेव की कही हुई 'धैवतादि' मूर्च्छना का भी तो दिए हुए प्रस्तार-गीत में कोई प्रतिनिधित्व दिखाई नहीं देता।

जाति गीत में प्रयुक्त स्वरो की सख्या निर्दिष्ट करने से कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता है ? अल्पत्व बहुत्व का परिज्ञान तो प्रयुक्त स्वरो की इस सापेक्ष स्थिति से समझा जा सकता है। अर्थात् कौन स्वर अधिक बार या न्यून बार

प्रयुक्त हुआ है इसकी गिनाई से अल्पत्व बहुत्व का स्थूल परिज्ञान हो जाता है, किन्तु ग्रहत्व अंशत्व न्यासत्व का परिज्ञान कैसे हो ? यदि इन्हीं सन्दर्भों के आधार पर ग्रहत्व, अंशत्व न्यासत्व का भी निर्णय करने का यत्न किया जाय तो वह भी समीचीन नहीं होगा, क्योंकि ग्रंथकार इसके लिये मौन हैं और टीकाकार ने स्वयं "अल्पत्वबहुत्वपरिज्ञानार्थं" ही कह कर संख्या निर्देश किया है, महत्व अशत्व आदि के परिज्ञानार्थ नहीं। मान लें कि गीत के आरंभ में चार बार 'सा' रहने के कारण 'सा' को ग्रहत्व प्राप्त है, किन्तु इसी गीत की अन्य कलाएं अन्यान्य स्वरों से आरंभ होती हैं; वहाँ ग्रहत्व का क्या होगा ? षाड्जी में शुद्ध स्वरूप में तो ग्रह अंश न्यास आदि सभी कुछ षड्ज ही है। उन सबका निदर्शन या प्रतिनिधित्व कहाँ, कैसे समझा जाए ? पूरे गीत में ३६ बार षड्ज का प्रयोग हुआ है; इसीलिए अंशत्व न्यासत्व आदि षड्ज में ही आरोपित किये जाएं क्या ? जिस प्रकार गीत की कई एक कड़ियाँ षड्ज से भिन्न स्वरों से आरम्भ की गई हैं, उसी प्रकार षाड्जी के अन्य गीत अन्य स्वरों से आरंभ नहीं किए जा सकते क्या ? यदि नहीं, तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि केवल गीत के आरंभ के स्वर को ही ग्रहत्व प्राप्त है और इससे अधिक और कोई महत्व 'ग्रह' को प्राप्त नहीं है। यदि ऐसा ही मान लें तो गीत रचना के वैविध्य का लोप हो जाएगा। दूसरी ओर हम देखते हैं कि षाड्जी के गीत में बीस बार गान्धार, सोलह बार धैवत, बारह-बारह बार ऋषभ निषाद और आठ-आठ बार मध्यम पंचम का प्रयोग हुआ है। ग्रह, अंश, न्यास, षड्ज की अपेक्षा से इन स्वरों की स्थिति कैसे समझी जाय ?

षाड्जी जाति के प्रस्तार-गीत की टीका के अन्त में कल्लिनाथ ने कहा है :—

अयं प्रस्तारः षड्जांशत्वे गान्धाराद्यंशत्वेऽप्येवमेवाशबहुत्वादिना सम्यग्विचार्योद्धारो नेयः। गान्धाराद्यंशत्वमपि स्वस्थानस्थितानामेव। तेषां स्थायित्वकरणमपि वीणायामुपतन्त्रीणां स्वनादुसाम्यापादनमिति रहस्यम्।

अर्थात् यह प्रस्तार ('तं भवललाट' वाला) षड्जांश षाड्जी का है। गान्धारादि जब अंश बनाए जाएं तब भी इसी प्रकार बहुत्वादि से सम्यक् विचार करके, प्रस्तार बना लेना चाहिए। गान्धारादि का अंशत्व भी उनके स्वस्थानस्थित होने पर ही होता है। उन (गान्धारादि) का स्थायित्व-करण यानी उन्हें स्थायी बनाना भी वीणा की उपतन्त्रियों (चिकारियों) को (उन-उन स्वरों के) स्वनाद में स्थित करना ही है। यह रहस्य है।

इस उद्धरण का तात्पर्य यह है कि जब, जिस स्वर को अंशत्व देना हो यानी उसे 'स्थायी' स्वर बनाना हो तब उसी स्वर में वीणा की उपतन्त्रियाँ (चिकारियाँ) मिला ली जाएँ। इस प्रकार भिन्न २ अंश स्वरों में चिकारियाँ मिलाने का विधान कहाँ तक और किस प्रकार क्रियाग्राह्य हो सकता है, उस पर विचार करें।

हम जानते हैं कि 'रिगमपधनि'—इन छः स्वरों का जनक षड्ज है। षड्ज के निरन्तर गुंजन से ही उसके अनुपात से अन्य स्वरों की स्थिति सिद्ध होती है। इसलिए किसी भी वीणा में मुख्य तन्त्रियों में से कम से कम दो तन्त्रियाँ अवश्य षड्ज में मिलाई जाती हैं। उसी षड्ज के परिपोष के लिए चिकारियों में भी एक अथवा दो तारों पर षड्ज निनादित होता रहे ऐसी व्यवस्था रखी जाती है। आज के व्यवहार से हम यह भी जानते हैं कि राग के अंश स्वर के परिपोष के लिए पंचम, मध्यम, अथवा गान्धार, निषाद जैसे स्वरों को भी चिकारियों में स्थान देने की क्रिया विशिष्ट गुणिजनों में पाई जाती है। जैसे तानपुरे के प्रथम तार को पंचम, मध्यम अथवा गान्धार, निषाद में—राग के अंश (प्रमुख) स्वर के अनुसार मिलाया जाता है, उसी प्रकार चिकारियों को भिन्न २ स्वरों में मिलाने की विधि भी समझी जा सकती है और व्यवहार्य भी हो सकती है। पंचम, मध्यम का षड्ज के साथ संवाद-संबन्ध तो सर्वविदित है ही, सहश्रुति गान्धार का भी षड्ज से, पंचम से या निषाद से संवाद है, तद्वत् निषाद का पंचम से और गान्धार से संवाद-संबन्ध प्राकृतिकरीत्या स्थापित है। इस प्रकार, भिन्न २ स्वरों में चिकारियाँ मिलाने का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि उसमें संवादतत्त्व की अनिवार्य आवश्यकता है। उदाहरणार्थ तीव्र मध्यम अथवा कोमल ऋषभ में चिकारियाँ मिलाना ग्राह्य नहीं हो सकता।

उपर्युक्त दृष्टि से यह विचारणीय है कि षड्जग्रामिक अथवा मध्यमग्रामिक पंचश्रुति गान्धार-निषाद में चिकारियाँ मिलाने पर वीणा का संवाद-तत्त्व किस प्रकार स्थिर रह सकेगा ? पंचश्रुति गान्धार निषाद का तो षड्ज और पंचम—

दोनो के साथ सम्बन्ध है, इसलिये उनमें चिकारियाँ मिलाने की गुंजाइश समझी जा सकती है (यद्यपि ऐसा व्यवहार नहीं है,) किन्तु षड्जग्रामिक अथवा मध्यमग्रामिक गान्धार-निषाद में चिकारियाँ मिलाना न सहज है, न प्राकृतिक संवादसिद्ध है और न ही कर्णप्रिय हो सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उभयग्रामिक जातियो के सभी अंश स्वरों में चिकारियाँ मिलाने की क्रिया व्यवहारगत नही हो सकती।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भिन्न २ स्वरो में चिकारियाँ मिलाने पर भी षड्ज के स्थान में कोई परिवर्तन नही हो सकता। जैसे आज भी राग के अंश (प्रमुख) स्वर के परिपोष के लिए चिकारियाँ अथवा तरफ़ के तारो को छेड दिया जाता है, कुछ वैसा ही अभिप्राय यदि कल्लिनाथ के ऊपर उद्धृत विधान का हो तब तो वह उपर्युक्त संवाद मर्यादा के भीतर क्रियाग्राह्य हो सकता है। किन्तु यदि कोई उसका यह अर्थ लगाए कि चिकारियो में अंश स्वरो को षड्जस्थानीय मानकर तदनुसार स्वर व्यवहार करना है तो वह अर्थ क्रियात्मक दृष्टि से अव्यवहार्य ही कहा जाएगा।

कल्लिनाथ का उपर्युक्त विधान एक अन्य दृष्टि से भी चिन्त्य है। एक एक जाति मे चार, पाँच ■ या सात तक जो अंश स्वर माने हैं, उन सभी को अंशत्व देकर उनमें चिकारियाँ मिलाना और वीणा वादन करना भला कैसे सभव हो सकता है ? एक साथ तो अधिक से अधिक दो स्वरो में ही चिकारियाँ मिलाई जा सकती हैं और उन दोनो में भी संवाद की अनिवार्य शर्त तो है ही। एक के बाद एक स्वर को अंश बनाकर भी तुरन्त चिकारियाँ कैसे मिलाई जाएँगी ? वादन क्रिया के बीच बीच म उस प्रकार मिलाने बैठना कैसे सभव होगा ? यह कहा जा सकता है कि उस अवस्था में शुद्धा जातियो मे क्रमश अंश परिवर्तन से षड्जांश षाड्जी, गान्धारांश षाड्जी, मध्यमांश षाड्जी, धैवतांश षाड्जी— या शुद्धा जातियों के शुद्ध-विकृत भेदो को एक के बाद एक लिया जा सकता है। यानी एक समय पर एक ही स्वर को अंशत्व दकर भी वादन किया जा सकता है। किन्तु, संसर्गजा विकृता जातियों में एकाधिक जातियो का संसर्ग एक साथ कैसे दिखाया जाएगा ? जातियो के समवायी रूपो का निर्माण इस विधि में कैसे किया जा गा ?

कल्लिनाथ का ऊपर उद्धृत रहस्योद्घाटन इन सब प्रश्नो का जनक है, जिनके समाधान के बिना यह विधान क्रिया मे ग्राह्य नही हो सकता। गुणिज्ञन ऊपर उल्लिखित दृष्टियो से स्वय इस विधान की सार्थकता जाँच सकते हैं और निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

गान्धारी

मतंग

तत्र गान्धार्यां गान्धारषड्जमध्यमपञ्चमनिषादा ग्रहा अ पञ्चांशा। पञ्चस्वरपरस्तार न्यासपरस्तन्परो वा मन्द्र। ऋषभहीन षाडवम्, ऋषभधैवतहीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थाया मृषभधैवतयोरलनत्व शेषाणा बहुत्वम्। स्वरजातित्वाद् गान्धारो न्यास। षड्जमध्यमावपन्यासौ धैवतर्षभयो सङ्गति। तद्यथा—गान्धारी यदा सम्पूर्णा गीयते तदा मधागिगा इति गायन्ति इति प्रयो (गि ? ग) स्यात्। यदा ऋ (ष) भहीना गीयते सस्वरप्रवेशेन (?) मधाधागा इति प्रयोग स्यात्। यदा औडुविता गीयते तदा उत्तर (स्वर ?) स्वरप्रवेशे मागागा इति प्रयोग स्यात् गपरिध इति प्रयोग कदाचिदपि न स्यात्। दशभिरिलमस्या

शार्ङ्गदेव

अथ गान्धारी

पञ्चांशा रिधवर्ज्या स्युर्गान्धार्यां संगति पुन।
न्यासांशाभ्या वदन्येपा धैवतादृषभ व्रजेत् ॥६७॥
रिलोपरिधलोपाभ्या षाडवौडुविते क्रमात्।
पञ्चम षान्द्वैषी निसमध्यमपञ्चमा ॥६८॥
अंशाद्विपर्यौडुविल कला षोडश कीर्तिता।
मूर्च्छना धैवतादि स्यात्तालश्चञ्चत्पुटो मत ॥६९॥
विनियोगो ध्रुवागाने तृतीयप्रेक्षणे भवेत्।

अस्या गान्धार्यां गान्धारो न्यास। षड्जपञ्चमा यायामौ। गांधाराद्यनदेशीनेनाम्या दृश्यन्ते। अस्या

एकादशाशकाः शुद्धा विकृताः पूर्णा पञ्चपञ्चार. षाड्वा प्रस्तारः—
औडुवित एक. मूर्च्छना धैवतादि. चञ्चत्पुटस्ताल. एककलविधः
चित्रमार्गे मागधी द्विकले वार्तिके सम्भाविता चतुष्कले दक्षिणे
पृथुला रस. करुण. मात्रा दक्षिणे वार्तिके चित्रे कला
ध्रुवागाने तृतीयप्रेक्षणके विनियोगः ।

३. गाधारी

१. गा गा सा नी सा गा गा गा
ए तं

२. गा गम पा पा धप मा निध निसं
र ज नि व धू मु ख

३. निध पनि मा मपरि गा गा गा गा
वि भ्र म दं

४. गा गम पा पा धप मा निध निसं
नि शा म य स्वःरो ह

५. निध पनि मा मपरि गा गा गा सा
त व सु ख शि ला स

६. गा सा गा गा गा गम गा गा
व पु श्या ह म म ल

७. गा गम पा पा धप मा निध निसं
भू सु कि र ण

८. निध पनि मा मपरि गा गा गा गा
म मृ त म वं

९. री गा मा पध री गा सा सा
र ज त गि रि शि ख र

१०. नी नी नी नी नी नी नी नी
म णि श क ल च ख

११. गा गम पा पा धम मा निध निसं
व र यु व ति दं त

१२. निध पनि मा मपरि गा गा गा गा
धं क्ति नि भं

१३. नी नी पा नी गा मा गा सा
प्र ण मा मि प्र ण य

१४. गा सा गा गा गा गम गा गा
र नि क र ह र व नु

१५. गा पा मा मा निध निमं निध पनि
दं

१६. मा परिग गा गा गा गा गा गा
श शि मं

गान्धारी में भी षाड्जी के सदृश धैवतादि मूर्च्छना ही सही है। जो उलझनें और प्रश्न हम षाड्जी के प्रकरण में व्यक्त कर आये हैं वही गांधारी में भी लागू होते हैं।

अब हम संसर्गजा जातियों में से सर्वप्रथम षड्जग्राम की षड्जमध्यमा जाति को ले लें। षड्जमध्यमा में सातस्वर ग्रह अंश हैं और षड्ज-मध्यम न्यास हैं। इसमें षाड्जी और मध्यमा जाति का संसर्ग है। यह जाति सर्वस्वराश्रया कही गई है क्योंकि सभी स्वरों को इसमें अंशत्व प्राप्त है। जब जो स्वर अंशत्व पाएगा, उसी स्वर के अपने रस के अनुसार जाति की रस-निष्पत्ति होगी, ऐसा शास्त्र-वचन है। यहाँ भी हम शार्ङ्गदेव और मतंग के दिए हुए जाति-लक्षणों के साथ साथ मतंगोक्त प्रस्तार और 'रत्नाकरोक्त' जाति-गीत भी दे रहे हैं।

संसर्गजा विकृता जातियाँ

षड्जमध्यमा

मतंग

(षट् ? अंशा) सप्त स्वराः षड्जमध्यमाया मिथश्च ते ॥
सङ्गच्छते निरल्पोऽत्रा (गा ? त्रा) हृते वा (नि ? दि) ता विना।
निलोपे निगलोपे च षाडवौडुविते मते ॥ ५३॥
षाडवौडुवयो स्याता द्विश्रुती तु विरोधिनी।
गीतितालकलादीनि षाड्जीवन्मूर्छना पुन. ॥२५ ॥
मध्यमादिरिह ज्ञेया पूर्ववद् विनियोजनम्।
अस्या षड्जमध्यमौ न्यासौ। सप्त स्वरा अपन्यासा.।

प्रस्तार —

मागासगर (धप) मानिधनिमा (१)।
मामाधरी गरिनि (ध) पधापा (२)।
मागारीगा मामागासा (३,।
धागधपरिरिगगरिगसधसपा। रिगरिगसासा।
सागारिगरिग (५) (?)।
निधधरीमम मामामामा (६)।
मामाधगमग पधपनिमग (७)।
धाधपरिगम गारिगस+मग (८)।
मामाधनिधम धपमपापा (९)।
मामगमामा पधपममगम (१०)।
धागधपरिरिगगरिगसधस (११)।
निधसरिमगममामामामा षड्जमध्यमा। स ॥

शार्ङ्गदेव

अथ षड्जमध्यमा

अंशा. सप्त स्वरा षड्जमध्यमाया मिथश्च ते ॥
संगच्छन्ते निरल्पोऽत्र हृतस्ते षाडिता विना।
निलोपनिगलोपाभ्या षाडवौडुविते मते ॥८६॥
षाडवौडुवयो स्याता द्विश्रुती तु विरोधिनी।
गीतितालकलाऽऽदीनि षाड्जीवन्मूर्च्छना पुनः ॥
मध्यमादिरिह ज्ञेया पूर्ववद्विनियोजनम्।

अस्या षड्जमध्यमाया षड्जमध्यमौ न्यासौ। सप्त स्वरा अपन्यासा.। अस्याः

प्रस्तार :—

१०. षड्जमध्यमा

१ मा गा सग पा धा मा निध निम
र ज नि व धू मु ख

२. मां मां सां रिरं संगं निध पध पा
वि ला स सो च

३. मा गा री गा मा मा सा सा
मं

४. मा मगम मा मा निध पध पम गमम
प्र वि क सि त कु सु द

५. धा पध परि रिग मम रिग सधस सा
द ल फे न सं नि

६. निध सा री मगम मा मा गा मा
भं

७. मां मा मंगंम मंध धंपं पंधं पंमं गंमंगं
   या   मि अ न न य न

८. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
   हृ द या भि नं   दि

९ गा मा धनि धस धप मप पा पा
  नं

१०. मा ग मि मा निध पंध पमंगं गा मा
    प्र ण मा   मि दे य

११. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
    कु मु दा धि वा   सि

१२. निध सा री मगम मा मा मा मा
    नं

टिप्पणी

इस गीत को और प्रस्तार को गा बजा कर देखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि सप्तस्वरों का अंशत्व, ग्रहत्व, अपन्यासत्व, षड्ज, मध्यम का न्यासत्व एवं षाड्जी व मध्यमा जाति का संयोग—ये सब षड्जमध्या के लक्षण जो उसके स्वरूप को निष्पन्न करनेवाले हैं, इस प्रस्तार गीत में प्रकट नहीं होते। इस दुर्बोध रहस्य का उद्घाटन न तो ग्रन्थकार के शब्दों में उपलब्ध है और न टीकाकारों की टीका में ही कहीं यह दर्शन होता है कि इस जाति को सर्वरसाश्रया जो कहा गया है तदनुसार उसमें भिन्न २ रसों का आविर्भाव कहाँ, किस प्रकार होता है।

षड्जमध्या में षड्जग्राम की षाडजी और मध्यमग्राम की मध्यमा इन दो जातियों का जो समवाय बताया गया है, उस समवाय का सम्यक् दर्शन इस प्रस्तार गीत में किस प्रकार किया जाए ग्रन्थकार के वचनों में इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतएव इस प्रसंग में आज के कुछ सम्मिश्र रागों की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। तदनुसार एक उदाहरण यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा।

एक अमेरिकन विद्यार्थी (डॉ० हैरल्ड पावर्स) जो कर्णाटकीय संगीत का विधिवत् अध्ययन किए हुए थे, भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत की विशिष्ट राग-पद्धति में प्रवेश पाने के हेतु से हमारे पास आकर रहे थे। वे राग बसन्त-बहार की रचना को सुनकर तुरन्त यह पहचान गये थे कि उसमें नाम के अनुसार भिन्न २ दो रागों का सम्मिश्रण है। इतना ही नहीं षड्ज, मध्यम और पंचम ये तीन स्वर दोनों रागों के संधि स्थल हैं, जहाँ से एक राग में से दूसरे में प्रवेश किया जाता है, यह भी वे समझ गये थे। उसी रचना से यह भी उनके ध्यान में सहज आ गया था कि मिश्रण प्राप्त रागों (बसंत और बहार) में ग्रहत्व, अंशत्व, न्यासत्व आदि भिन्न भिन्न स्वरों का है। इस उदाहरण को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि कुछ इसी प्रकार की स्पष्टता षड्ज मध्या या अन्य किसी संसर्गजा जाति के प्रस्तार में अथवा गीत में पाठक या अनुसन्धित्सु को अपेक्षित होती है। यह आकांक्षा अपूर्ण रहने पर ये प्रश्न ज्यों के त्यों बने रहते हैं कि षड्जमध्या जाति के दिए हुए गीत में, प्रस्तार में, षड्जमध्या के अंतर्गत दो जातियों का संसर्ग, सप्तस्वरों का अंशत्व, ग्रहत्व, 'सा-म' का न्यासत्व, और सर्वरसत्व कहाँ तक स्फुट होता है? ये प्रश्न निरुत्तर ही रहते हैं, यह हम ऊपर कह आये हैं। जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभूति पानी हो वे इस गीत को गा बजा कर देख लें।

गान्धारोदीच्यवा

मतग

गान्धारोदीच्यवाया तु द्वावशौ षड्जमध्यमौ ॥२८५॥
रिलोपात् षाडव नेय पूर्णत्वेऽ (शोतराव्मना ? शेतरात्मता)।
अल्पा निषधगान्धारा षाडवे प्रकीर्तिता ॥२८६॥
रिषयो स (गनिज्ञे ? ङ्गतिर्ने) या धैवतादिश्च मूर्च्छना।
तालश्चचत्पुटो नेय कला षोडश कीर्तिता ॥२८७॥
विनियोगो ध्रुवागाने चतुर्थप्रेक्षणे मत ।

अस्या म (०प) न्यो न्यास । षड्ज धैवतावपन्यासो।

प्रस्तार —

सासामामा	पाधपमामा	(१) ।
धापामामा	सासासा	(२) ।
धानीसासा	मामापापा	(३) ।
नीनीनीनी	नीनीनीनी	(४) ।
मामाधानिस	नीनीनीनी	(५) ।
मापामापरि	गाग सासा	(६) ।
गागमपाप्रध	मायनिपापा	(७) ।
रिगसासध	नीनीधाधा	(८) ।
(गारिगसासनि)	गारिगसासा	(९) ।
सासासामा	मनिधनीनीनी	(१०) ।
धामापापरि	मागासासा	(११) ।
गासागासा	मारामापरिगा	(१२) ।
गागागागा	गागाडासा	(१३ ।
नीनिपाधा	नीगागागा	(१४) ।
नीनीधापा	धापामापा	(१५) ।
धापामामा	मामामामा	(१६) ।

गान्धारोदीच्यवनी । म ॥

शार्ङ्गदेव

अथ गान्धारोदीच्यवा

गान्धारोदीच्यवायां तु द्वावशौ षड्जमध्यमौ ॥८८॥
रिलोपात्षाडव नेय पूर्णत्वेऽल्पेतरात्मता ।
अल्पा निषधगान्धारा षाडवे प्रकीर्तिता ॥
रिषयो सगतिर्ज्ञेया धैवतादिश्च मूर्च्छना ।
तालश्चचत्पुटो ज्ञेय कला षोडश कीर्तिता ॥
विनियोगो ध्रुवागाने चतुर्थप्रेक्षणे मत ।

अस्या गान्धारोदीच्यवाया मध्यमो न्यास । षड्ज धैवतावपन्यासो । अस्या प्रस्तार —

११ गान्धारोदीच्यवा

१	सा	सा	पा	मा	पा	धप	पा	मा
	सौ							
२	धा	पा	मा	मा	सा	सा	सा	सा
	म्य							
३	धा	नी	सा	सा	मा	मा	पा	पा
	गौ		री		मु	खा		ब्ज
४	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	ह	ह	हिं		०य	नि	ल	क
५	मा	मा	धा	निम	नी	नी	नी	नी
	प	रि	धु		बि	ता		चिं
६	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	सा	सा
	त	मु	पा		द			
७	गा	मग	पा	पध	मा	धनिं	पा	पा
	प्र	त्रि	म	सि	त	हे		म
८	री	गा	सा	सध	नी	नी	धा	धा
	म	भ	स	नि	भै			
९	गा	रिग	सा	सनि	गा	रिग	सा	सा
	भ्र	ति	रु	चि	र	र्गं		ति
१०	सा	सा	सा	मा	मनि	धनि	नी	नी
	न	ख	द		पं	ण		म।
११	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	सा	सा
	स	नि	के		त			

१२. गां सां गां सां मां। पां मां। रिरिं
म न सि ज। श री र।
१३ गां मां गां सां गां गां गां सां
ता द न
१४. नीं नीं पां धां नीं गां गां गां
प्र ण मा मि गां री
१५ नीं नीं धां पां धां धां मां धां
च र ण यु ग म नु प
१६. धां पां सां सां मां मां मां मां
मं

इस जाति के लक्षणों में निषाद का अल्पत्व कहने पर भी प्रस्तार में उसका विपुल प्रयोग किया गया है, तद्वत् लक्षण में कहा हुआ गान्धार का अल्पत्व भी प्रस्तार में दिखाई नहीं देता। इस जाति में षाड्जी गान्धारी और धैवती व मध्यमा का संयोग है और इसका वीर रौद्र रस कहा गया है। इस प्रस्तार-गीत में न तो इन चार जातियों का संयोग स्फुट होता है और न ही इस जाति के रस की अभिव्यक्ति होती है। प्रस्तार-गीत की षोडश कलाओं में कौन स्वर कितनी बार आया है, इसकी गणना कर के देखने पर भी इसके ग्रह, अंश, न्यास, संवर्ग और रस का अस्फुटत्व बना ही रहता है। लक्षणों में कही गई 'रि-प' संगति भी प्रस्तार में नहीं है।

कैशिकी

मतंग

कैशिक्यामृषभान्या निषादवती (प ? य) दा तदा।
न्यास पञ्चम एव स्यादन्यदा (वि ? द्वि) श्रुतो मतो ॥
अन्ये तु निगन्न्यासा (न्) निधयोरंशयोर्विदु।
रिलोपरिधलोपेन पाडवौर्विते मतम् ॥२६॥
रिरल्पो निनबाहुल्यमशाना सङ्गतिर्मिय।
पाडवौडुविते। (द ? द्वि) क्रमात् पञ्चमधैवती।
षाड्जीवत् पञ्चपाण्यादि गान्धारादिस्तु। मूर्च्छना।
पञ्चम (प्रो ? प्रे) क्षणगत ध्रुवाया विनियोजनम् ॥२६५॥
अस्या (गान्धा) रपञ्चमनिषादा न्यासा.
रिवर्जा षट् सप्त वा स्वरा अपन्यासा.।

प्रस्तार:—

पाधनिगाधनि गागागागा (१)।
पापामाधनि निधगागा (२)।
धानीसासा रीरीरीरी (३)।
सांसासारी गामामामा (४)।
मधानीपा। (मा) धामापा (५)।

शार्ङ्गदेव

अथ कैशिकी

कैशिक्यामृषभान्येंऽशा निषादवशौ यदा तदा।
न्यास पञ्चम एव स्यादन्यदा द्विश्रुती मतौ ॥९५॥
अन्ये तु निगान्न्यासानिधयोरंशयोर्विदु।
रितोपरिधलोपेन पाडवौडुवित मतम् ॥९६॥
रिरल्पो निनबाहुल्यमशानां सगतिर्मिय।
पाडवौडुविते द्विट् क्रमात्पञ्चमधैवती ॥९७॥
षाड्जीवत्पञ्चपाण्यादि गान्धारादिस्तु मूर्च्छना।
पञ्चमप्रेक्षणगतध्रुवाया विनियोजनम् ॥९८॥

अस्या कैशिक्या गान्धारपञ्चमनिषादा न्यासा। रिवर्ज्याः षट् सप्त वा स्वरा अपन्यासा। अस्या.

प्रस्तार:—

१३. कैशिकी

१ पा धनि पा धनि गा गा गा गा
के' शी [illegible] त

निगरीसाधनि रीरीरीरी (६)।
गारीसासा पाधामामा (७)।
गागागामा मानीधनीनी (८)।
गागानीनी गागागागा (९)।
गागानीनी पागागागा (१०)।
मापामापा पापामामा (११)।
धामागानिसानीनीगागा (१२)।
कैशिकी । म ॥

२. पा पा मा निध निध पा पा पा
मा ग स नु
३. धा नी सां सा री री री री
त्रि भ्र म वि ला सं
४. सा गा गा री गा मा मा मा
त्रि न य यु त
५. मा धा नीं धा मा धा मा गा
गु धों र्घ्व वा ल
६. गा री सा धनि री री री री
सो म नि भ
७ गा री सा सा धा धा मा मा
मु ख क म ल
८. गा गा गा मा मा निधनि नी नी
म द म हा ट
९. गा गा नी नी गा गा गा गा
व स रो जं
१०. गां गां नी नीं निधं पां पां पां
हृ दि सु रा द
११. मां पां मां पां पां पां मां मां
प्र ण मा मि लो च
१२. सां मां गां निधनिं नीं नीं मां गां
न वि शे पं

इसमें षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पचमी और नैषादी इन पाँच जातियों का सयोग कहा गया है, गान्धार, निषाद और पचम न्यास हैं, और ऋषभ को छोड कर 'सगमपधनि' ये छ स्वर ग्रह-अंश हैं और यही अपन्यास भी हैं।

टिप्पणी

इसके गीत प्रस्तार को देखते हुए प्रत्यक्ष गा बजा कर यह अनुभव लिया जा सकता है कि उसमें जाति के भिन्न भिन्न लक्षणों का समन्वय या सामजस्य प्राप्त होता है। साथ ही विवरणोक्त अल्पत्व-बहुत्व के नियम का भी इसमें पालन नहीं हुआ है। इन प्रकार देखने से यह स्पष्ट होने मे कोई प्रत्यवाय नही रहेगा कि इस प्रस्तार मे भी अन्य जाति प्रस्तारों के सदृश वाछित फल सिद्धि नही होती।

उभयग्राम की दो शुद्धा तथा तीन संसर्गजा जातियो के उदाहरण हमने ऊपर देखे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि नाट्यान्तर्गत स्थायी या सचारी भावो की अभिव्यक्ति में इन जाति प्रस्तारों द्वारा कैसी व कितनी सहायता उपलब्ध होती होगी, ससर्गजा जातियों में जिन जिन जातियो का संसर्ग कहा गया है एवं जिन रसो का आविर्भाव सूचित किया गया है उन सबकी कहाँ तक सिद्धि होती है, यह सब कुछ गुण-जनो के लिये हर पहलू से विचारणीय है। इस विषय पर हम अपने विचार ऊपर की टिप्पणियो मे स्पष्टता से व्यक्त कर ही आए हैं।

ऊपर दिए गए शुद्धा-विकृता जातियो के प्रस्तार-गीतो के उदाहरणो से यह स्पष्ट हुआ होगा कि जिन-जिन जातियो मे जो-जो स्वर-प्रस्तार मतंग ने दिए हैं, उन्हीं को अविकल बनाए रखते हुए 'रत्नाकर'कार ने उनमें गीत के शब्द बैठा

दिए हैं अथवा इसी रूप में ये गीत उन्हें किसी परंपरा द्वारा प्राप्त हुए होंगे। इन प्रस्तार-गीतों में उन-उन जातियों का कितना और कैसा दर्शन होता है यह हम ऊपर कह आये हैं। मतंग ने तो प्रत्येक जाति के ग्रह, अंश और न्यास के अनुसार स्थूल मान से, अत्यल्प रूप में स्वर-प्रस्तार का एक ढांचा प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिये ग्रह, अंश, न्यास यदि 'सा' या 'म' है तो प्रारंभ में 'सा' या 'म' का विपुल प्रयोग दिखा कर, बीच-बीच में भी उन स्वरों का बहुत्व रख कर, नियमानुसार स्वर-संगति आदि का प्रयोग करके अन्त में 'सा' या 'म' पर ही न्यास करके दिखा दिया है। शुद्धा जातियों में मन्द्र में, और विकृताओं में तार में न्यास या समाप्ति दिखाई है। भरत ने तो "विकृतास्वनियमात्" कह कर यही बताया है कि विकृता जातियों में यह नियम नहीं है कि न्यास मन्द्र में ही हो, अर्थात् मन्द्र में भी हो सकता है और मध्य या तार में भी हो सकता है। किन्तु मतंग के स्वर-प्रस्तारों में और शार्ङ्गदेव के गीतों में विकृता जातियों में नियम से तार में ही न्यास किया गया है; यहां तक कि प्रस्तार की समाप्ति तार सप्तक के मध्यम, पंचम, अथवा निषाद तक पर की गई है। विद्वज्जन इस बात पर ध्यान दें कि इस प्रकार की गीत-समाप्ति क्रिया में कहां तक व्यवहार्य है। मतंगोक्त प्रस्तारों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि ये यथावत् गीत में प्रयुक्त करने के लिये नहीं ही बनाए गए हैं। आज भी हम देखते हैं कि किसी भी राग के स्वर-प्रस्तार में से ठीक उसी क्रम से या उसी रूप में गीत रचना नहीं होती। इसलिये मतंग के इन जातिगत प्रस्तारों में शार्ङ्गदेव द्वारा अथवा किसी अन्य द्वारा जो गीत बिठाये गये हैं, उनमें गीत के लिये आवश्यक स्वर रचना का अभाव दिखाई देता है। गीत में स्वर-सौष्ठव, माधुर्य, स्वरों का क्रम प्रवाह, शब्दों के अभंग उच्चार की व्यवस्था, यति और शब्दार्थ का अटूट सम्बन्ध ये सब बातें अनिवार्य आवश्यक होती हैं, जिनका लोकगीत तक में स्वाभाविक रूप से पालन होता है। किन्तु हम देखते हैं कि इन तत्वों का 'रत्नाकर' के जाति-गीतों में दर्शन नहीं होता। प्रत्येक कलाकृति का मूल्यांकन उसकी aesthetic value या सौन्दर्य भावना के आधार पर ही होता है। इन जाति गीतों की aesthetic value की प्रतीति इन्हें गा-बजा कर देखने से और ऊपर लिखी कसौटी पर कसने से हो सकती है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जातियों के प्रस्तार-गीतों के विषय में जो कुछ भी ऊपर कहा गया है, वह उनके गीत अंश से ही सम्बन्ध रखता है, पाठ्य अंश से नहीं। हमने उन गीतों की स्वर-रचना को ही आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है, उनके पाठ्य-अंश यानी गीतों में प्रयुक्त देवस्तुति-परक पद्यों की उत्कृष्टता तो असंदिग्ध ही है। मतंगोक्त स्वर-प्रस्तारों में इन पद्यों को जड़ देने के फलस्वरूप यति-भंग, शब्दार्थ व्यवच्छेद आदि दोषों की जो सृष्टि हुई है, उसकी ओर हमने ऊपर संकेत किया ही है।

उपसंहार

ऊपर शुद्धा और संसर्गजा विकृता जातियों के प्रस्तारगीतों के सम्बन्ध में हमने जो कुछ टिप्पणियाँ दी, उनके अतिरिक्त इन जाति गीतों के संबंध में यह भी विचारणीय है कि यज्ञ में, देवपूजनार्थ नाट्य में, महफिल में अथवा परिजन परिवार में रसभाव-पोषणार्थ, अथवा लोकरंजनार्थ इन गीतों को गाया जाय तो क्या इनसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हो सकेगी? प्राचीन गौरव गाथा के मोह को त्याग कर यदि इन गीतों को गाकर देखें तो ये संगीत की आदिम अवस्था के द्योतक नहीं प्रतीत होते हैं क्या? जिस काल में संगीत शास्त्र में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना का इतना सूक्ष्म विश्लेषण होता था, तथा नाट्य में रसभावानुकूल संगीत की रचना होती थी, उस काल का संगीत क्या इतनी आदिम अवस्था में रहा होगा? विश्वास नहीं होता, श्रद्धा विचलित होती है। अत यह संशय होना नितांत स्वाभाविक है कि ये प्रस्तार-गीत उस काल के संगीत का सचमुच प्रतिनिधित्व करते हैं या नहीं?

जिस काल में जाति लक्षणों का इतना पूर्ण, गहन, सूक्ष्म और विशद विवेचन हुआ, उस काल में जाति गान का इतना अविकसित रूप भला कैसे रहा होगा? यदि प्रत्यक्ष संगीत-प्रयोग इतना सीमित ही रहा होता, तो इतने लक्षणों के विवेचन का क्या प्रयोजन था?

हम जानते हैं कि आज के लक्ष्य में एक ही राग में अनेक प्रकार की स्वर-रचना वाले गीत विभिन्न प्रान्तों में उपलब्ध होते हैं। और रागों के नियमित ढांचों में रचना का आज इतना विपुल क्षेत्र विकसित है कि एक-एक राग में पचासों रचना ध्रुपद अंग में, ख्याल अंग में, ठुमरी-टप्पा में, भजनों में और गजल-कव्वाली में विद्यमान होते हुए भी आज तक नवीन रचनायें होती रही हैं, हो रही हैं और भविष्य में भी होती रहेंगी। एक ही नियमित ढांचे में से इतनी विविध रचना के क्षेत्र की उपलब्धि, यही तो भारतीय राग पद्धति की विशेषता है। भरतोक्त जाति, जो कि इस राग-पद्धति का मूल-रूप है, उसका स्वरूप क्या इतना संकुचित, निर्जीव, और गतिहीन रहा होगा कि शताब्दियों तक 'रत्नाकरोक्त' एक-एक गीत को ही एक-एक जाति का प्रतिनिधि समझा जाता रहा? स्पष्ट है कि ऐसी निर्जीवता भरत या मतंग को अभिप्रेत नहीं ही रही होगी। संभवतः इसीलिए उन्होंने उदाहरण-स्वरूप गीत देने की आवश्यकता नहीं समझी होगी। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जिस जाति गान का स्वरूप भरत ने इतना व्यापक बताया है कि यहां तक कह डाला है कि "यत्किंचिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्"—उस जातिगान का इतना संकुचित क्षेत्र कैसे रहा होगा?

शार्ङ्गदेवोक्त जातिगीतों का वेदसादृश्य

'रत्नाकर'कार पं० शार्ङ्गदेव ने इन जातियों को सामवेदसंभूत बताया है, 'तं भरतलाटादि' पदों को ब्रह्मोक्त कह कर उन्हें अपरिवर्तनीय ठहराया है, उनके यथायथ प्रयोग को महत् पुण्य जनक बताया है और उनके अनियमित प्रयोग को महत् पातक-रूप कहा है। इस सम्बन्ध में उनके अपने शब्द और मल्लिनाथ की टीका निम्नोक्त है:—

> ब्रह्मप्रोक्तपदैः सम्यक्प्रयुक्ताः शंकरस्तुतौ ॥ १३३ ॥
> अपि ब्रह्महणं पापाज्जाताः प्रपुनन्त्यमू. ।
> ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा ॥ १३४ ॥
> तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसंमिता. ।
>
> (सं० र० १ ७. १३३-३४)

प्राक्पूर्वं शंकरस्तुतौ शंकरस्तुति विषयीभूतस्य ब्रह्मप्रोक्तपदे, ब्रह्मणा चतुर्मुखेन प्रोक्तैः प्रथितैः पदैः 'तं भरतलाट' इत्यादिभिर्योजयित्वा सम्यगन्यूनातिरेकेणोक्ता गीतार्थ्यदमू षाड्जयादयो जातयो ब्रह्महणमपि ब्रह्मघ्नमपि पुरुषं पापाद् ब्रह्महत्यापापान्मोचयित्वा प्रपुनन्ति पूतं कुर्वन्ति। अनेन सम्यग्जातिगानस्य महापातकप्रायश्चित्तत्वमुक्तं भवति। एवं सामर्थ्यं जातीनामुक्तनियमयुक्तानामृगादिमन्त्रसादृश्यहेतुत्वेनाभिसंधाय तासामनियमप्रयोगं निषेधति ऋच इति। ऋचो यजूंषि सामानि यथाऽन्यथा न क्रियन्ते स्वरवर्णोच्चारणादिवैपरीत्येन न प्रयुज्यन्ते, तथा सामसमुद्भूताः सामभ्यः समुत्पन्ना अतएव वेदसंमिता वेदसदृशा जातयोऽन्यथा न क्रियन्ते; स्वरपदतालादिवैपरीत्येन न प्रयोक्तव्या इत्यर्थः। एतेन विपरीतप्रयोगे प्रत्यवायः सूचितो भवति ॥

(मल्लिनाथ की 'कलानिधि' टीका)

ऊपर के उद्धरणों का तात्पर्य यह है कि ये जातियां जब 'ब्रह्मप्रोक्त' पदों के माध्यम से शंकर स्तुति में प्रयुक्त होती हैं, तब ये ब्रह्महत्या तक के पापी को पुनीत (पापमुक्त) बना देती हैं। जिस प्रकार ऋक्, साम, यजु—इस वेदत्रयी के मन्त्रों को अन्यथा नहीं कर सकते अर्थात् उनके उच्चार और स्वर में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते, उसी प्रकार 'साम' से समुद्भूत इन जातियों को भी समझना चाहिए, क्योंकि ये वेदसंमित हैं, अर्थात् वेदसदृश हैं। इन्हें स्वर, पद, तालादि के वैपरीत्य से प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। विपरीत (नियम विरुद्ध) प्रयोग से प्रत्यवाय होने की संभावना है।

हम जानते ही हैं कि 'संगीत रत्नाकर' मुनिकृत ग्रन्थ नहीं है। जिन मुनियों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें से किसी में 'ब्रह्मप्रोक्त' पदों की परंपरा का उल्लेख नहीं है। इसलिए पं० शार्ङ्गदेव के इन विधानों के सम्बन्ध में

कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं जो नितान्त विचारणीय हैं। इस संबन्ध में अपनी ओर से कुछ न कह कर केवल उन प्रश्नों को ही हम विद्वज्जन के सम्मुख रख देना समुचित समझते हैं। वे क्षीर-नीर विवेक से स्वयं उनके उत्तर पाकर सत्यानृत का निर्णय कर लें।

'रत्नाकर' में जाति गान के रूप में उल्लिखित पदों को 'ब्रह्मप्रोक्त' कहा गया है। यदि ये पद शार्ङ्गदेवप्रोक्त नहीं हैं, तो इन पदों की उत्तरोत्पत्ति उन्हें कहाँ से हुई ? इन पदों के निर्माता न सही, 'द्रष्टा' कौन थे ? मतंग मुनि के 'बृहद्देशी' में इन जातियों के जो स्वर प्रस्तार दिए गए हैं, हूबहू उन्हीं स्वर-प्रस्तारों के नीचे इन पदों को रखा गया है। क्या मतंग को, शार्ङ्गदेव के बहुत पूर्ववर्ती होने पर भी, ये ब्रह्मप्रोक्त पद उपलब्ध नहीं थे ?

'संगीत रत्नाकर' में सात शुद्धा और एकादश संसर्गजा—यों मिलाकर कुल अष्टादश जातियों में केवल एक-एक पद ही दिया है। हम जानते हैं कि भरत ने प्रत्येक शुद्धा जाति के ग्रह-अंश, अपन्यास-परिवर्तन से एवं संपूर्णत्व-भंग से विपुल संख्यक विकृत भेद बनाने का विधान दिया है। 'रत्नाकर' के टीकाकारों ने भी कहा है कि ग्रह-अंश-परिवर्तन से शुद्धा जातियों के विकृत भेद बना लिए जाएं। सामवेद-संभूत तथा ब्रह्मप्रोक्त इन अष्टादश जाति-गीतों में ही यदि जातिगान सीमित हो तो फिर इन विकृत भेदों को कहाँ स्थान मिलेगा ? इनकी रचना कौन करेगा ? नाट्य-प्रयोग में ऐसी अनेक रचनाएं क्या नहीं हुई होंगी ? यदि ये विकृत भेद प्रयोगगत नहीं थे तो क्या नाट्यान्तर्गत स्थायी, संचारी भावों की अभिव्यक्ति तथा नवरसादि की सिद्धि इन अष्टादश ब्रह्मप्रोक्त गीतों में ही परिपूर्ण होती थी ?

'शुद्धा' या संसर्गजा जातियों में क्या एक-एक ही गीत-रचना थी ? क्या इनमें उल्लिखित ग्रह अंशादि नियमों के अन्तर्गत अन्य रचना को कोई स्थान नहीं था ? अथवा अन्य रचना करने का निषेध था ? क्या शार्ङ्गदेव के काल में जाति गान का ऐसा ही स्वरूप रहा होगा ? यदि ऐसा ही हो तो भरत का वचन "यत्किंचिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्" कैसे सार्थक समझा जाए ?

हम स्वानुभव से जानते हैं कि गुरु अपनी परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने विद्यार्थियों से आग्रहपूर्वक प्रबन्धगीतिगत स्वरावली का यथावत् परिपालन कराते आए हैं। प्रमादवश, अनभ्यासवश, विस्मृतिवश, अनवधानवश अथवा अवज्ञावश यदि विद्यार्थी से उसमें किंचित् भी परिवर्तन का अपराध हो जाए तो वह अक्षम्य माना जाता रहा है। क्या इन गीतों को अपरिवर्तनीय कहने के पीछे कोई ऐसी ही भावना तो सन्निहित नहीं रही होगी ?

शार्ङ्गदेव द्वारा इन पदों को वेद की भांति अपरिवर्तनशील कहने का क्या तात्पर्य है ? इन्हें अपरिवर्तनशील क्यों स्वीकार किया जाए ? हम जानते हैं कि वेद के मन्त्रों या ऋचाओं में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के किंचित् परिवर्तन मात्र से अर्थ के अनर्थ हो जाते हैं। पातञ्जल महाभाष्य का निम्नोद्धृत वचन प्रसिद्ध ही है :—

दुष्ट शब्द स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

(पातञ्जल महाभाष्य, पस्पशाह्निक १-१-१)

अर्थात् स्वर संबंधी अथवा वर्णसंबन्धी दोष से युक्त (दुष्ट) शब्द जब मिथ्या (अयथार्थ) रूप से प्रयुक्त होता है, तब वह अपने (वास्तव) अर्थ को नहीं कह सकता अर्थात् उससे यथार्थ बोध नहीं होता। ऐसा 'दुष्ट' (दोषयुक्त) शब्द वाग्वज्र (वाणी रूपी वज्र) बन कर यजमान (प्रयोक्ता) का ही हनन करता है। जिस प्रकार स्वर के अपराध से 'इन्द्रशत्रु' ने किया था।

'इन्द्रशत्रु' की कथा इस श्लोक के भाष्य में इस प्रकार दी है :—

१२

पुरा किल विश्वरूपाख्ये त्वष्टुः पुत्रे इन्द्रेण हते कुपितस्त्वष्टा इन्द्रस्य हन्तारं हिंसितारमिच्छन्। इन्द्रस्याभिचारी यज्ञेनागच्छत्तत्र 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इति मन्त्र ऊहितः। तत्रेन्द्रस्य शमयिता शातयिता वा भव—इति क्रियाशब्दोऽत्र शत्रुशब्द आदिष्टो न तु रूढिशब्दः, तत्पुरुषे हि बहुव्रीहितत्पुरुषयोरर्थभेदः। तत्रेन्द्राभिमत्रं सिद्धे सति 'इन्द्रस्य शत्रुर्भव, इत्यर्थे प्रतिपाद्येऽन्तोदात्ते प्रयोक्तव्ये आद्युदात्त ऋत्विजा प्रयुक्त इति—अर्थान्तराभिधानादिन्द्र एव वृत्रस्य शातयिता संपन्नः।

शतपथ ब्राह्मण में इसी कथा को इन शब्दों में कहा है —

यद् यद्ब्रवीदिन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति। तस्मादु हैनमिन्द्र एव जघानाथ यद्ध शश्वदवक्ष्यदिन्द्रस्य शत्रुर्वर्धस्वेति शश्वदु ह स एवेन्द्रमहनिष्यत् ॥

(शतपथ ब्राह्मण १. ६. ३. १०)

इस उद्धरण का तात्पर्य यह है कि इन्द्र ने जब त्वष्टा के विश्वरूप नामक पुत्र की हत्या कर दी तब त्वष्टा ने कुपित होकर 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इस मन्त्र के साथ यज्ञ किया और उसका प्रयोजन यही था कि इन्द्र के शत्रु की वृद्धि हो अर्थात् उक्त मन्त्र से वे इन्द्र के शत्रु की उत्पत्ति की कामना करते थे। किन्तु 'इन्द्र का शत्रु' इस प्रकार का अर्थ तत्पुरुष समास से ही निकल सकता था और इसी लिए 'इन्द्र शत्रु' को अन्तोदात्त रखना आवश्यक था, किन्तु ऋत्विक् ने 'आद्युदात्त' (आदि में उदात्त) प्रयोग किया। उससे तत्पुरुष के स्थान पर बहुव्रीहि समास का अर्थ हो गया 'इन्द्र शत्रु है जिसका'। इस स्वर अपराध के कारण इन्द्र का शत्रु तो उत्पन्न नहीं हुआ अपितु यज्ञ से जिस वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई उसे इन्द्र ने ही मार दिया। स्वर प्रयोग सम्यक् हुआ होता तो 'इन्द्र का शत्रु उत्पन्न हो (बढ़े)' ऐसा अर्थ निकला होता और यज्ञ से उत्पन्न वृत्र ने इन्द्र को मार दिया होता।

स्वर सम्बन्धी इस कठोर नियम-पालन की व्यवस्था के अतिरिक्त, हमें स्मरण है कि बाल्यकाल में संहिता के अध्ययन के समय केवल स्वर ही नहीं, अपितु वेदमन्त्रपाठ के समय श्वास की प्रक्रिया पर भी अपेक्षित संतुलन रखने का गुरु की ओर से आग्रह रहता था। जहाँ-तहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक श्वास लेना और छोड़ना ग्राह्य नहीं था, क्योंकि श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया अनियमित होने से भी वेदार्थ में परिवर्तन होने का भय माना जाता था। इन सब कारणों से वेदमन्त्रों के शब्दोच्चार, स्वर और श्वास प्रक्रिया इन सबका नियमन नितान्त आवश्यक मानकर उनके विपरीत प्रयोग में विपरीत फल का दर्शन करना उस प्रकार के प्रयोग को पापरूप समझना और उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान देना इनमें कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता। किन्तु इन जातिगत पदों में, उनके स्वरों में या पदों के स्वर संयोगों को अपरिवर्तनशील मानने में क्या उसी प्रकार अर्थ का अनर्थ होने की संभावना है? इन प्रस्तार-गीतों में पदों का जहाँ-जहाँ यति भंग हुआ है, वह क्या दोषार्ह नहीं है? जातिगान के अन्तर्गत इन पदों को सनातन, अपौरुषेय या अनादि तो नहीं कह सकते। ऐसी अवस्था में शार्ङ्गदेव का यह निर्देश कि "ऋक्, यजु, साम की भाँति इन जातिगत पदों को भी अन्यथा नहीं किया जाना चाहिए" किस रूप में ग्राह्य माना जाए?

शार्ङ्गदेव के परवर्ती ग्रन्थकार

'रत्नाकर' के परवर्ती ग्रन्थकारों में रामामात्य (स्वरमेलकलानिधि), शुभंकर (संगीतदामोदर), श्रीकण्ठ (रसकौमुदी) सोमनाथ (रागविबोध), अहोबल (संगीतपारिजात), श्रीनिवास (रागतत्त्वविबोध), हृदयनारायणदेव (हृदयकौतुक), व्यंकटमखी (चतुर्दण्डिप्रकाशिका), दामोदर पण्डित (संगीत दर्पण) लोचन (रागतरंगिणी), पुण्डरीक विट्ठल (सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमञ्जरी) आदि ने जाति प्रकरण को अपने ग्रन्थों में समाविष्ट नहीं किया है।

जिन जिन ग्रन्थकारों ने 'जाति' का उल्लेख आवश्यक समझा है वे हैं—नान्यदेव (भारतभाष्य), * कुम्भा राणा (संगीतराज) रघुनाथ भूप (संगीत सुधा) और तुलजाधिप (संगीतसारामृत)। इन सब ग्रन्थकारों ने जाति

* नान्यदेव 'रत्नाकर' के पूर्ववर्ती, परवर्ती या समकालीन हैं, इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है।

निरूपण में प्राय शार्ङ्गदेव का ही अनुसरण किया है। उन्होंने जातियों के लक्षण, उनकी मूर्च्छना और 'तत्र भवन्त्यलाटादि' प्रस्तारों' पर 'रत्नाकर' में से प्राय ज्यों के त्यों उतार लिये हैं। केवल नान्यदेव इसके अपवाद हैं और उनकी विशेषता यही है कि उन्होंने जातियों की मूर्च्छना नहीं कही हैं। जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख सर्वप्रथम मतंग में मिलता है और उसी का अविकल अनुसरण शार्ङ्गदेव ने किया है, यह हम देख ही चुके हैं। ऐसी अवस्था में शार्ङ्गदेव के काल के समीपवर्ती नान्यदेव का जातियों की मूर्च्छना न कहना काफी महत्त्व रखता है। इससे यह संकेत मिलता है कि संभवत इस सम्बन्ध में मतंग से भिन्न कोई विचारधारा भी प्रचलित रही होगी।

शार्ङ्गदेव के परवर्ती संगीत-ग्रन्थों में जाति प्रकरण की उपर्युक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'रत्नाकर' के पश्चात् इस विषय का विकास समाप्तप्राय हो गया था और इससे सम्बन्धित विचारधारा अवरुद्ध हो गई थी। जाति की रागों की जननी के रूप में जो प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह लुप्त हो गई और रागों को जाति से विच्छिन्न करके स्वतन्त्र रूप से निरूपित किया जाने लगा। इसीलिए मध्ययुग के ग्रन्थकारों ने या तो जाति विषय को अछूता ही छोड़ दिया और या फिर गतानुगतिक भाव से 'रत्नाकर' का अनुकरण करने में ही सन्तोष मान लिया।

उपसंहार

'संगीतरत्नाकर' के पश्चात् मध्ययुग से लेकर आधुनिक युग तक जिन ग्रन्थकारों ने 'जाति'—विषय का अपने ग्रन्थों में समावेश अथवा उल्लेखमात्र किया है, वे दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं—एक वे जिन्होंने केवल गतानुगतिक भाव से संगीत रत्नाकर अथवा अन्य प्राचीन ग्रन्थकारों के प्राय अक्षरश उद्धरण अथवा भाषान्तर प्रस्तुत किये हैं और दूसरे वे जिन्होंने इस विषय को नष्टप्राय' 'पुराण तथा 'स्पष्टीकरण के अयोग्य' कह कर इसका अध्ययन, चिन्तन, मनन अनावश्यक ठहराया है। पहली श्रेणी में प्राचीन शास्त्रों के प्रति 'लौकिक' श्रद्धा है, किन्तु द्वितीय श्रेणी में उसका अभाव है। हमारा यत्न इन दोनों से भिन्न श्रेणी का है जिसमें प्राचीन शास्त्रोक्त जाति-व्यवस्था के प्रति शास्त्रीय श्रद्धा रखते हुए विद्यार्थियों तथा जिज्ञासुओं में वही भाव प्रसारित करने का उद्देश्य निहित है। भरत, मतंग अथवा शार्ङ्गदेव के जाति प्रतिपादन को उद्धृत कर देना अथवा उसका भाषान्तर मात्र प्रस्तुत करना सुगम मार्ग अवश्य है किन्तु उससे उपर्युक्त उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। अत इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त जो यत्न किये गए, जो कुछ जैसा भी बन पड़ा, वही यहाँ जाति प्रकरण में प्रस्तुत किया गया है।

'इदमित्थ' कह कर हमने अपने यत्न की यहीं 'इति' नहीं की है। हम मानते हैं कि इस विषय में बहुत सी अन्य बातें विचारणीय हैं। उदाहरणार्थ आन्ध्री, रक्तगान्धारी ('गान्धार' देश से संबन्धित ?) गान्धारोदीच्यवा, षड्जोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा में 'उदीच्यवा' का उत्तरदिशा से संबन्ध। ? इस प्रकार कुछ जाति-नाम विशिष्ट देश प्रदेशों से संबन्ध रखते हैं। इसका क्या तात्पर्य रहा होगा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है, जिस पर विचार करना अभी शेष है। तद्वत् 'कैशिकी' अथवा 'षड्जकैशिकी' इन जाति नामों में 'कैशिक' का समावेश क्या उन उन जातियों में कैशिक स्वर-साधारण का प्रयोग सूचित करता है ? यह और ऐसे कई एक अन्य प्रश्न विशेष रूप से विचारणीय हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि भरत का 'यत्किञ्चिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्' यह वचन आज भी हर दृष्टि से, हर पहलू से क्रियागत रूप से पूर्णतया सार्थक हो सकता है। जिस प्रकार भरतोक्त ग्राम व्यवस्था के साथ आज के शुद्ध या प्राकृतिक ग्राम का संबन्ध स्थापित हो सका है, उसी प्रकार भरतोक्त जाति व्यवस्था के साथ आज की राग-पद्धति का अविच्छिन्न संबन्ध भी अवश्य स्थापित हो सकेगा। इस विषय पर अधिक विचार प्रणव भारती' की द्वितीय वीणा (रागशास्त्र) में किया जाएगा।

राग और राग वर्गीकरण

भरत मतंग-शार्ङ्गदेवोक्त जाति विषय को हमने विभिन्न दृष्टिकोण से देखा। अब 'राग' और 'राग'-वर्गीकरण के विषय पर विचार करना क्रमप्राप्त है।

भरत-काल में रागों का अस्तित्व था या नहीं, इस विषय पर हम पृ० २-४ पर चर्चा कर चुके हैं। किन्तु यहाँ 'राग' के इतिहास पर कुछ विशद विचार अपेक्षित है। भरत और मतंग के अतिरिक्त इस प्रसंग में नारद का नाम उल्लेखनीय है। नारद-प्रणीत नारदीय शिक्षा के उस उल्लेख पर यहाँ हमें विशेष विचार करना है जिसमें प्राप्त संज्ञाओं को अधिकांश लेखकों ने 'ग्रामराग' के साथ संबद्ध किया है। ये सब संज्ञाएँ निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त होती हैं :—

> ऋषभोऽधिपतः षड्जस्तो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र।
> निपतति मध्यमरागे (ग्रामे ?) तन्निषादं षाड्वं विद्यात्॥
> यदि पञ्चमो विरमते गान्धारश्चान्तरस्वरो भवति।
> ऋषभो निषादसहितस्तं पञ्चममीदृशं विद्यात्॥
> गान्धारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः।
> धैवतस्य च दौर्बल्यात् मध्यमग्राम उच्यते॥
> ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत्।
> धैवतः कम्पितो यत्र षड्जग्रामं तु निर्दिशेत्॥
> अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिर्यत्र दृश्यते।
> तं तु साधारितं विद्यात् पञ्चमस्थं तु कैशिकम्॥
> कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः।
> यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः॥
> काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु।
> कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसंभवम्॥ (नारदीय शिक्षा)

इन श्लोकों में से केवल प्रथम श्लोक में ही 'मध्यमरागे' इस पद में 'राग' शब्द का प्रयोग मिलता है। किन्तु, यह पद भी सन्देहास्पद है, क्योंकि 'तन्निषादं षाड्वं विद्यात्' (उसे निषाद-षाडव समझना चाहिए) इस वाक्यांश से स्पष्ट है कि नारद मुनि को अभिप्रेत संज्ञा या निरूप्य पद 'निषाद-षाडव' है, न कि 'मध्यमराग'। इसीलिए हमने 'मध्यमरागे' के स्थान पर 'मध्यमग्रामे' पाठ प्रस्तुत किया है। नारदीय शिक्षा के अन्य किसी श्लोक में या अन्य किसी भी पूर्वापर-संदर्भ में 'राग' का उल्लेख नहीं है। फिर भी अनेक आधुनिक लेखकों ने इन संज्ञाओं को 'ग्रामराग' मान लिया है, क्योंकि इनका भरत के ध्रुवा-प्रकरणोक्त संज्ञाओं से साम्य है और क्योंकि मतंग ने भरतोक्त संज्ञाओं को शुद्धा गीति के अन्तर्गत शुद्ध ग्राम-रागों से संबद्ध कर दिया है। नारदीय शिक्षा, भरत के नाट्यशास्त्र और मतंग के बृहद्देशी में जिन मिलती-जुलती संज्ञाओं का उल्लेख मिलता है, वे नीचे एक साथ दी जा रही हैं।

नारदीय शिक्षा (नारद)	नाट्यशास्त्र (भरत)	बृहद्देशी (मतंग)
१. निषाद षाडव	१. मध्यमग्राम	१. मध्यमग्राम
२. पञ्चम	२ षड्जग्राम	२. षड्जग्राम
३. मध्यमग्राम	३. साधारित	३. साधारित
४. षड्जग्राम	४. कैशिक मध्यम (अथवा पंचम)	४. पञ्चम
५. कैशिक	५. कैशिक	५. कैशिक
६. कैशिक मध्यम		६. षाडव
७. साधारित		७. कैशिकमध्यम

भरतोक्त संज्ञाओं का 'राग' के साथ संबन्ध जोड़ना उचित नहीं है, यह हम ऊपर पृ० २-३ पर दिखा चुके हैं। नारदीय शिक्षा में दी हुई उपर्युक्त सात संज्ञाओं का भी 'राग' के साथ कोई स्पष्ट संबन्ध नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्था में यह विचारणीय है कि इन नामों द्वारा किस विषय का निरूपण ग्रन्थकार को अभिप्रेत है? नारदीय शिक्षा का विषय 'गान्धर्वगान' नहीं, अपितु 'सामगान' है। वेद के छः अंगों में से शिक्षा का संबन्ध वर्णोच्चार तथा वैदिक स्वर-पद्धति से है। नारदीय शिक्षा में वर्णोच्चार के अतिरिक्त वैदिक स्वरों का, गान्धर्वगान में कहे हुए श्रुति-प्रामाणिक व्यवस्था के साथ संबन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है। इसी प्रसंग में ऊपर की संज्ञाओं की सार्थकता समझी जा सकती है। इस अनुमान को इन संज्ञाओं से ही स्वतः पुष्टि मिलती है। यथा—'षड्जग्राम', 'मध्यमग्राम' एक निश्चित श्रुति-स्वर-व्यवस्था के द्योतक हैं। 'साधारित' (अन्तर काकलीयुक्त) 'कैशिक' आदि नाम स्वरों की अवस्था विशेष के सूचक हैं। तद्वत् 'षाडव' संज्ञा छः स्वरों के विशेष सन्निवेश की परिचायक है। हाँ, यह सत्य है कि इन संज्ञाओं के जो लक्षण नारदीय शिक्षा में दिये गए हैं, उनमें विशिष्ट स्वर-सन्निवेशों की ओर संकेत किया गया हो, ऐसा अवश्य प्रतीत होता है। किन्तु उनमें 'राग' के लक्षणों की पूर्णता प्राप्त नहीं होती। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साम-संगीत में प्रयुक्त स्वर-सन्निवेशों को निर्दिशत करने के लिए ये संज्ञाएं प्रयुक्त की गई होंगी, किन्तु इतने मात्र से उन्हें रागवाची नहीं माना जा सकता, क्योंकि उनके लक्षणों में उस विकसित अवस्था या पूर्णता के दर्शन नहीं होते जो दशविध रागलक्षणों में हमें परंपरा प्राप्त है।

नारदीय शिक्षा में 'राग' का स्पष्ट उल्लेख नहीं ही है, यह हमने देखा। 'नारदीय शिक्षा' के पश्चात् उपर्युक्त सात संज्ञाओं का 'कुडुमलाई' (दक्षिण के पेदाकोटा राज्यान्तर्गत) की चट्टानों पर खुदे हुए स्वरागम (स्वर-प्रस्तार) में उल्लेख मिलता है। उक्त शिलालेख का काल सातवीं शताब्दी ई० के आस पास निश्चित किया गया है। यहाँ भी उपर्युक्त सात संज्ञाओं के साथ 'राग' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं है। इसलिए 'राग' के संबन्ध में जो अस्पष्टता नारदीय शिक्षा के संदर्भ में हम देख चुके हैं, वही इस शिलालेख में भी सामने आती है। साथ ही यह प्रश्न भी विचारणीय है कि नारदीय शिक्षा का विषय तो साम संगीत था, किन्तु इस शिलालेख का विषय यदि साम-संगीत न होकर गान्धर्व-संगीत रहा हो तो उसमें नारदीय शिक्षा की संज्ञाओं की क्या और कैसी सार्थकता रही होगी? संभव है अनुसन्धान द्वारा इस प्रश्न पर कभी प्रकाश पड़ सकेगा। जिस प्रकार विद्वानों ने नारदीय शिक्षा में रागों के अस्तित्व का अनुमान किया है उसी प्रकार उन्होंने इन शिलालेखों में भी उन्हीं सात 'रागों (?)' के स्वर-प्रस्तार का वर्णन किया है। किन्तु 'राग' में जिन लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश अपेक्षित हैं, उनका इन शिलालेखों में अभाव होने से हम इनका 'राग' के साथ स्पष्ट संबन्ध स्वीकार करने में असमर्थ हैं। मतंग का 'बृहद्देशी' इस शिलालेख का प्रायः समकालीन माना जा सकता है। अतः यह भी अनुसन्धान का विषय है कि 'बृहद्देशी' में उल्लिखित राग संज्ञाओं के साथ उक्त शिलालेख के 'स्वरागम' का कैसा और कितना संबन्ध है।

ऊपर हमने देखा कि नारदीय शिक्षा में रागों का उल्लेख स्वीकार करके 'राग'-व्यवस्था को भरतकाल से भी पूर्ववर्ती सिद्ध करने का जो यत्न कुछ लेखकों ने किया है, वह वास्तविक तथ्यों से पुष्ट नहीं होता। भरत के नाट्यशास्त्र में भी 'राग' का उल्लेख नहीं है, यह हम ऊपर पृ० २४ पर कह चुके हैं*। अतः यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि 'राग' का सुस्पष्ट उल्लेख अधुना उपलब्ध ग्रन्थों में से सर्वप्रथम मतंग के 'बृहद्देशी' में ही प्राप्त होता है।

---

* सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ स्व० प्रो० पी० आर० भण्डारकर भी भरत के ध्रुवाप्रकरणोक्त श्लोकों के सम्बन्ध में प्रायः उसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, जिसे हम ऊपर पृ० २-४ पर उल्लिखित कर चुके हैं। यथा :—

In the first place let it be noted that only five names, likely to be understood as being those of the above mentioned Rāgas occur in these verses. Secondly, the Manuscript A (3) reads Madhyama for Pancama which further reduces the amber for the Manuscript, A I may remark, is on the whole more trustworthy than those on which the printed edition is

मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्रामराग और भाषाराग अथवा देशी राग इन दो विभागों में किया है। विपुल संख्या में विस्तार, विकास और प्रचलन हुए बिना वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं होती। मतंग की राग-वर्गीकरण व्यवस्था को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उनके काल तक रागों का विकास, विपुल संख्या में विस्तार और प्रचलन हो चुका था। मतंग से पूर्व कुछ शताब्दियाँ राग के इस विकास क्रम में अवश्य व्यतीत हुई होंगी। किन्तु उस काल का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसलिए आज मतंग के 'बृहद्देशी' में राग-व्यवस्था की जो प्रथम उपलब्धि होती है, वह पर्याप्त रूप से विकसित और विस्तृत है।

'राग' के स्पष्ट उल्लेख के साथ-साथ मतंग के 'बृहद्देशी' में राग-वर्गीकरण का भी विस्तृत विवरण मिलता है। 'वर्गीकरण' के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि नाट्य प्रयोग में पूर्वरंग, भिन्न २ प्रवेश, पञ्चसन्धियाँ इत्यादि के प्रसंग में जिन जिन स्वर सन्निवेशों को प्रयोग में लाया जाता था, उन सबका वर्गीकरण भरत ने १८ जातियों में किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जातियाँ यथोचित स्वर सन्निवेशों के वर्गीकरण की सर्वप्रथम व्यवस्था की प्रतीक हैं।

मतंग ने अपने रागों का सात गीतियों के अन्तर्गत विभाजन किया है। यथा—शुद्धा, भिन्ना, गौडी, राग, साधारणी, भाषा और विभाषा। उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों में से याष्टिक, दुर्गाशक्ति, शार्दूल और भरत के मत का भी इस प्रसंग में उल्लेख किया है। इन सब का मतोल्लेख मतंग ने जिस प्रकार किया है, वह नीचे एक साथ प्रस्तुत है —

याष्टिक	दुर्गाशक्ति	शार्दूल	भरत
भाषा, विभाषा और अन्तरभाषा	शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा और साधारणी*	भाषागीति	मागधी, अर्धमागधी, संभाविता और पृथुला

भरत की चार गीतियों के लिये यह उल्लेखनीय है कि वे विभिन्न गेय छन्दों के क्रमागत अक्षर-विन्यास से सम्बन्ध रखती हैं। यों तो 'गीति' संज्ञा से 'गान'-क्रिया के साथ सम्बन्ध जान पड़ता है किन्तु भरतोक्त 'गीति' का स्वर प्रयोग या स्वर विन्यास के साथ सम्बन्ध नहीं है, अपितु गान क्रिया में प्रयुक्त पदों या पद्यों की वर्ण संघटना से सम्बन्ध है। मतंग ने भी अपने 'बृहद्देशी' में इन चार (भरतोक्त) गीतियों का छन्द-अक्षर के प्रकरण में पृथक रूप से उल्लेख किया है। उस प्रकरण में गान क्रिया का कोई प्रसंग नहीं है। भरत और मतंग के निम्नांकित वचनों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

based Thirdly, it must be remembered that none of these names occur as belonging to Ragas in the special chapters of the work treating of music All this at once makes me think that the names, as used here do not belong to Rāgas at all and this conjecture is borne out by the explicit statement contained in the first sloka which Kallinatha has not quoted From this sloka it is evident that the rules in the following verses are not for the use of Rāgas of these names but for the two Gramas and the Sadhārana mentioned in an earlier part of the work Thus music in the Madhyamagrāma is to be used in the Mukha portion of a Nāṭaka and again in Vimarsa (or Avamarsa) music in the Sadjagrāma in the Pratimukha music in the Sadhārana (Sadhāritam is thus a mistake for Sadhāranam) in the Garbha and music in the Kaiśiki in the Nirvahana It is thus clear that the seven Ragas of this inscription did not exist in the time of the Bhāratiya Naṭya Śāstra' (Kudumalai Inscription on Music by Rao Bahadur P R Bhandarkar, Epigraphia Indica Vol XII (1914) p 266)

* दुर्गशक्ति की पाँच गीतियों का ही 'संगीत रत्नाकर' में ग्रहण किया गया है।

भरत

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गीतीनामपि लक्षणम् ।
प्रथमा मागधी ज्ञेया द्वितीया चार्धमागधी ॥
संभाविता तृतीया च चतुर्थी पृथुला स्मृता ।
भिन्नवृत्तिप्रगीता (विनिवृत्तप्रवृत्ता) या सा
गीतिर्मागधी मता ॥
अर्धकालनिवृत्ता च विज्ञेया त्वर्धमागधी ।
संभाविता च विज्ञेया गुर्वक्षरसमन्विता ॥
लघ्वक्षरकृता नित्यं पृथुला संप्रकीर्तिता ॥

(ना. शा. काशी संस्करण २९।७६-७९.
बम्बई संस्करण २९।३८-४०

मतंग

अथ गीति प्रवक्ष्यामि छन्दोऽक्षर······ ···· ।
(संभाविता) च विज्ञेया गुर्वक्षरसमन्विता ॥
चित्रे चैकले ताले विज्ञेया गीतिर्मागधी ।
वार्तिके द्विकला ज्ञेया गीति संभाविता बुधैः ॥
दक्षिणे पृथुला गीतिस्ताले ज्ञेया चतुष्कले ।
अनेनैव विधानेन गातव्या गीतयो बुधैः ॥
द्विगुर्वत्रिनिवृत्ता च चित्रे गीतिस्तु मागधी ।
लघुप्लुतकृता चैव तदर्धं चार्धमागधी ॥
संभाविता गुरुवृत्तो पृथुला दक्षिणे लघु ॥

(बृ० १७३ १७७ पृ० ४९-५०)

इन उद्धरणों का संक्षेप में यही भावार्थ॥ है कि गीत के 'पदों' (शब्दों) में गुरु अक्षरों की संघटना से 'संभाविता' गीति और लघु अक्षरों की संघटना से 'पृथुला' गीति की निष्पत्ति होती है। 'मागधी' और 'अर्धमागधी' गीतियों का संबन्ध गीत के पदों (शब्दों) की आवृत्ति (पुनरुक्ति) की प्रक्रिया के साथ है। शार्ङ्गदेव ने भी इन चार गीतियों का इसी सदर्भ में निरूपण किया है। और राग-वर्गीकरण के लिए गृहीत पाँच गीतियों (शुद्धा भिन्ना आदि) से इन्हें पृथक् रखा है। कल्लिनाथ ने भी इन दो प्रकार की गीतियों की भिन्नता निम्नोद्धृत शब्दों में कही है :—

ननु पूर्वोक्ताभ्यो मागध्यादिगीतिभ्योऽधुनोक्तानां शुद्धादिगीतीनां को भेद इति चेत्, उच्यते। मागध्यादयः प्राधान्येन पदतालाश्रिताः, शुद्धाऽऽदयस्तु, प्राधान्येन स्वराश्रिताः ·· ·· ।

(स० र० २।१।२ पर कलानिधि टीका)।

अर्थात् यदि यह प्रश्न किया जाए कि मागधी आदि गीतियों से शुद्धा आदि गीतियाँ किस प्रकार भिन्न हैं, तो उसका उत्तर यही है कि मागधी आदि प्रधानरूप से 'पदताल' के आश्रित हैं और शुद्धा आदि प्रधानरूप से स्वर के आश्रित हैं।

मतङ्ग ने जिन सात गीतियों के अन्तर्गत राग-वर्गीकरण किया है उनके जो लक्षण दिये हैं उनसे भी यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि इन गीतियों का मुख्य संबन्ध स्वर प्रयोग से ही है। यथा —

मन्द्रामन्द्रैश्च तारैश्च ऋजुभिर्ललितैः समैः । स्वरैश्च श्रुतिभिः पूर्णा चोक्षा गीतिरुदाहृता ॥
सूक्ष्मैश्च प्रचलैर्वक्रैरुल्लासितप्रसारितैः । ललितैस्तारमन्द्रैश्च भिन्ना गीतिरुदाहृता ॥
प्रयोगैश्च द्रुतैः कार्या मिश्रामिश्रैश्च मार्दवैः (? । ईषत्कम्पितै निश्चिह्नललितैस्तारघोषिते ॥
गौन्द्यामे खण्डखण्डैश्च भिन्ना गीतिरुदाहृता* ।
†ओहाटललितैश्चापि अयो गीतारव शोभना ।

॥ इन उद्धरणों में 'वृत्ति' 'दक्षिण' 'चित्र' आदि जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है उनका स्पष्टीकरण यहाँ प्रासंगिक नहीं है। इसका विशद स्पष्टीकरण भरत-भारती (द्वितीय भाग) में किया जायगा।

*विषय प्रतिपादन की सुगमता की दृष्टि से, मुद्रित क्रम में यहाँ कुछ परिवर्तन करना पड़ा है।

†'ओहाट' से संभवत 'ओहाटी' संबन्धी स्वर प्रयोग से तात्पर्य है। 'ओहाटी' या 'ओहाटी' या 'ओहासी' का लक्षण मतंग ने इस प्रकार दिया है :—

हारोरारयोर्योगादोहाटी परिकीर्तिता। त्रिधुर्य हृदये न्यस्य ओहाटी मद्रका भवेत् ॥
द्रुता द्रुततरा कार्या स्वरकम्पेन पीडिता। ओहाटी कथिता चापि दृष्टादृष्टेन कर्मणा ॥

समास्वरा समा चैव गाधारोहावरोहिणी । अविश्रामेण त्रिस्थाने गौडी गीतिरुदाहृता ॥
ललितैर्गमकैश्चित्रैः प्रसन्नैरौरसैः समैः । रञ्जकैः स्वरसन्दर्भैः रागगीतिरुदाहृता ॥
चतुर्णामपि वर्णानां यो रागः शोभनो भवेत् । स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृताः ॥
ऋजुभिर्ललितैः किञ्चित् सूक्ष्मासूक्ष्मैश्च सुस्वरैः । ईषद्द्रुतैश्च कर्तव्या मृदुभिर्ललितैस्तथा ॥
प्रयोगैर्मन्दगैः सूक्ष्मैः काकुमिश्रैः सुयोजितैः । स्वरैः साधारणा गीतिर्गीतिज्ञैः समुदाहृता ॥
एवं साधारणा ज्ञेया सर्वगीतिसमाश्रया ।
प्रयोगैर्गाढजैः श्लक्ष्णैः काकुरक्तैः सुयोजितैः । कम्पितैः कोमलैर्दीप्तैर्मतिवोकाकुनान्वितैः ॥
ललितैः सुकुमारैश्च प्रयोगैश्च सुमध्यतैः । भाषागीतिः समाख्याता एषा गीतिविचक्षणैः ॥
यथा वै रज्यते लोकस्तथा वै संप्रयुज्यते । ललितैर्वक्रभिर्दीप्तैः कम्पितैरौरसैः समैः ॥
तारातितारैर्मन्द्रगैर्मध्ये मध्यमदीपितैः । गमकैः श्रोत्रसुखदैर्ललितैस्तु यदृच्छया ॥
विभाषागीतिस्तु संयोज्या यथा लोकोऽनुरज्यते ॥ (बृ० पृ० ८२-८४)

इस उद्धरण के संक्षिप्त भावार्थ के अनुसार सात गीतियों के लक्षण इस प्रकार हैं :—

१—चोक्षा अथवा शुद्धा गीति—मन्द्र, मध्य, तार स्थानों में ऋजु (सरल) ललित, सम, पूर्ण (श्रुतियों से पूर्ण) स्वरों का प्रयोग।

२—भिन्ना गीति—सूक्ष्म, कम्पित, वक्र, ललित, तार, मन्द्र, द्रुत, ईषत्कम्पित, तारदीपित, उच्छ्वास-सह, खण्ड-खण्ड में स्वरों का प्रयोग।

३—गौड़ी गीति—ओहाटी (गमक) सह, ललित, सम, विश्रामरहित स्वरों का प्रयोग।

४—रागगीति—ललित, गमकयुक्त, प्रसन्न, रञ्जक, स्वरसन्दर्भों का प्रयोग।

५—साधारणगीति—सब गीतियों के लक्षणों के एकत्र समावेश से निष्पन्न।

६—भाषा गीति—श्लक्ष्ण, काकु सहित, सुयोजित, कम्पित, कोमल, दीप्त, ललित, सुकुमार स्वर प्रयोग। जिस प्रकार लोकरञ्जन हो उसी प्रकार इस गीति का प्रयोग किया जाता है।

७—विभाषा गीति—ललित, दीप्त, कम्पित, सम, तारातितार, मन्द्रग, मध्यम दीपित, श्रोत्रसुखद गमक से युक्त। इसमें लोकरञ्जन की दृष्टि से स्वेच्छानुसार इन स्वर प्रयोगों का यथास्थान विनियोग किया जा सकता है।

प्रश्न हो सकता है कि प्राचीनों द्वारा भिन्न २ गीतियों के निरूपण का तथा उनके अन्तर्गत राग विभाजन का क्या तात्पर्य है? क्या इससे यह समझा जाए कि रस-भाव की दृष्टि से भिन्न २ रागों का उनके अनुकूल गमकादि स्वरप्रयोग तथा विलम्बित मध्य द्रुत आदि लयप्रयोग-युक्त भिन्न २ गायनवादन शैलियों में प्रयोग करने का विधान है? मतंग ने रागों का गीतियों के अनुसार जो वर्गीकरण किया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में भिन्न २ रागों का भिन्न २ लयों,

---

त्रिस्थानकरणैर्युक्ता स्व(त्रि)स्थानचलनाकुला । चतुर्विधा तथोहाटी कर्तव्या गेयवेदिभिः ॥
(बृ० पृ० ८३)

अर्थात् हुंकार और उकार के योग से 'ओहाटी' (गमक विशेष) निष्पन्न होती है। ठोडी को हृदय में (गले के नीचे) लगाकर मन्द्र स्थान में 'ओहाटी' का प्रयोग हो सकता है। मन्द्र, मध्य, तार तीनों स्थानों से 'ओहाटी' का सम्बन्ध है। उसमें द्रुत और द्रुततर लय में स्वरकम्प का प्रयोग रहता है। यह ओहाटी चार प्रकार की होती है। (इस उद्धरण का पाठ 'संगीत रत्नाकर' २।१।५ की 'सुधाकर' टीका में उद्धृत अंश के पाठ के अनुसार शुद्ध किया गया है)।

भिन्न २ गमकों, भिन्न स्थानों (सप्तकों) और भिन्न उच्चार—प्रकारों से प्रयोग हुआ करता था। विभिन्न रागों की इसी प्रयोगगत भिन्नता अथवा विविधता का शास्त्रीय निरूपण गीतियों में किया गया है।

उपर्युक्त वैविध्य के कुछ अवशेष आज भी हमारी राग-परम्परा में विद्यमान हैं, यद्यपि गीतियों के रूप में उसके शास्त्रीय निरूपण का प्रत्यक्ष प्रयोग के साथ सम्बन्ध हम भूल बैठे हैं। उदाहरण के लिए कल्याण, झिंझोटी, भैरवी, काफी जैसे रागों में स्वरों का सीधा, सम प्रयोग शुद्धा गीति के अन्तर्गत समझा जा सकता है; तद्वत् दरबारी, मल्हार, पूरिया जैसे रागों में मन्द्र-मध्य स्थान में मन्द गति में गमकयुक्त प्रयोग का गौड़ी गीति के साथ संबन्ध जान पड़ता है; बहार, जैजैवन्ती, भैरव, देसी आदि रागों में स्वरों के सूक्ष्म और वक्र प्रयोग के बाहुल्य में भिन्ना गीति का अस्तित्व दिखाई देता है; इसी प्रकार अडाणा, सोहनी जैसे तारव्याप्ति और त्वरित गति वाले रागों में 'वेसरा' (वेगस्वरा) गीति का स्पष्ट दर्शन होता है; तद्वत् सरल, वक्र, गमकयुक्त त्वरितगतियुक्त—इन सब प्रकार के स्वर-प्रयोगों का मिश्रण तो आज के अधिकांश रागों में विपुल मात्रा में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए मारुविहाग, भूपाली, हमीर, केदार, आसावरी आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

हमारे आज के राग-प्रयोग में 'गीति'-परंपरा के अल्प अवशेष प्राप्त होने पर भी यह निःसंदेह कहना पड़ता है कि आज हम अधिकांश रागों को एक ही ढर्रे से, एक ही विस्तार-क्रम से गाते बजाते हैं। आज हम रागों की प्रकृति, रस, स्वरान्तराल, स्वरोच्चार, स्वाभाविक गति की ओर न देखते हुए प्रायः एक ही शैली से प्रत्येक में विलम्बित आलाप, बहलावा, बोलतान, तान का प्रयोग और विलम्बित, मध्य, द्रुत सभी लयों का सञ्चार करते हैं। इस प्रकार रस-रंग की जो क्षति होती है और भाव-भंग की जो अवस्था अस्तित्व में आती है, वह निःसंदेह शोचनीय है। उदाहरण के लिए हम कई स्थानों पर, कितनी ही बार यह निवेदन कर चुके हैं कि तोड़ी जैसी प्रौढ़ प्रोषितपतिका, विरहदग्धा, परम दुःखिता रागिनी में केवल गमकयुक्त ही नहीं, अपितु सभी प्रकार की तानों का प्रयोग रस-भाव की दृष्टि से निषिद्ध मानना चाहिये; उस विरहिणी के दुःख का आविर्भाव आलाप तक ही सीमित रखना चाहिए क्योंकि उसके विचारों की अभिव्यक्ति आलाप से ही हो सकती है; गमक की तानों में, द्रुतगति की तानों से या अन्य किसी प्रकार की तानों से नहीं हो सकती, बल्कि उनसे नितान्त विपरीत भाव खड़ा होगा। किन्तु इसके सरल आरोहावरोह के कारण इसमें इतनी तानबाजियाँ होती हैं कि इसके रस का संपूर्ण तिरोभाव हो जाता है। कई बार विदेशी लोग पूछते हैं कि तानों में सौ तोड़ी का कारण रस कहीं भी दिखाई नहीं देता। तब कहना पड़ता है कि रस-दृष्टि से इसमें तानों का प्रयोग नितान्त अग्राह्य होने पर भी हमें परेच्छा से अनिच्छा कर्म करना पड़ता है

हम जानते हैं कि कुछ श्रोता भी तानबाजी की ही दाद देवा करते हैं और उसी की सराहना के लिए तत्पर रहते हैं। परन्तु श्रोताओं की मनोभूमिका तैयार करने का कार्य भी तो कलाकार का ही है। किन्तु कलाकार को कौन पढ़े? प्रवाह में सब कोई बह जाते हैं और शास्त्रसम्मत 'नये' मार्ग को खोजने वाला, दिखाने वाला, प्रयुक्त करने वाला यदि जनता-पक्ष में अपना मत कहता है, समझाता है, करके दिखाता है, तब भी "कौन सुने कासे कहूँ ये दुख बतियाँ" वाली स्थिति सामने आती है। लोक को छोड़ने वाला विरला ही होता है। लोक-निन्दा से ऊंचा उठा हुआ वह विरला ही अपनी तप सिद्धि से सत्य-पथ का निदर्शन करेगा। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है—"अपूर्व अवसर एवुं क्यारे आवशे? क्यारे थाशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो, सर्वसंबन्धनुं बन्धन तीक्ष्ण छेदी ने बीचरशुं, काई महत्पुरुष ने पन्थ जो।" अस्तु।

उपर्युक्त चर्चा का सारांश यही है कि प्राचीन गीति-व्यवस्था में रागों के गमक-भेद, लय-भेद, स्थान-भेद आदि के वैज्ञानिक नियमन की जो विचारधारा निहित है, उसके अनुसार आज के लक्षणगत रागों का नियमन परम वाञ्छनीय है। ऐसे नियमन से ही हमारे संगीत का भाव-पक्ष पुष्ट और सबल हो सकता है।

मतंग ने ऊपर दी गई सात गीतियों में से प्रथम पाँच में ग्रामरागों का वर्गीकरण किया है और शेष दो (भाषा और विभाषा) में देशी रागों का। उनका यह वर्गीकरण परिशिष्ट में (क) तालिका में प्रस्तुत है।

शार्ङ्गदेव

शार्ङ्गदेव ने मतंग के सदृश पाँच गीतियों के अन्तर्गत ग्रामरागों का विभाजन किया है। किन्तु उन पाँच गीतियों के नाम दुर्गाशक्ति के मतानुसार शार्ङ्गदेव ने ग्रहण किये हैं। यथा:—शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा और साधारणी। मतंग ने वेसरा के स्थान पर रागगीति का ग्रहण किया है। शार्ङ्गदेव ने इन पाँच गीतियों के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

... ... शुद्धा स्यादवक्रैर्ललितैः स्वरैः। भिन्ना वक्रैः स्वरैः सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमकैर्युता॥
गाढैस्त्रिस्थानगमकैरोहाटीललितैः स्वरैः। हकारौकारयोगेन चाऽहन्यस्तै निबुके भवेत्॥
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तिनः। वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः॥
चतुर्गीतिगतं लक्ष्म श्रिता साधारणी मता। शुद्धाऽऽदिगीतियोगेन रागाः शुद्धादयो मताः॥

(सं० र० २।१।३,७)

अर्थात्—अवक्र (सरल), ललित स्वरों से शुद्धा; वक्र, सूक्ष्म, मधुर गमकों से युक्त स्वरों से भिन्ना; गाढ़, त्रिस्थान-व्यापी गमकों से युक्त, 'ओहाटी' सहित (हकार-औकार के योग से और गले के नीचे चिबुक लगाने से उत्पन्न) ललित स्वरों से गौडी; चारों वर्णों में वेगसहित स्वरों के रक्तिपूर्ण प्रयोग से वेसरा और चारों गीतियों के लक्षणों के मिश्रण से साधारणी गीति निष्पन्न होती है। 'शुद्धा' आदि गीतियों के योग से राग भी 'शुद्ध' आदि नाम पाते हैं।

देशी रागों के वर्गीकरण के लिए मतंग ने भाषा और विभाषा—इन दो गीतियों को ग्रहण किया है, यह हम देख चुके हैं। किन्तु शार्ङ्गदेव ने रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग इन चार विभागों में देशी रागों का वर्गीकरण किया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि शार्ङ्गदेव के 'भाषाङ्ग' का मतंग की 'भाषा' अथवा 'विभाषा' के साथ शब्द-साम्य होते हुए भी 'अर्थ-साम्य' नहीं है। मतंग ने 'भाषा' 'विभाषा' का संबन्ध सीधे ग्रामरागों के साथ जोड़ा है अर्थात् यह बताया है कि अमुक ग्राम-राग की इतनी 'भाषा' हैं और इतनी 'विभाषा' हैं। किन्तु शार्ङ्गदेव ने 'भाषाङ्ग' का इस प्रकार से ग्राम-रागों के साथ संबन्ध न जोड़कर उनका 'देशी' रागों के एक प्रकार विशेष के रूप में स्वतन्त्र निरूपण किया है। साथ ही उन्होंने मतंगोक्त 'भाषा विभाषा' का भी पृथक् निरूपण किया है। उनका राग—वर्गीकरण परिशिष्ट में तालिका (ख) के रूप में प्रस्तुत है।

मध्ययुग की राग-वर्गीकरण व्यवस्था

'संगीत रत्नाकर' के पश्चात् 'ग्राम-राग' और 'देशी-राग' वर्गीकरण के स्थान पर राग रागिनी और मेल-पद्धति के नाम से दो अन्य वर्गीकरण-पद्धतियाँ अस्तित्व में आईं; किन्तु 'सङ्गीत रत्नाकर' के परवर्ती काल का एक विराट् ग्रन्थ ऐसा भी प्राप्त है जिसमें 'ग्राम-राग' और 'देशी-राग' का ही मतंग शार्ङ्गदेवोक्त दोनों वर्गीकरण के लिए ग्रहण किया गया है। *यह ग्रन्थ है—कलसेन अथवा कुम्भा रचित 'सङ्गीतराज' जिसका काल पन्द्रहवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध माना जाता है* इस एक अपवाद को छोड़कर, मध्ययुग के प्रायः आरंभ में ही राग वर्गीकरण की दो धाराएँ अस्तित्व में आईं—एक की दृष्टि ने रागों के भाव स्वरूप को लक्ष्य करके उनमें पुरुष स्त्री त्व का दर्शन किया, उनके यौवन प्रौढत्व का अनुभव किया, यहाँ तक कि किसी-किसी ने तो नान्यतर नपुंसक रागों की भी भावुक कल्पना की और दूसरी की दृष्टि रागों के स्वररूप पर केन्द्रित रही। पहली धारा राग-रागिनी-वर्गीकरण के रूप में विकसित हुई और दूसरी धारा ने मेल-पद्धति का रूप धारण किया।

राग रागिनी-वर्गीकरण

दक्षिण को छोड़कर सारे भारत में राग और रागिणी का वर्गीकरण प्रचलित रहा और आज तक वह भारत के उन सभी प्रदेशों में पूर्ण मात्रा से जनमानस में घुला हुआ है। सामान्य ग्राम-जनता भी रागों को पुरुष और स्त्री के रूप में जानती है। भारत के कलाकारों के मन और हृदय पर इसकी इतनी जबर्दस्त पकड़ है कि वे अभी तक इसी के प्रभाव से प्रभावित हैं। पौराणिक कथाओं पर जिस श्रद्धा से

विश्वास किया जाता रहा है, कुछ उसी प्रकार राग और रागिणी देव-देवियों के सदृश भारतीय संस्कृति में पूजे जाते रहे हैं। बीसवीं सदी की पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति में दीक्षित जनता भले ही इस परम्परा को पौराणिक या कपोल-कल्पना मान लें, फिर भी कलाकार और सामाजिक राग और रागिनियों के भावपूर्ण अस्तित्व को स्वीकार करते रहे हैं, अभी भी कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में शब्दशास्त्र, शिल्प, संगीत, नृत्य, नाट्य आदि सभी विद्याओं और कलाओं का उद्गम दिव्य माना गया है और सभी ग्रंथकारों ने ग्रंथारम्भ में उन उन विषयों की उत्पत्ति की कथा इसी मान्यता के अनुसार कही है।

जिन-जिन कलाकारों अथवा कला-मर्मज्ञों की भावदृष्टि ने स्वरों का दर्शन किया, उन स्वरों के श्रुत्यन्तरों, स्वरान्तरों, संवादान्तरों, अनुवादान्तरों और विवादान्तरों को देखा, जाँचा, परखा, उन्होंने भावुक हृदय की गहराई से इन सब में निहित भाव-तत्व को पहचाना, स्वरोच्चार, गमकादि प्रयोग, काकादि भेद इन सबसे पर अथवा अतीत एवं महान् सत्य का अनुभव किया। उनको इस अनुभूति ने इन स्वरों से उद्भूत रागों में पुरुषत्व नारीत्व का दर्शन किया अथवा दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि रागों की भावाभिव्यञ्जना को स्थूल भाषा में निबद्ध करने के लिए पुरुषत्व स्त्रीत्व के प्रतीक का ग्रहण किया। तदनुसार उन्होंने भावना की ठोस नींव पर इन राग रागिणियों का शिव और पार्वती के साथ अथवा किसी किसी ने कृष्ण और गोपियों के साथ सबन्ध स्थापित किया है।

भारतीय दर्शन में सृष्टि के पूर्व ब्रह्म की "एकोऽहं बहु स्याम्" इस कामना के द्वारा एक महान् सत्य को प्रकट किया गया है। 'बहु' होने से पूर्व 'एक' से 'दो' का होना आवश्यक होता है। 'एक' ही बिन्दु या शून्य का द्विधा विभक्त होना और उन दो के परस्पर योग से तीन तथा क्रमशः अनन्त की उत्पत्ति,—यही सृष्टि का क्रम माना गया है। सृष्टितत्त्व में प्रकृति-पुरुष का योग विभिन्न रूप से विभिन्न दर्शनों में स्थान पाए हुए है। वेद, उपनिषद्, पुराणों में से होती हुई यह विचारधारा तन्त्रों में सब से अधिक विकसित हुई, यद्यपि संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त युग्मभाव को प्रत्येक भारतीय दर्शन में किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया गया है। यही युग्म-भाव संगीत में भी स्वरों के भाव-रूप की अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक के रूप में अपनाया गया और रागों में पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व को स्थान दिया गया।

हम देखते हैं, जानते हैं कि उद्भिज से लेकर पिंडज तक सभी में स्त्री, पुरुष का द्वैत भाव विद्यमान है। एक किसान एक 'अद्वैत' बीज को बोता है, उसका जब अंकुर निकलता है तब एक का दो हो जाता है। यह द्विदल भी उसी सत्य को निदर्शित करता है।

हमारे महर्षियों तथा आचार्यों ने स्वरनिबद्ध रागों में ईश्वर और माया के सदृश पुरुषराग और स्त्री रागिणी का भावमय अनुभव किया और उन्हें तदनुसार संज्ञा प्रदान की।

आज का विज्ञान का युग भावना के इस तर्कातीत दर्शन को समझने में असमर्थ रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। हम जानते हैं कि बुद्धि और हृदय में सदैव अंतर रहा है। बुद्धि को तर्क का सहारा है, हृदय को श्रद्धा का। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी धर्मों का उदय, इतना ही नहीं ईश्वर का अस्तित्व भी इसी श्रद्धा पर अवलम्बित है। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"—भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यही कहा है—"श्रद्धामयोऽयं पुरुष यो य श्रद्धः स एव सः"—

आचार्यों की भाव दृष्टि से प्रसूत राग रागिनियों के भावरूप को शायद आज तर्क-विरुद्ध कहा जाए, वैज्ञानिक ढंग से इनकी विवेचना असंभव बताई जाए, फिर भी यह आज भी नितांत सत्य है कि जिन जिन राग रूपों को हम सुनते हैं, गुनते हैं उनमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व का दर्शन केवल स्वरों के द्वारा सचमुच हो ही जाता है।

यह नितान्त निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि पाश्चात्य जगत् में भी बियोवन, मोजार्ट, शोपेन, बाक इत्यादि विश्वप्रसिद्ध कम्पोजरस् (स्वर काव्य नियोजक) ने भी स्वरों को इस भाव दृष्टि को सूक्ष्मतया देख कर ही अपने

Symphony orchestra ने स्वर-देह को चैतन्य प्रदान किया है। यह निःसंदेह सत्य है कि उनकी निर्मित स्वर रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न स्वरान्तरों द्वारा मानव हृदय की भावनाओं को ही उन्होंने मूर्त्त रूप दिया है। भूत काल के इन कलाकारों की कृतियों का आज भी उतना ही समादर है और वे जनता के मन-बुद्धि आत्मा को भूलोक से स्वर्लोक में पहुँचा देता है। आज भी वे कलाकार उतने ही श्रद्धेय और समादरणीय स्थान पाए हुए हैं।

इससे यह सिद्ध है कि क्या पौर्वात्य और क्या पाश्चात्य सभी अन्तर्दृष्टि-सम्पन्न कलाकारों, जिन्होंने स्वरों की भावसृष्टि को देखा है और अपने अपने ढंग से निरूपित किया है। भारतीय संगीत में स्वरों के भाव जगत् को निरूपित करने के लिए पुरुष और स्त्री का जो प्रतीक ग्रहण किया है उस पर थोड़ा-सा दार्शनिक विचार हम ऊपर प्रस्तुत कर चुके हैं। राग अर्थात् विशिष्ट स्वर सन्निवेश के भावमय रूप को स्त्री-पुरुष के व्यापार और उनके प्रकार द्वारा अभिव्यक्त करने की इस परंपरा की भित्ति को यदि हम समझ लें तो हम इस परंपरा में गौरव का दर्शन कर सकेंगे और जगत् में समस्त उपहासित से इसकी रक्षा भी कर सकेंगे। जिस प्रकार हमारा 'राग'—पद्धति विश्व भर में अद्वितीय है, उसी प्रकार संगीत के भाव जगत् में पुरुष स्त्री का विनियोग भी हमारी 'संगीत-संस्कृति' का एक गौरवमय अंग है।

वर्तमान प्रचलित राग रागिनियों में कुछ उदाहरण हम देख लें जिनसे राग रागिणी-वर्गीकरण में निहित विचारधारा प्रत्यक्ष प्रतीति में आ सके। अधुना प्रसिद्ध दरबारी कान्हड़ा के प्रौढ़ पुरुष रूप का हम दर्शन करें :—

सा ऽऽ नि ध ~ सा नि नि ~ सा, सा रि सा रि सा नि सा रि नि ~ प ~ नि ऽ प, म प नि ध ~ सा नि नि ~ सा।

सा रि ग म ~ म ~ म रि ऽ सा। रि सा नि ध नि सा रि ~ ग म प ग ~ म रि ऽ सा, रि सा रि ग ~ म प नि ध ~

प नि ~ प, म प ध ~ ~ प नि ~ म प नि प नि प ग म प म ग ~ नि प नि प ग म ग म नि म ग ~ म रि ऽ सा,

नि सा रि नि ~ ध ~ सा नि सा।

दरबारी कान्हड़ा की तालीम देते समय गुरु अपने शिष्यों को इस बात की ताकीद करते हैं कि इस राग के गान्धार धैवत पर गंभीर रूप से आंदोलन दे कर इन स्वरों पर गमक का विपुल उपयोग करें और विलंबित लय में तथा गंभीर आवाज़ से इनका उच्चार करें। साथ ही वे यह भी आदेश देते हैं कि इस राग की प्रस्तारकारी मन्द्र और मध्य तक ही सीमित रखी जाय। जो भी तान ली जाय वह गमक युक्त हो, इतना ही नहीं द्रुत तान का कतई उपयोग न किया जाए। तार सप्तक के स्वरों का उच्चार करते समय भी स्वरों के स्थिर उच्चार किए जाएं जिससे राग की गंभीरता में बाधा न पड़े।

ऊपर कहे ढंग से दरबारी कान्हड़ा के स्वरों का यथोचित वायु सहित उच्चार करके देखने से विश्वास हो जायेगा कि इस राग के स्वरों में प्रौढ़ वयस्क पुरुष तथा वयानुसार गंभीर स्वभाव का दर्शन होता है।

करीब-करीब उन्हीं स्वरों से गाया जाने वाला अड़ाना नामक एक अन्य राग है, जिसके स्वरों के आंदोलन-रहित उच्चार, तारसप्तक व्याप्ति और द्रुत गति ये सब उसे एक युवा पुरुष का रूप प्रदान करते हैं। और इसकी शिक्षा देते समय गुरु सदैव आदेश देते हैं कि इस राग के स्वर कभी भी आन्दोलन सहित और विलम्बित गति से न उच्चारे जाएं। और भूल कर भी मन्द्र सप्तक में सञ्चरण न किया जाए। इसको विधिवत् गा बजा कर देखने से मन पर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता है, उसको जानने से यह कहना नहीं पड़ेगा कि अड़ाना किसी तरह प्रकृति के युवा पुरुष का चित्र है। इसका स्वल्प स्वरूप निम्नोक्त है।

नि॒रनि॒मर सां, नि॒नि॒ नि॒नि॒रमप सां, पमरि॒ सांनि॒रिंगं सांरिंनि॒मां ध॒नि॒सां, ※रिंसांऽ ※रिंनि॒सां ध॒नि॒सां, ※नि॒ऽनि॒ ※नि॒मर, रिंसांऽरिं सांरिंनिसां, ※मं ऽमं ※ मंरिंगं, सांरिंनि॒सां ध॒नि॒सां।

यहाँ यह पुनः ध्यान दिलाना आवश्यक है कि इन स्वरों का आन्दोलन रहित द्रुतगति से ही उच्चार किया जाय।

स्थूल मान से करीब करीब इन्हीं ग, ध, नि, कोमल स्वरों वाली आसावरी नाम की रागिणी का रूप भी देख लें। इसमें मध्यम गति से, अल्प आन्दोलन, अल्प मींड और आघात रहित स्वरोच्चार में निम्नोक्त स्वर प्रयुक्त किए जाएं।

सरिमप ध॒ऽप, रिमपनि॒ध॒ऽप, मपनिधऽप, पध॒मगरिम पनि॒ध॒ प, रिमपध॒मपनि॒ध॒ऽप, धमप नि॒ध॒ऽप, पधपमग-रिऽसा, पध॒प मगम रिमपनि॒ध॒ऽप, धमध॒ सांनि॒ऽध, नि॒धऽप, धऽम, मपनिध पधऽम, मपधमगरि॒ ऽसा रिऽसा।

ध्यान रहे कि इस रागिणी में स्त्रीत्व का दर्शन उसके कोमलकांत स्वरोच्चार में सन्निहित है। दरबारी कान्हड़ा जैसे पुरुष राग में गांधार का आन्दोलन मध्यम से लिया जाता है और यह आन्दोलन बार बार गंभीर रूप से उच्चरित होता है वही स्थिति उसके धैवत की भी है। जब भी दरबारी में धैवत का उच्चार किया जाए तब सदैव कोमल निषाद से ही आन्दोलन दिये जाएं। तद्वत् अवरोह करते समय नि॒ प और म रे की संगति ऐसे गंभीर ढंग से उच्चारी जाए जिससे उसके पुरुषोचित भाव का दर्शन हो। नि॒ प और म रि के अन्तराल की दीर्घता भी पुरुष भाव को सूचित करती है। दूसरी ओर आसावरी में नि॒ प न करते हुए धैवत का आन्दोलन दिए बिना कोमल भाव से 'नि॒ ध॒ प' का स्वरोच्चार किया जाए जिससे उसका स्त्रीत्व निखर आए। जब धैवत पर अल्प आन्दोलन दिया जायेगा तब पंचम से सम्बन्ध रहेगा, दरबारी सदृश निषाद से नहीं। ध्यान रहे कि रिमपधपमप यह स्वर समूह जब आसावरी में लिया जाता है तब दरबारी के धैवत से एक श्रुति उतरा धैवत प्रयुक्त होता है और वह भी स्त्रीभाव की परिपुष्टि करता है। साथ ही इस रागिणी में जब कोमल गांधार पर कुछ देर ठहर कर उसे थोड़ा सा आन्दोलन दिया जाता है, तब वह गांधार ऋषभ के साथ संबंध जोड़ता हुआ (दरबारी सदृश मध्यम से नहीं) नितांत मृदु भावना खड़ी करता है। इस प्रकार स्वरों के सूक्ष्मान्तर उनके काकादि उच्चार, ससकान्तर, मंद्र मध्य या तार विस्तार, विलंबित, मध्य द्रुत के लयभेद—ये और ऐसे अन्य सभी उपादानों से राग का पुरुषत्व और रागिणी का स्त्रीत्व, उनकी बाल, युवा, प्रौढ़ आदि अवस्थाएं, वीर, करुण, शांत, शृंगार जैसे रस—इन सबका दर्शन होता है। इसी दृष्टि से हिंडोल और मालकंस को देखने से भी क्रमशः वीर पुरुष और शान्त मानव का दर्शन होगा।

हिण्डोल में जो रि प का समूचा त्याग है तथा नि शुद्ध और मध्यम तीव्र है, स्वरों के खड़े खड़े उच्चार किए जाते हैं, बीच बीच में आघात से स्वरों पर धक्का दिया जाता है और उससे भर्त्सना, ललकार, दर्प आदि वीर-पुरुषोचित भावनाएं उद्दीप्त होती हैं।

दूसरी ओर मालकंस में रि प का समूचा त्याग, 'ग, ध नि॒' का कोमलत्व शुद्ध मध्यम का दीर्घ उच्चार, स म और ग म की स्वर संगति इत्यादि उपादानों से एक शांत और गंभीर पुरुष का दर्शन होता है। इन भावों को देखने के लिए और उन्हें दिखाने के लिए यह सतत ध्यान रहे कि रागों का भाव रूप उनमें प्रयुक्त स्वरों, उनके उच्चारों, काकादि भेद, गमकयुक्त या गमकहीन प्रयोग, आन्दोलनसहित या आन्दोलनरहित अवस्था, तार मंद्रादि व्याप्ति, द्रुत विलंबित आदि गति इत्यादि प्रयोग विधि पर निर्भर रहता है।

आजकल देखा जाता है कि गायकी अंग के प्रदर्शन के मोह में रागों के स्वरों में अंकित भावरूप की उपेक्षा हो जाती है। श्रोता भी अधिकतर दो प्रकार के पाए जाते हैं जिनमें एक कलाकार की तैयारी की ओर कान लगाए रहते हैं और दूसरे गीत के शब्द की खोज में लगे रहते हैं। इसीसे राग के वास्तविक रूप का और रस भाव का दर्शन नहीं हो पाता।

※ यह चिह्न धक्के सहित उच्चार के लिए है।

विश्व के भिन्न २ देशों का मेरा अनुभव यह कहने को बाध्य करता है कि जिन्हें शब्द से निरपेक्ष, स्वर की भाषा द्वारा होनेवाली भावाभिव्यक्ति को देखने, सुनने, परखने का अभ्यास है, वे हमारे रागरूपों को सुनकर कई बार सहज कह उठते हैं, पूछ उठते हैं :—"अहा ! इस रचना में करुणा (Pathos) भरी पड़ी दिखाई देती, क्या आपके यहाँ भी इसके लिए ऐसी ही मान्यता है ?" अथवा "आवेश, उत्साह (Bravery, Chivalry) प्रेम (love) दिखाई देते हैं," इत्यादि। हम जानते हैं कि अन्य देशों की जनता भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ है। वह जब भी भारतीय संगीत सुनती है, तब भारतीय रागान्तर्गत गीतों के शब्दों को थोड़े ही समझती है ? वह तो प्रयुक्त स्वरों को ही सुनती है। उन्हें उन स्वरावलियों के राग-नाम, रस या भाव इत्यादि के शास्त्रीय पक्ष से कोई परिचय नहीं होता है, फिर भी उन स्वरों में सन्निहित विभिन्न भावों का वे दर्शन करते हैं, भावोद्रेक के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं और साश्चर्य पूछ उठते हैं —"क्या आपके यहाँ भी हमारी भाँति स्वरों की भावाभिव्यक्ति की मान्यता है ?" तद्वत् भारतीय वाद्यों के वादन से भी वे कितने प्रभावित होते हैं, यह अनजानी बात नहीं है। इसीसे यह सिद्ध है कि संगीत की भाषा विश्व की भाषा है, प्राणिमात्र की यह वाणी है, नैसर्गिक भाव-व्यंजना का वह माध्यम है। इसीसे उसे देशकालातीत कहा गया है। अस्तु, अब हम भारतीय राग-रागिणी-वर्गीकरण पद्धति का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हैं।

राग-रागिणी-वर्गीकरण का इतिहास —मतंग

हमने मतंग के राग-वर्गीकरण-प्रकरण में ऊपर देखा कि उन्होंने देशी रागों का भाषा और विभाषा गीतियों के अन्तर्गत विभाजन किया है और इन भाषा विभाषा का सीधे ग्रामरागों के साथ संबन्ध जोड़ा है अर्थात् यह बताया है कि अमुक ग्रामराग की अमुक भाषाएँ हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि जितनी भाषाएँ कही है उन सब की संज्ञाएँ भी स्त्रीलिंगवाची हैं। 'ग्रामराग' यह पुल्लिंगवाची संज्ञा है और 'भाषा-विभाषा' ये स्त्रीलिंगवाची हैं। इन द्विविध संज्ञाओं को देखते हुए यह प्रबल अनुमान हो जाता है कि 'राग' और 'रागिणी' की विचारधारा मतंग में ही सर्वप्रथम उपलब्ध हो जाती है। इस अनुमान की पुष्टि वाचनाचार्य 'सुधाकलश' के 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' (१४ वी शताब्दी ई०) से होती है। अधुना उपलब्ध ग्रन्थों में से इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से रागों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व का आरोप प्राप्त होता है। वहाँ स्त्री रागों को 'रागिणी' न कह कर भाषा कहा गया है। इस 'भाषा' का मतंग की 'भाषा' के साथ सहज संबन्ध जान पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब ग्राम-राग-देशी-राग-वर्गीकरण के स्थान पर राग-रागिणी-वर्गीकरण का विकास आरंभ हुआ तब प्रथमावस्था में स्त्री *'रागिणी' के लिए 'भाषा' संज्ञा का उपयोग यह सूचित करता है कि* मतंगोक्त 'भाषा' में रागों के स्त्रीत्व के बीज उस काल में भी ग्रन्थकारों ने देखे होंगे और तभी इस संज्ञा का ग्रहण किया होगा।

२—'संगीत रत्नाकर'

शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' में राग-वर्गीकरण के संबन्ध में अधिकांश रूप से मतंग का ही अनुसरण मिलता है। इसलिए जो कुछ ऊपर मतंग के विषय में हम कह आए हैं, वही 'संगीत रत्नाकर' को भी लागू होता है यानी 'भाषा'-'विभाषा' में रागों के स्त्रीत्व-दर्शन का बीजरूप जैसे मतंग के बृहद्देशी में समझा जा सकता है, उसी प्रकार 'संगीत रत्नाकर' में भी परम्परागत रूप से समझा जा सकता है। किन्तु यह अवश्य स्मरणीय है कि रागों के 'पुरुषत्व' अथवा 'स्त्रीत्व' का कोई भी अस्फुट उल्लेख 'संगीत रत्नाकर' में नहीं मिलता।

—नारद (?) का संगीत मकरन्द

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकार की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। श्रीरामकृष्ण कवि (संपादक 'संगीत मकरन्द') की ऐसी मान्यता है कि यह ग्रन्थ ७वी शताब्दी से ११ वी शताब्दी के बीच की रचना है और तदनुसार यह 'संगीत रत्नाकर' के पूर्ववर्ती ठहरता है। यदि इस ग्रन्थ का काल सचमुच उतना ही प्राचीन हो जितना कि श्रीरामकृष्ण कवि ने कहा है, तब तो राग रागिणी वर्गीकरण की परम्परा की प्राचीनता भी साथ ही सिद्ध हो जाए, क्योंकि इसमें 'राग-रागिणी' का उल्लेख मिलता है। किन्तु इस ग्रन्थ के विषय-प्रतिपादन को देखते हुए इसे इतना प्राचीन मानना समीचीन नहीं जान पड़ता। स्थानाभाव के कारण सभी विषयों की चर्चा यहाँ संभव नहीं है, किन्तु केवल राग-वर्गीकरण पर ही विचार करें तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं।

मतंग का काल भी सातवीं शताब्दी ई० के आसपास माना जाता है। इनके ग्रन्थ में पाँच गीतियों में ग्राम-राग-वर्गीकरण तथा दो गीतियों में देशी राग वर्गीकरण पाया जाता है। 'संगीत रत्नाकर' में प्रायः इसी वर्गीकरण-पद्धति का प्रतिपादन मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मतंग से लेकर शार्ङ्गदेव तक राग-वर्गीकरण की एक ही धारा प्रवाहित रही है। यदि 'संगीत मकरन्द' को इन दोनों के बीच के काल रखा जाए तो दो बड़े प्रश्न उपस्थित होते हैं:—

(१) जिस काल में मतंगोक्त वर्गीकरण प्रचलित रहा होगा, उसी में नारद (?) ने यदि किसी नवीन वर्गीकरण-प्रणाली का प्रवर्त्तन किया होता तो क्या वे उस काल में प्रचलित पद्धति का कुछ भी उल्लेख न करते ?

(२) दूसरी ओर 'संगीत रत्नाकर' कार शार्ङ्गदेव को पूर्ववर्ती ग्रन्थों में यदि 'संगीत मकरन्द' भी उपलब्ध होता तो क्या वे पुरुष-राग स्त्री-राग इत्यादि की वर्गीकरण-प्रणाली को अपने ग्रन्थ में किसी रूप में भी स्थान न देते ?

इन प्रश्नों में 'संगीत मकरन्द' को 'संगीत रत्नाकर' से पूर्ववर्ती मानने में बड़ी बाधा निहित है जिसके कारण इसका काल पूर्ण संदिग्ध है।

'संगीत मकरन्द' में राग-वर्गीकरण के निम्नलिखित पृथक्-पृथक् रूप मिलते हैं :—

(१) रागों के प्रयोग-काल के अनुसार :—

(क) सूर्यांश राग (प्रातःकालीन), (ख) चन्द्रांश राग (सायंकालीन), (ग) मध्याह्नकालीन।

(२) संपूर्ण-षाडवादि अवस्था के अनुसार :—

(क) संपूर्ण राग, (ख) षाडव राग, (ग) औडव राग।

(३) 'लिंग' के अनुसार :—

(क) पुल्लिंग राग, (२) स्त्रीलिंग राग, (३) नपुंसक राग।

इन तीनों लिंगों के अन्तर्गत रागों के रसानुकूल प्रयोग के लिये 'संगीतमकरन्द' में कहा है :—

रौद्रेऽद्भुते तथा वीरे पुंरागैः परिगीयते।
शृङ्गारहास्यकरुणे स्त्रीरागैश्च प्रगीयते॥
भयानके च बीभत्से शान्ते गायन्नपुंसके। (सं० म० ६३, ६४)

अर्थात्—रौद्र, अद्भुत तथा वीर रसों के प्रसंग में पुरुषराग, शृङ्गार, हास्य, करुण में स्त्रीराग और भयानक, बीभत्स, शान्त में नपुंसक राग प्रयुक्त किये जायें। (रस-दृष्टि से यह उल्लेख बहुत महत्वपूर्ण है)।

(४) रागाङ्ग राग। इस श्रेणी में नारद (?) ने कुछेक राग पृथक् रूप से रखे हैं। यह रागभेद तो शार्ङ्गदेव के वर्गीकरण का एक अंग है। इसे किस सन्दर्भ में नारद ने स्थान दिया है, यह बिलकुल अस्पष्ट है।

(५) छ पुरुष-राग और प्रत्येक की छ-छ स्त्रियाँ (दो मत से)। (द्रष्टव्य परिशिष्ट तालिका (ग)

इन भिन्न २ वर्गीकरणों में अनेक राग-नामों की पुनरुक्ति हुई है जो स्वाभाविक है। साथ ही इन भिन्न २ वर्गीकरणों के परस्पर सामंजस्य-स्थापन का कोई यत्न या उल्लेख ग्रन्थ में नहीं मिलता। राग-वर्गीकरण की इस परस्पर असंबद्ध सामग्री को देखते हुए कुछ ऐसा लगता है कि यह एक संकलन मात्र है जिसके पीछे ग्रन्थकार की अपनी कोई एक निश्चित दृष्टि अथवा विचारधारा संभवतः नहीं है। अतः यह निर्णय करना कठिन है कि इस ग्रन्थ को भारतीय राग-वर्गीकरण के इतिहास में अथवा विकास-क्रम में कहाँ, कैसा, कितना स्थान दिया जाए।

संगीतोपनिषत्सारोद्धार

मतंग के प्रकरण में अभी ऊपर देख आए हैं कि 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' नाम के ग्रन्थ में 'राग' (पुरुष) और 'भाषा' (स्त्री रागिणी) के ढाँचे में राग-वर्गीकरण किया गया है। इसमें छः राग और प्रत्येक राग की छः-छः 'भाषा' यही है जो परिशिष्ट में सारिणी (ध) में दिखाई गई हैं। राग और भाषा के नाम तथा रूप-ध्यान देने के पूर्व ग्रन्थकार कहते हैं :—

> तावन्तस्ते तु रागाः स्युर्यावन्त्यो जनजातयः।
> षोडशसहस्रसंख्यास्ते रागा गोपीकृता मताः॥

अर्थात्—सोलह सहस्र गोपियों द्वारा बनाए हुए उतने ही राग हैं।

इस श्लोक से इस बात का संकेत मिलता है कि जिस प्रकार शिव-पार्वती के साथ राग-रागिणी परंपरा का संबन्ध जोड़ा गया है, उसी प्रकार कुछ ग्रन्थों में कृष्ण और गोपियों के साथ भी संबन्ध जोड़ने की परंपरा रही है।

मध्ययुग में राग-रागिणी-वर्गीकरण के प्रमुख ग्रन्थ

शुभंकर का 'संगीत दामोदर', पुण्डरीक विट्ठल की 'रागमाला', दामोदर पण्डित का 'संगीत दर्पण' इत्यादि ग्रन्थ १५ वीं से १७ वीं शताब्दी के काल में प्राप्त होते हैं। इन सबमें राग-रागिणी-वर्गीकरण के नामोल्लेख के अतिरिक्त इस वर्गीकरण के शास्त्रीय आधार की कोई चर्चा नहीं है। अतः हम परिशिष्ट में इन ग्रन्थों में उल्लिखित राग रागिणियों की तालिका-मात्र प्रस्तुत कर रहे हैं। इस विषय पर हमारा अपना मंतव्य इस प्रकरण के उपसंहार में दिया जायगा।

श्रीकण्ठ की रसकौमुदी

श्रीकण्ठ की 'रसकौमुदी' (१६ वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) में मेल-पद्धति और राग-रागिणी-पद्धति का समन्वय करने का यत्न किया गया है। ११ मेलों के अन्तर्गत २३ पुरुष राग और १५ स्त्री रागिणी यहाँ हैं, जो परिशिष्ट में सारिणी (प) में प्रस्तुत हैं। इन राग-रागिणियों के ध्यान भी दिये हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'रसकौमुदी' के इस वर्गीकरण में स्थूल समन्वय दिखाई देने पर भी मेलों के माध्यम से स्वर-दृष्टि और 'राग-रागिणी' के माध्यम से भाव-दृष्टि का वास्तविक समन्वय करने का शास्त्रीय यत्न इस ग्रन्थ में दिखाई नहीं देता।

राग-रागिणी वर्गीकरण के प्रचलन की आधुनिक युग में अवस्था

ऐतिहासिक कारणों से, राजकीय परिस्थितिवश, तथा पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव-वश उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संगीत-शास्त्र के विचारकों में, रागों के भाव-रूप के सूक्ष्म आधार पर निर्मित राग-रागिणी-पद्धति के पौराणिक रूप के प्रति रुचि घटती गई हो और रागों के स्वर-रूप के स्थूल आधार पर निर्मित मेल-पद्धति के प्रभाव से थाट-निर्माण की ओर झुकाव हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु क्रमशः बीसवीं शताब्दी में थाट-पद्धति का प्रचार हो जाने पर भी सामान्य जनमानस 'राग-रागिणी' के पौराणिक संस्कार को त्याग नहीं पाया है। यह हम आरंभ में ही कह आए हैं। अस्तु।

राग-रागिणी-वर्गीकरण का तात्त्विक विवेचन

राग रागिणी-वर्गीकरण का संक्षिप्त इतिहास हमने ऊपर देखा। यहाँ एक तात्त्विक प्रश्न उपस्थित होता है कि रागों के भाव-रूप का उनके स्वर-रूप के साथ गहरा संबन्ध तो निर्विवाद है, किन्तु इस समय उपलब्ध ग्रन्थों में राग-रागिणी-वर्गीकरण के जो रूप प्राप्त होते हैं, उनमें रागों के भावमय पुरुषत्व और स्त्रीत्व की उनके स्वर-रूप के साथ कहाँ तक और कैसी संगति बैठाई जा सकती है? तदनु यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि अमुक राग के साथ अमुक रागिणियों का भार्याओं के रूप में संबन्ध जोड़ने का आधार क्या था? इन प्रश्नों के साथ अन्य कितनी ही समस्याएं जुड़ी हुई हैं। यथा :—

(१) उल्लिखित रागरागनियों का क्रमश: २ स्वररूप कैसे स्थिर किया जाए? इस संबन्ध में कठिनाइयां निम्नोक्त हैं:-

(क) राग-रागिणी-वर्गीकरण का प्रथम (?) प्रतिपादक ग्रन्थ 'संगीत मकरन्द' (नारद ?) रागों के स्वररूप के विषय में मौन है।

(ख) मध्ययुग के ग्रन्थकार, दामोदर पंडित आदि के स्वर प्रकरण एवं राग-प्रकरण में कोई स्पष्ट सामञ्जस्य नहीं दीखता। स्वर प्रकरण में उन्होंने भरत के ही ग्राम-मूर्च्छना आदि का उल्लेख करके, मानो भरत ही उनके आधार हैं, ऐसा प्रकट किया है। हम जानते हैं कि भरत के स्वर दो ग्रामों में निबद्ध हैं। उन द्वैग्रामिक स्वरों की यथावत् स्थिति और योजना पर उनके वास्तविक स्थान समझने में वे ग्रन्थकार कैसे और कितने असमर्थ रहे हैं, यह 'प्रणव भारती' प्रथम भाग में हम स्पष्ट कर आए हैं। वहाँ हम देख चुके हैं कि उनके कहे हुए षड्जग्राम से भरतोक्त षड्जग्राम का किसी प्रकार का सामञ्जस्य नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि मध्यमग्राम को उन्होंने अञ्जलि प्रदान की और विदा कर दिया। द्विश्रुति को कभी त्रिश्रुति, तो कभी एकश्रुति, त्रिश्रुति को द्विश्रुति, चतुःश्रुति को पंचश्रुति मान लेने से श्रुत्यन्तरों और स्वरान्तरों का वास्तविक अर्थ तिरोहित हो गया। इसलिए ये लोग भरतोक्त स्वर-जाति ग्राम का नामोल्लेख करने पर भी भरत परंपरा को अपने ग्रन्थों में अक्षुण्ण रूप से निरूपित करने में असफल रहे हैं। इस प्रकार तत्कालीन क्रियागत स्वरों का और उनके अपने ग्रन्थों में निरूपित स्वरों का सामञ्जस्य भी नहीं रह पाया। इसीलिए रागों को निरूपित करते समय वे सभी ग्रंथकार उन रागों के स्वरों का अपने ग्रन्थोक्त स्वरों के साथ संबन्ध नहीं दिखा पाए। संभवतः भरत की कही हुई स्वर, श्रुति ग्राम-व्यवस्था उनके लिए अस्पष्ट रहने के कारण ही मध्ययुग के ग्रन्थकारों के स्वर-श्रुति-ग्राम-प्रकरण के साथ उनके राग निरूपण का कोई सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो सका है।

रागों के भावरूप के दर्शन के लिए उनके स्वर रूप का स्पष्ट दर्शन आवश्यक है, किन्तु उपर्युक्त विवेचन से हमने देखा कि उनके ग्रन्थोक्त स्वर रूप नितान्त अस्पष्ट हैं, ऐसी अवस्था में उन ग्रन्थकारों के दिए हुए रागरूपों में पुरुषत्व या स्त्रीत्व का अनुभव पाना असंभवप्राय है। रागों का राग रागिणी में वर्गीकरण करने वाले 'संगीतदर्पण' के रचयिता पं० दामोदर ने अपने राग और रागिणियों का निरूपण करते समय किस राग में या किस रागिणी में कौन कौन से स्वर लगाते हैं, किस राग में किस श्रुत्यन्तर वाले स्वरों का उपयोग होगा, यह कहने की बजाय अमुक राग का अमुक मूर्च्छना है, अधिकांश स्थलों में ऐसा ही कहा है। जहाँ स्वर नामों के माध्यम से राग निरूपण किया है वहाँ भी स्वर-प्रकरण की अस्पष्टताओं और असमञ्जसताओं के कारण कोई प्रामाणिक निरूपण प्राप्त नहीं होता। यह सत्य है कि मूर्च्छना के स्वरों से राग का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए, किन्तु हम जानते हैं कि जैसे राग मूर्च्छनाश्रित है, वैसे मूर्च्छना ग्राम के आश्रित है। जब तक ग्राम यथायथ रूप से नहीं समझा जाता, तबतक उसके आश्रित मूर्च्छनाएं कैसे स्पष्ट हो सकती हैं? 'संगीतदर्पण' तथा उनके समकालीन अन्य ग्रन्थों में यही असमञ्जसता विद्यमान है जो कि स्वर, ग्राम, मूर्च्छना के सम्बन्ध में इसके पूर्व हम सभी मध्ययुग के अन्य ग्रन्थकारों के लिए कह आए हैं।

(२) दूसरी समस्या यह है कि रागों में पृथक् पृथक् रूप से पुरुषत्व या स्त्रीत्व का भावदर्शन ही जब असाध्य है तब यह समझने का यत्न कैसे किया जाय कि अमुक राग के साथ अमुक रागिणियों को भार्याओं के रूप में सबद्ध करने के पीछे क्या शास्त्रीय दृष्टि रही होगी? भिन्न भिन्न ग्रन्थकारों के राग रागिणी वर्गीकरण की जो तालिकाएं हम परिशिष्ट में दे रहे हैं, उनमें यह दिखाई देगा कि भैरव के साथ भैरवी, हिंडोल के साथ तोडी ऐसे बेमेल स्वर रूपों वाले रागों और रागिणियों का परस्पर सम्बन्ध जोड़ा गया है। राग रागिणी परंपरा के सभी ग्रंथकारों का काल उतना प्राचीन नहीं है कि उन नामों वाले रागों के रूपों में आमूल परिवर्तन हो गया हो। इसलिए आज के प्रचलित राग रूपों के अनुसार उन ग्रन्थोक्त राग रागिणियों का सम्बन्ध जोड़ना, जांचना अनुचित नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आज से हमारी अपनी गुरु परंपरा के काल का विचार किया जाय तो यह मानना होगा कि सात आठ पीढ़ी पूर्वतक की राग-परंपरा की हमें अपरोक्ष जानकारी प्राप्त है। इससे हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व की राग परंपरा हमें अक्षत रूप से प्राप्त है। आज से दो सौ वर्ष के काल में तथा इन मध्ययुगीन ग्रन्थकारों के काल में कुछ इतना अधिक व्यवधान नहीं है कि जिससे राग रूपों के आमूल परिवर्तन की कल्पना की जा सके। आजके भैरव से भैरवी का क्या सामञ्जस्य हो सकता है? नाममात्र में पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिंग-वाची शब्द के साम्य के अलावा इनमें और कोई साम्य दिखाई नहीं देता। भैरवी को भैरव

को ही कहने से उन दोनों का क्या परस्पर सम्बन्ध जुड़ सकता है ? इसी प्रकार अन्य कई राग-रागिणियों के बीच भी असामंजस्य साफ साफ दिखाई देता है। इस वैषम्य को हम किस प्रकार साम्य में परिवर्तित करें और सामञ्जस्य की स्थापना करें, यह भी एक बड़ी उलझन है। हम देख आए हैं कि राग रागिणियों के स्वर रूप नितान्त अस्पष्ट हैं। ऐसी अवस्था में आज के प्रचलित राग-नामों के साथ जहाँ जहाँ ऐक्य या साम्य दिखाई दे वहाँ आज के प्रचलित रागरूपों के अनुसार रागों और रागिनियों स्वर-रूपों का परस्पर सम्बन्ध जाचने की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक है। किन्तु, भैरव-भैरवी जैसे स्थलों में नाम-मात्र में पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंगवाची शब्द-साम्य के अलावा और कोई साम्य दिखाई नहीं देता।

हम जानते हैं कि व्यवहार में स्त्री और पुरुष में शारीरगत तथा स्वभावगत वैषम्य रहता है। कोई यह कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष के देह-वैषम्य और प्रकृति-वैषम्य को ध्यान में रखते हुए राग-रागिनियों का भावदर्शन करने वालों ने स्वर या भाव के साम्य के आधार पर नहीं, अपितु उनके वैषम्य के आधार पर राग-रागिनियों का सम्बन्ध जोड़ा होगा। यदि ऐसा मान लिया जाए तब भी वैषम्य का आधार ग्रन्थकारों के अपने शब्दों में उपलब्ध होना ही चाहिए, किन्तु राग-रागिणी-वर्गीकरण के ग्रन्थों में साम्य या वैषम्य किसी आधार का स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं होता। इसलिए यह कहना कठिन है कि इन राग-रागिणियों के वर्गीकरण के पीछे पुरुषत्व और स्त्रीत्व के भावदर्शन का कौन सा ठोस आधार स्वीकार किया गया होगा।

यहाँ यह कहना ही पड़ता है कि इस परंपरा के सभी उपलब्ध ग्रन्थकारों ने शास्त्रीय विवेचन तो दूर इस कल्पना के आधार का रखमात्र भी संकेत तक नहीं दिया है; केवल तालिका मात्र प्रस्तुत की हैं।

उपसंहार

राग और रागिणी के भाव रूप पर हमने साधक और बाधक उभय दृष्टि से विचार किया। क्या शब्द में, क्या स्वर में, क्या भाषा में, क्या संगीत में स्वर द्वारा ही भाव सृष्टि का निर्माण किया जाता है। शब्दों से अर्थ की निष्पत्ति और अर्थ से भाव की उत्पत्ति के ठोस पहलू हमसे अज्ञात नहीं, शब्द और शब्द के अर्थ और उनके भाव-निरूपण के पीछे सूक्ष्म रूप से स्वर ही का बलवत्तर आधार रहता है। जिस संगीत में स्वर ही मुख्य उपादान है, उसका भाव-पक्ष कितना प्रबल है, उसके सम्बन्ध में इस प्रकरण के पूर्वार्ध में हम विशद विवेचन कर आए हैं। स्वानुभूति से हम दृढ़तापूर्वक मानते हैं कि स्वर में रसभाव की अपार सृष्टि सन्निहित है। सुखदु खादि संवेदनाओं से लेकर साहित्य ग्रन्थों में वर्णित रसों का दर्शन भी स्वर के माध्यम से किया जा सकता है। और इसीलिए इस प्रकरण के पूर्वार्ध में हमने स्वर और राग के भावरूप दर्शन में, उनके पुरुषत्व और स्त्रीभाव के दर्शन में, अपनी आस्था प्रकट की।

किन्तु जिन-जिन ग्रन्थकारों ने स्वर-राग के भाव-रूप का दर्शन कराने का, उनके पुरुष-भाव, स्त्री भाव को अभिव्यक्त करने का जो यत्न किया है, वह कैसा है, सफल है, निष्फल है, पूर्ण है, अपूर्ण है, समंजस है, असमंजस है—वह जैसा भी है, वैसा हम इस प्रकरण के अन्तिम चरणों में कह आए हैं।

स्वरों में, रागों में नि.संदेह स्त्री पुरुष का दर्शन होता है। उनके भाव-रूप का अनुभव किया जा सकता है और उनकी रस-मूर्ति का दर्शन कर सकते हैं, किन्तु तन्निमित्त यानी उसके अनुभव के लिए जिन उपादानों की आवश्यकता है, उनकी पूर्ण उपलब्धि पर वह दर्शन अवलम्बित है। वही उपादान इन मध्यकालीन ग्रंथों में उपलब्ध न होने से राग-रागिनियों का भाव-दर्शन समंजस रूप से स्पष्ट नहीं होता है। किन्तु भले ही इन ग्रन्थों में हमें यह अपेक्षित दर्शन उपलब्ध नहीं होता, फिर भी राग रागणियों के भाव-रूप की स्वीकृति कोरी कल्पना ही नहीं, अपितु सत्य पर आधृत पूर्ण दर्शन है।

मेल-पद्धति

मध्ययुग मे राग वर्गीकरण की दूसरी धारा मेल-पद्धति थी जिसका मुख्य कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत रहा है। इस मेल-पद्धति के आद्य प्रवर्तक विद्यारण्य माने जाते हैं जिनका काल १४ वीं शताब्दी ई० है। उनका ग्रंथ 'संगीतसार' तो आज अनुपलब्ध है, किन्तु तंजोर के रघुनाथ भूप के ग्रन्थ 'संगीत-सुधा' में विद्यारण्य के मतानुसार जिन १५ मेलों का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं :—

नट्ट,* गुर्जरी, वराटी, श्रीराग, भैरवी, शंकराभरण, अहोरी, वसन्तभैरवी, सामन्त, काम्बोदी, मुखारी, शुद्धरामक्रिया, केदारगौळ, हेजुजी, देशाक्षी।

यद्यपि विद्यारण्य कर्णाटकीय संगीत के आद्य प्रवर्तक माने जाते हैं, तथापि उनका ग्रन्थ अप्रकाशित होने के कारण रामामात्य के 'स्वरमेलकलानिधि' को ही आज उक्त संगीत-पद्धति का आधार-ग्रन्थ माना जाता है। रामामात्य के मेल और उनकी स्वरावलियाँ हम परिशिष्ट में तालिका (ञ) में दे रहे हैं। यह स्मरणीय है कि रामामात्य के आद्य मेल मुखारी को ही आज तक कर्णाटक पद्धति में भरत के षड्जग्राम का निदर्शक माना जाता रहा है। 'प्रणव-भारती' (प्रथम भाग) तथा संगीतांजलि पंचम भाग में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि रामामात्य के मुखारी मेल की स्वरावली वास्तव में सा – रे॒ – रि – म – प – ध॒ – ध – सां है और उसमें द्विश्रुति अन्तराल की त्रिश्रुति तथा चतुश्रुति अन्तराल को पंचश्रुति मानने की भ्रान्ति निहित है, जिसके कारण उसे भरत के षड्जग्राम के साथ एकरूप मान लिया गया है। किन्तु वस्तुतः भरत के षड्जग्राम को उसमें किसी प्रकार भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। फिर भी आज यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि कर्णाटक संगीत में भरत-परम्परा अक्षुण्ण है और भारत के अन्य प्रदेशों में वह परम्परा छिन्न-भिन्न हो चुकी है। इस भ्रान्ति के खण्डन में हमने जो ठोस प्रमाण दिये हैं वे 'प्रणव-भारती' तथा संगीतांजलि (पंचम भाग) में द्रष्टव्य हैं। यहाँ उनके पुनरुल्लेख का अवकाश नहीं है।

रामामात्य के बाद सोमनाथ ने २३ तथा व्यंकटमखी ने ७२ मेल कहे हैं जो क्रमशः तालिका (ट) (ठ) में परिशिष्ट में संगृहीत हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मेलों की संख्या में वृद्धि होने पर भी शुद्ध स्वरावली के विषय में सभी कर्णाटकीय ग्रन्थकारों ने रामामात्य का अविकल अनुसरण किया है। साथ ही वैकल्पिक स्वर-नामों के प्रयोग से सभी ने घोर अव्यवस्था की सृष्टि की है। वैकल्पिक स्वर नामों की पृष्ठभूमि में मेल रचना के ये दो नियम हैं :—

(१) प्रत्येक मेल संपूर्ण होना चाहिए अर्थात् उसमें सातों स्वरों का प्रयोग होना चाहिए। और

(२) किसी भी मेल में किसी स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

इन दोनों नियमों का मेल पद्धति में किंचित् भी परिपालन नहीं हुआ है, अपितु एक स्वर के दो रूपों का मुक्त रूप से ग्रहण करके पूर्णत्व का भ्रम किया गया है और वैकल्पिक संज्ञाओं के प्रयोग से इन नियमों की शाब्दिक रक्षा का विफल प्रयास किया गया है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट होगी :—

---

* रामामात्य का आद्य मेल मुखारी है और उसी को व्यंकटमखी ने कनकांगी नाम दिया है। किन्तु विद्यारण्य ने मुखारी के स्थान पर 'नट्ट' को आद्य मेल स्वीकार किया है, यह ध्यान देने की बात है। नट्ट मेल के स्वर रघुनाथ भूप ने इस प्रकार कहे हैं :—

षड्जस्तथा मध्यमपंचमौ च शुद्धाः स्वराः षट्श्रुतिभिः समेतः ।
ऋषभस्तु स्यादृषभोऽन्तरश्च गान्धारकः काकलिको निषादः ॥

अर्थात् सा – ग॒ – ग – म – प – नि॒ – नि – सां यह नट्ट मेल की स्वरावली है।

मेलो मे आए हुए एक स्वर के दो-दो रूप (वास्तविक श्रुत्यन्तर सह)	हिन्दुस्तानी स्वर नाम	प्रयोक्त मेल व्यवस्था में स्वर नाम (कल्पित श्रुत्यन्तर सह)
द्विश्रुति-चतु श्रुति ऋषभ	कोमल, शुद्ध ऋषभ	शुद्ध ऋषभ, शुद्ध गान्धार
चतु श्रुति ऋषभ षट्श्रुति गान्धार (कर्णाटकीय संज्ञा मे शुद्ध गान्धार, साधारण गान्धार)	शुद्ध ऋषभ, कोमल गान्धार	पञ्चश्रुति ऋषभ, साधारण गान्धार
षट्श्रुति (साधारण) गान्धार, सप्तश्रुति (अन्तर) गान्धार	कोमल, शुद्ध गान्धार	षट्श्रुति ऋषभ, अन्तर गान्धार
द्विश्रुति धैवत, चतु श्रुति धैवत	कोमल, शुद्ध धैवत	शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद
चतु श्रुति धैवत—षट्श्रुति निषाद (कर्णाटकीय स्वरसंज्ञा के अनुसार शुद्धनिषाद, कैशिक निषाद)	शुद्ध धैवत, कोमल निषाद	पञ्चश्रुति धैवत, षट्श्रुति निषाद
षट्श्रुति (कैशिक) निषाद, सप्तश्रुति (काकली) निषाद	कोमल, शुद्ध निषाद	षट्श्रुति धैवत, काकली निषाद

नोट —दो मध्यम वाला कोई मेल नही है।

वैकल्पिक संज्ञाओ की इस अव्यवस्था के अतिरिक्त मेल-पद्धति की एक बहुत बडी त्रुटि है—अनेक विवादी मेलों की सृष्टि। जिनमे रञ्जकता न हो, जो विवादी दोष स भरे हो ऐसे मेलो की संगीत में क्या उपयोगिता हो सकती है ? 'राग' तो रञ्जकता के लिए ही होता है। जिसमे जनरञ्जन, मनरञ्जन, आत्मरञ्जन न हो वह 'राग' ही नहीं कहला सकता। विवादित्व दोष वाले मेलो से जन्य 'राग' अपने नाम को ही सार्थक नहीं कर सकते। इसीलिए अधिकांश मेला की स्वरावलियाँ गायन वादन के लिये अनुपयोगी मानी गई हैं क्योकि वे न कर्णप्रिय हैं, न आत्मप्रिय हैं। किन्तु ऐसे अनुपयोगी मेलो को शास्त्र में स्थान देने से क्या लाभ ? 'अशास्त्रीय' को बलात् शास्त्रीय बनाने की प्रवृत्ति से क्या लाभ ? रक्ति-हानि के इस दोष के सम्बन्ध मे श्री के, वासुदेव शास्त्री के निम्नोद्धृत वचन प्रासंगिक हैं :—

"The pell mell of views resulted in the theoretical computation of all possible Melas using the swaras in common usage 16 swaras were settled as of common use But they had only twelve Swarasthānas With these the 72 melas were coined purely on a mechanical basis* I may repeat here again that the classification, had nothing to do with melody or 'Rakti which is the soul of Rāga Bhāva or Rasa The classification was intended to exhaust all the possibilities of the arbitrary aspect of music but not its scientific aspect . . Thus far I have tried to show that the Mela or Thāta has neither the sanction of Śastras or the science of melody, nor is it a safe guide for singing our rāgas Knowing all this, we are still clinging to the mechanical and uncertain guide calling it our 'Sangita Śāstra' . . .. . Rakti is the foreman and Mela is the time keeper in the workshop of music."

(Is Mela or Thāta' a Shastraic concept ? Nādarūpa Vol I pp 26-32)

मेल-पद्धति की स्वर-सम्बन्धी अव्यवस्था, रक्ति-हानि दोष तथा यान्त्रिकता के इस संक्षिप्त दिग्दर्शन के पश्चात् अब हम इसकी सहोदरा थाट पद्धति का स्वरूप निरूपण करेंगे।

* व्यंकटमखी के ७२ मेल परिशिष्ट में तालिका (ड) मे द्रष्टव्य हैं।

थाट पद्धति

दक्षिण की मेल पद्धति के ढांचे पर वर्तमान काल में १० थाटों के अंतर्गत भारतीय संगीत के रागों का वर्गीकरण करने का जो यत्न किया गया है उसका संक्षेप में विवेचन करना अब यहां क्रमप्राप्त है। पं० विष्णुनारायण भातखण्डे उपनाम चतुरपंडित इस थाट पद्धति के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, यद्यपि कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि १० थाट की पद्धति के मूल आविष्कारक कोई अन्य व्यक्ति हैं। इस पद्धति के आविष्कारक जो भी कोई रहे हों, इसका विपुल प्रचार पं० भातखण्डे के ग्रन्थों द्वारा ही हुआ है इसलिये उनके नाम के साथ इसका अभिन्न सम्बन्ध है। उनके द्वारा निरूपित १० थाट निम्नोक्त हैं :—

बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी, भैरव, पूर्वी, मारवा, तोडी।

इन थाटों की रचना के बारे में ऐसा कहा जाता है कि बिलावल के स, रे, ग, म, प, ध की छः मूर्च्छनाओं* से क्रमशः बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी इन छः थाटों की और भैरव, पूर्वी, मारवा और तोडी इन चार थाटों में क्रमशः कोमल रि ध के साथ शुद्ध मध्यम का योग, कोमल रि ध के साथ तीव्र मध्यम का योग, कोमल ऋषभ तथा तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध धैवत का योग और कोमल ऋषभ, गान्धार, धैवत के साथ तीव्र मध्यम तथा शुद्ध निषाद का योग कर के इन दस थाटों की रचना की गई है।†

हम देख चुके हैं कि कर्णाटकीय मेल पद्धति में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग निषिद्ध माना गया है। फिर भी हम जानते हैं कि उनके यहां एक स्वर के दो-दो रूपों का प्रयोग मेलों में मुक्त रूप से हुआ है। ऐसे मेलों में वैकल्पिक स्वर-संज्ञाओं के प्रयोग द्वारा तत्सम्बन्धी नियम-भंग से बचने का असफल यत्न किया गया है। अपने ही बनाए हुए नियम का भंग होने पर भी वैकल्पिक नाम दे कर स्वरों के दो-दो रूप प्रयुक्त किये गये हैं। थाट पद्धति में थाट की मूल स्वरावली में भले ही एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी इस पद्धति में एक अन्य असमंजसता उत्पन्न हुई है जो निम्नोक्त है।

जनक थाटों में पं० भातखण्डे ने केवल सात स्वरों का ही प्रयोग मान्य रखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनके जन्य रागों में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त होनेवाले कई स्वर ऐसे पाए जाते हैं जिन्हें जनक थाटों में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इतना ही नहीं, कई रागों के तो अंश या वादी स्वर ऐसे हैं जो उनके जनक थाट में कहीं नहीं हैं। इस प्रश्न का कोई तर्कसंगत उत्तर प्राप्त नहीं होता कि जो स्वर मूलरूप थाट में ही नहीं है, वह जन्य रागों में कहां से, किस नियम से आ सकता है? अथवा जन्य रागों में वादी या अंश-स्वर के रूपमें उसका कैसे प्रयोग हो सकता है? कुछ उदाहरणों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

(क) कल्याण थाट के जन्य रागों में केदार, कामोद, हमीर, बिहाग, गौडसारंग इत्यादि का समावेश माना है। इन सभी में शुद्ध मध्यम का बहुल प्रयोग पाया जाता है। और तीव्रमध्यम अल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है। इतना

---

* बिलावल के निषाद की मूर्च्छना से सरिगमपधनि — यह स्वरावली प्राप्त होती है। उसी में से शुद्ध मध्यम निकाल कर पञ्चमको स्थान देनेसे तथा कोमल निषादके स्थान पर शुद्ध निषाद रखने से तोडी थाट की निष्पत्ति हो जाती है।

† दस थाटों की स्वरावली इस प्रकार है :—

१—बिलावल—सारिगमपधनि २—काफी—सारिग्मपधनि् ३—भैरवी—सारि्ग्मपध्नि् ४—कल्याण—सारिगम्पधनि ५—खमाज—सारिगमपधनि् ६—आसावरी—सारिग्मपध्नि् ७—भैरव—सारि्गमपध्नि ८—पूर्वी—सारि्गम्पध्नि ९—मारवा—सारि्गम्पधनि १०—तोडी—सारि्ग्म्पध्नि

ही नहीं, केदार जैसे राग में शुद्ध मध्यम प्राण स्वर के रूपमें प्रतिष्ठित है और कोमल निपाद भी राग-रूप के निर्माण में काफी सहायक होता है। इससे प्रश्न होता है कि कल्याण थाट में जिन स्वरों का समूचा अभाव है ऐसे शुद्ध मध्यम और कोमल निपाद जिसमें प्रयुक्त होते हैं ऐसा केदार राग कल्याण के जन्य रागों में कैसे रखा गया है ? . इन जन्य रागों में थाट के स्वरों के अतिरिक्त जो जो स्वर प्रयुक्त होते हैं वे सब क्या केवल आगंतुक, विवादी या अनाभ्‍ स्पर्श के रूप में अथवा राग में चमत्कृति दिखाने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं ? क्या यह सत्य नहीं है कि वे कई स्थलों पर राग के अंश, प्राण या वादी का स्थान पाते हैं ?

(ख) कल्याण थाट की ही भाँति मारवा थाट तथा तज्जन्य रागो में भी ऐसी ही अव्यवस्था दिखाई देती है। मारवा थाट से उत्पन्न ललित राग का प्राण शुद्ध मध्यम ही है। सभी क्रियाकुशल गुणी इस बात को जानते हैं। उसी एक स्वर पर ललित का दारोमदार है, उसका अस्तित्व ही 'मम्म' इस शुद्ध मध्यम युक्त क्रिया पर अवलंबित है। किन्तु इस ललित के जनक के रूप में जिस मारवा थाट का चुनाव किया गया है उस थाट के मूल में ही शुद्ध मध्यम का अभाव है।

(ग) तद्वत् खमाज में शुद्ध निपाद को स्थान नही है, केवल कोमल निपाद ही रखा गया है। किन्तु उस थाट के अनेक जन्य रागो मे दोनो निपादो का प्रयोग अनिवार्य है। यथा खमाज, देस, तिलककामोद, झिंझोटी, तिलंग इत्यादि।

(घ) काफी थाट में भी केवल कोमल 'ग नि' को ग्रहण किया गया है जब कि उसके अनेक जन्य रागों में कोमल 'ग नि' के अतिरिक्त शुद्ध 'गनि' का भी विपुल प्रयोग मिलता है।

(ङ) बिलावल थाट के जन्य राग अल्हैया बिलावल का आज विपुल प्रचार है और उसमें दो निपाद का प्रयोग अनिवार्य है। बिलावल के प्राय अन्य सभी प्रकारों में भी शुद्ध निपाद के साथ-साथ कोमल निपाद का न्यूनाधिक प्रयोग मिलता है। किन्तु बिलावल थाट में कोमल निपाद को कोई स्थान नही है।

स्वयं पं० भातखण्डेजी के कहे हुए नियमानुसार थाट के सप्त स्वरो में से सभी का ग्रहण करके संपूर्ण, किसी एक का त्याग करके षाडव और किसी दो का त्याग करके औडव आदि जातियो के रागरूप बनाए जा सकते हैं, किन्तु थाट के अतिरिक्त कोई नया स्वर जन्य रागों में समाविष्ट करने का कोई नियम नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि जहां-जहां जिन जिन रागो में थाट में समाविष्ट स्वरो के अतिरिक्त जिन जिन अन्य स्वरा का प्रयोग विहित है, उनके लिए उनके थाट के नियमान्तर्गत कोई विधि नही है। यदि यह कहा जाए कि थाट में जो स्वर नही हैं, वह यदि जन्य रागो में है तो उसे आगन्तुक स्वर के रूप में समाविष्ट कर लिया जाए तब ऐसी अवस्था में थाट की नियम-व्यवस्था कैसे रहेगी ? अर्थात् यदि किसी भी थाट मे कोई भी स्वर ऊपर से समाविष्ट करने की छूट हो तो फिर पृथक्-पृथक् थाटो के अस्तित्व का नियमन कैसे होगा ? उदाहरण के लिए—बिलावल में तीव्र मध्यम का समावेश करने से कल्याण थाट अथवा कल्याण में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से बिलावल थाट, तद्वत् पूर्वी में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से भैरव थाट और भैरव में तीव्र मध्यम का समावेश करने से पूर्वी थाट, उसी प्रकार खमाज में शुद्ध निपाद जोड देने से बिलावल और बिलावल मे कोमल निपाद जोड देने से खमाज थाट का निर्माण होने लगेगा। ऐसी अवस्था मे थाटों के पृथक्-पृथक् स्वरूप का नियामक कौन सा तत्व रहेगा ?

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि पं० भातखण्डे के कहे हुए दसो थाटो में अनियमितता, अपूर्णता और असमंजसता के दोष विद्यमान हैं। उनके जन्य जनक भाव मे भी उन्ही दोषो का दर्शन होता है।

हम जानते हैं कि थाट को जनक का स्थान दिया गया है और रागो को उन जनक थाटो से जन्य माना गया है। यहां प्रश्न यही होता है कि जो गुण बीज में नहीं है, वह फल में कहा से आया, जो स्वर जनक थाट ही में नहीं हैं ऐसे स्वरों का प्रयोग उसके जन्य रागों मे कैसे समीचीन हो सकता है ? यह तो अपने ही हाथो 'मूले कुठाराघात' जैसा अन्याय नहीं हो रहा है ?

जैसे सितार मे 'चलथाट' 'अचलथाट', ये नाम पर्दे बांधने की व्यवस्था-विशेष के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं वैसे ही राग वादन के सौकर्य के लिए राग को स्वरावलि के अनुसार पर्दों को खिसकाने की जो क्रिया की जाती है उसे भी थाट मिलाना कहते हैं। इसीलिए सितार-वादक राग की फर्माइश पूछने के पहले यह पूछते हैं "कौन सा थाट मिलाएं ?" इस प्रकार वादन सौकर्य के सम्बन्ध मे प्रयुक्त हुआ 'थाट' शब्द राग वर्गीकरण मे स्थान पा गया है। वादन विधि के प्रसंग मे इस शब्द का केवल एक स्थूल स्वरावली से तात्पर्य था, किन्तु राग वर्गीकरण मे इसके साथ जनक जन्य-भाव का अर्थ भी संबद्ध हो गया, यद्यपि इसका स्वरूप स्थूल स्वरावलि-विशेष ही बना रहा।

इस प्रकार हमने रागो के स्थूल स्वर रूप से सम्बद्ध मेल और थाट पद्धति को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा। मेल पद्धति में केवल गणित पर आधृत यान्त्रिक रचना, स्वरो की वैकल्पिक संज्ञाओ को अव्यवस्था और रक्ति के प्रति दुर्लक्ष्य हमने देखा। साथ ही मेलकुलोत्पन्न थाट पद्धति की अपूर्णता, असमंजसता, अनियमितता भी हमने देखी।

उपसंहार

रागवर्गीकरण के प्रस्तुत प्रकरण में हमने मतंग-शार्ङ्गदेव के ग्रामराग-देशीराग-वर्गीकरण से ले कर वर्तमान युग की थाट पद्धति तक का विवेचनात्मक दर्शन किया। इस विवेचना से ग्राम-राग-वर्गीकरण की आज के लक्ष्य के प्रसंग में जटिलता, राग-रागिणी-वर्गीकरण की पौराणिकता, मेल-पद्धति की यान्त्रिकता एवं असमंजसता तथा थाट-पद्धति की अपूर्णता का हमने अनुभव किया।

राग-वर्गीकरण की इन पद्धतियो के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आज के लक्ष्यगत रागो के वर्गीकरण के लिए एक पूर्ण, समंजस, सुसंगत और शास्त्रीय नूतन वर्गीकरण-पद्धति की अनिवार्य आवश्यकता है। जैसे स्वरशास्त्र की गुत्थियां सुलझाने के लिए हमे भरत की शरण लेनी पड़ी है, इसी प्रकार इस अपेक्षित नूतन राग-वर्गीकरण पद्धति के लिए भी भरत की ही शरण लेना आवश्यक है। तदनुसार भरत की ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति पर आधृत नूतन वर्गीकरण हम 'प्रणव-भारती' के द्वितीय भाग में प्रस्तुत करेंगे। तद्वत् राग-रागिणी-वर्गीकरण के आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार आधुनिक लक्ष्यगत रागो का एक नूतन राग-रागिणी-वर्गीकरण भी हम प्रस्तुत करेंगे जिससे जनमानस में घुली हुई इस पद्धति की ठोस रूप से स्थापना हो सकेगी और उसे कोरी कपोल-कल्पना समझ कर उसका उपहास करने की प्रवृत्ति का अन्त हो सकेगा। इस प्रकार रागो के स्वर-रूप और भाव-रूप के समन्वय से राग-रागिणी-वर्गीकरण और मुख्यतः स्वर-रूप के आधार पर ग्राम मूर्च्छना-पद्धति से वर्गीकरण—इन दो नवीन वर्गीकरण-प्रणालियो में ग्राम-राग-वर्गीकरण से लेकर थाट पद्धति तक की सभी प्रणालियो के ग्राह्य तत्वो का समावेश और उनमें निहित कठिनाओं अथवा असमंजसताओं का परिहार हो सकेगा। रागों के आभ्यन्तर भाव-पक्ष और बाह्य स्वर-पक्ष दोनो के सर्वांगीण विचार से जो नूतन वर्गीकरण प्रस्तुत होगा वह महर्षि भरत की कृपा से निश्चय ही हमारी अद्वितीय राग-पद्धति को नवीन गौरवमय आलोक में उद्भासित करेगा।

राग-वर्गीकरण का परिशिष्ट

भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के राग-वर्गीकरण की तालिकाएं

तालिका (क) मतंग

ग्रामराग (पांच गीतियों के अन्तर्गत)

१. शुद्धा अथवा-चोक्षा गीति—षड्जग्रामान्तर्गत राग—शुद्धसाधारित, शुद्धकैशिकमध्यम।

मध्यमग्रामान्तर्गत राग—षाडव, शुद्धकैशिक।

टिप्पणी—इन चार शुद्ध रागों के अतिरिक्त मतंग ने 'पञ्चम' को भी इसी श्रेणी में गिनाई की है, किन्तु उसका लक्षण नहीं दिया है। अतः यह कहना कठिन है कि वे 'पञ्चम' को किस ग्राम का राग मानते थे। शार्ङ्गदेव ने इसे मध्यमग्राम में रखा है।

२ भिन्ना गीति—षड्ज॰ भिन्नषड्ज, भिन्नकैशिक-मध्यम।

मध्यम॰—भिन्नकैशिक, भिन्नतान।

३. गौड़ी गीति—षड्ज॰—गौडपञ्चम, गौड़कैशिक-मध्यम।

मध्यम॰—गौड़कैशिक।

४. राग गीति—षड्ज॰—टक्कराग, सौवीरक, बोट्टराग, टक्ककैशिक, वेसरषाडव। मध्यम॰—हिन्दोल, मालवपञ्चम, मालवकैशिक।

५. साधारणी गीति—षड्ज॰ शक, ककुभ, रूपसाधारित, रेवगुप्त। मध्यम॰—हर्षणपञ्चम, गान्धारपञ्चम, मतं। कुल ग्रामराग २७ जिनमें से १५ मध्यमग्राम के, १२ षड्जग्राम के।

भाषा विभाषा आदि

भाषा चतुर्विध—१. मूलभाषा, २. संकीर्ण भाषा, ३. देशज भाषा, ४. छायामात्राश्रया भाषा। ये चार प्रकार की भाषा गिनाने के बाद मतंग ने कहा है :—

पूर्वं ग्रामद्वयं प्रोक्तं ग्रामरागास्तदुद्भवाः।
ग्रामरागोद्भवा भाषा भाषाभ्यश्च विभाषिकाः॥
विभाषाभ्यश्च संजातास्तथा चान्तरभाषिकाः॥

अर्थात् पूर्वोक्त ग्रामद्वय से भाषा उत्पन्न होती है, भाषा से विभाषा और विभाषा से अन्तरभाषा उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात् ही मतंग ने ग्रामरागों के अन्तर्गत निम्नलिखित भाषा गिनाई हैं :—

टक्कराग की भाषाएं—१. श्रवणा २. श्रवणोद्भवा ३. वेरञ्जिका ४. छेवाटी ५. मालववेसरिका ६. गुर्जरी ७. सौराष्ट्री ८. सैन्धवी ९. वेसरी १०. पञ्चमा ११. रविचन्द्रा १२. अम्बाहेरी १३. ललिता १४. कोलाहली १५. गान्धारपञ्चमी १६. मध्यमग्रामदेहा।

मालवकैशिक की भाषाएं—१. शुद्धा २. आद्यवेसरिका ३. हर्षपुरी ४. माङ्गाली ५. सैन्धवी ६. आभीरी ७. खञ्जरी ८. गुर्जरी।

ककुभ की भाषाएं—१. काम्बोजा २. मध्यमग्रामिका ३. सालवाहनिका ४. भागवर्धनी ५. मुहरी ६. शकमिश्रिता ७. भिन्नपञ्चमी।

हिन्दोलक की भाषाएं—१. वेसरा २. मञ्जरी ३ छेवाटी ४. षड्जमध्यमा ५. मधुरी।

पञ्चम की भाषाएं—१. आभीरी २. भाविनी ३. माङ्गाली ४. सैन्धवी ५. गुर्जरी ६. दाक्षिणात्या ७. आन्ध्री ८. अशोद्भवा ९. श्रावणी १०. वैशिकी।

भिन्नषड्ज की भाषाएं—१. विशुद्धा २. दक्षिणा ३. गान्धारी ४. श्रीकण्ठी ५. पौराली ६. माङ्गाली ७. सैन्धवी ८. कालिन्दी ९. पुलिन्दी।

सौवीरक की भाषाएं—१. सौवीरी २. वेगमध्यमा ३. साधारिता ४ गान्धारी ५. सैन्धविकी।

भिन्नपञ्चम की भाषाएं—१. शुद्धा २. भिन्ना ३. वाराही ४. धैवतभूषिता ५. वराटी।

मालवपञ्चम की भाषा—१. मालिनी २. लोकमालिनी ।
वोट्टराग की भाषा—१. मंगली।
टक्ककैशिक की भाषा—१. वेगमध्यमा २. मालवा ३. भिन्नवालीवा (? यहाँ पर पाठ खण्डित है।)
वेसरषाडव की भाषा—१. द्राविडी २. वाह्यषाडवता।
भिन्नतान की भाषा—१. तानोद्भवा
गान्धार पञ्चम की भाषा—१. गान्धारी (? पाठ खण्डित है)
रेवगुप्त की भाषा—१. सोवरपिका।
पञ्चमषाडव की भाषा—१. शकाख्या।

इस प्रकार मतंग ने प्रायः ७७ भाषाओं का नामोल्लेख किया है और प्राय सभी के लक्षण भी अलग स्वर विस्तार सहित दिये हैं। इन्ही भाषाओं को उन्होंने 'विभाषा द्वारा भूषित' बताया है। पृथक् रूप से विभाषा का स्पष्ट निरूपण वर्तमान खण्डित उपलब्ध पाठ में नहीं है। यथा —

लक्ष्यलक्षणसंयुक्ता प्रस्तारेण समन्विता ।
उक्ता भाषा समीचीना विभाषाभिर्विभूषिता ॥

• इस भाषा निरूपण के बाद मतंग पृथक् रूप से देशी रागों के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु यह अंश आज अत्यन्त खण्डित रूप में उपलब्ध है, केवल कुछेक नाम इस प्रकरण में मिलते हैं। यथा—वच्छेल्ली, मालाली, हम्माणिका, पुलिन्दिका, कर्णाटी।

तालिका (ख) शार्ङ्गदेव

ग्रामराग (पांच गीतियों के अन्तर्गत)

१ शुद्धा गीति—षड्ज०—शुद्धकैशिकमध्यम, शुद्धसाधारित, षड्जग्राम। मध्यम०—पञ्चम, मध्यमग्राम, षाडव शुद्धकैशिक।

२ भिन्ना गीति—षड्ज०—(भिन्न) कैशिकमध्यम, भिन्नषड्ज मध्यम०—(भिन्न) तान, (भिन्न) कैशिक, भिन्नपञ्चम।

३ गौड़ी गीति—षड्ज०—गौडकैशिकमध्यम, गौडपञ्चम। मध्यम० गौडकैशिक।

४. वेसरा गीति—षड्ज०—टक्क, वेसरषाडव, सौवीर। मध्यम०—वोट्ट, मालवकैशिक, मालवपञ्चम। द्वैग्रामिक—टक्ककैशिक, हिंदोल।

५ साधारणी गीति—षड्ज०—रूपसाधार (साधारित) शक, भम्माणपञ्चम। मध्यम०—नर्त, गान्धारपञ्चम, षड्जकैशिक। द्वैग्रामिक—ककुभ।

इस प्रकार ग्रामराग कुल ३० कहे हैं।

उपराग—(आठ) शकतिलक, टक्कसैन्धव, कोकिलापञ्चम, रेवगुप्त, पञ्चमषाडव, भावनापञ्चम, नागगान्धार, नागपञ्चम।

श्रीराग, नट्ट, बङ्गाल (द्विवचन रख कर बङ्गाल राग के दो रूप कहे हैं), भास, मध्यमषाडव, रक्तहंस, कोल्हास, प्रसव, भैरव, ध्वनि, मेघ, सोम, कामोद (यहाँ भी द्विवचन रखा है), आम्रपञ्चम, कन्दर्प, देशाख्य, कैशिककुभ, नट्टनारायण। ये २० राग उपरागों से पृथक् कहे हैं और इनका किसी गीति के साथ भी संबन्ध नहीं जोड़ा गया है।

भाषाओं के जनक राग (याष्टिक मत से)—सौवीर, ककुभ, टक्क, पञ्चम, भिन्नपञ्चम, टक्ककैशिक, हिन्दोल, बोट्ट, मालवकैशिक, गान्धारपञ्चम, भिन्नषड्ज, वेसरषाडव, मालवपञ्चम, तान, पञ्चमषाडव। कुल १५। इनकी भाषाएँ क्रमश इस प्रकार गिनाई हैं —

सौवीर—१. सौवीरी २. वेगमध्यमा ३. साधारिता ४. गान्धारी।

ककुभ—१. भिन्नपञ्चमी २. काम्भोजी ३ मध्यमग्रामा, ४. रगन्ती ५ मधुरी ६. शकमिश्रा। इन भाषाओं के अतिरिक्त इस के अन्तर्गत ये विभाषा भी कही हैं—१ भोगवर्धनी २ आभीरिका ३ मधुकरी।

अन्तर भाषा—१. शालवाहनिका।

टक्क-भाषा—१. त्रवणा २ त्रवणोद्भवा ३ वैरञ्जी ४ मध्यमग्रामदेहा, ५. मालववेसरी ६ छेवाटी ७ सैन्धवी ८ कोलाहला ९. पञ्चमलक्षिता १०. सौराष्ट्री ११ पञ्चमी १२ वेगरञ्जी १३. गान्धारपञ्चमी १४ मालवी १५ तानवलिता १६ ललिता १७ रविचन्द्रिका, १८. ताना १९ अम्बाहेरिका २० दोह्या।

१५

विभाषा—१. देवारवर्धनी २. आन्ध्री ३. गुर्जरी ४. भावनी ।

पञ्चम—भाषा १. कैशिकी २ भावनी ३. तानोद्भवा ४. आभीरी ५. गुर्जरी ६. सैन्धवी ७ दाक्षिणात्या ८. आन्ध्री ९. माङ्गली १०. भावनी । विभाषा—१. भम्माणी २. आन्धालिका ।

भिन्नपञ्चम—भाषा—१. धैवतभूषिता २. शुद्धभिन्ना ३. वराटी ४. विशाला विभाषा—१ कौशली ।

टक्ककैशिक—भाषा—१. मालवा २. भिन्नवलिता । विभाषा—द्राविडी ।

हिन्दोलक—भाषा—१. वेसरी २. चूतमञ्जरी ३. षड्जमध्यमा ४. मधुरी ५. भिन्नपौराली ६ गौडी ७. मालववेसरी ८. छेवाटी ९ पिञ्जरी ।

बोट्ट—भाषा माङ्गली ।

मालवकैशिक—भाषा—१ बाङ्गाली २. माङ्गली ३ हर्षपुरी ४. मालववेसरी ५ खञ्जनी ६ गुर्जरी ७. गौडी ८. पौराली ९. अर्धवेसरी १०. शुद्धा ११ मालवरूपा १२ सैन्धवी १३ आभीरिका । विभाषा—१ काम्भोजी २. देवारवर्धनी ।

गान्धारपञ्चम—भाषा—गान्धारी ।

भिन्नषड्ज—भाषा—१. गान्धारवल्ली २. कच्छेल्ली ३. स्वरवल्ली ४ निषादिनी ५. त्रवणा ६ मध्यमा ७ शुद्धा ८ दाक्षिणात्या ९ पुलिन्दिका १० तुम्बुरा ११ षड्जभाषा १२ कालिन्दी १३. ललिता १४ श्रीकण्ठिका १५ बाङ्गाली १६ गान्धारी १७. सैन्धवी । विभाषा—१ पौराली २ मालवा ३ कालिन्दी ४ देवारवर्धनी ।

वेसरषाडव—भाषा—१ नाद्या २. बाह्यषाडवा । विभाषा—१ पार्वती २ श्रीकण्ठी ।

मालवपञ्चम—भाषा—१. वेदवती २ भावनी ३ विभावनी ।

तान—भाषा—१. तानोद्भवा ।

पञ्चमषाडव—भाषा—१ पोता ।

रेवगुप्त—भाषा—१ शका । विभाषा—१. पल्लवी ।

अन्तरभाषा—१ भासवलिता २ किरणावली ३ शकवलिता ।

कुल ९६ भाषा, २० विभाषा और ४ अन्तरभाषा ।

ऊपर उद्धृत भाषा नामों में कई स्थलों पर पुनरुक्ति दिखाई देती है। इस नाम साम्य-जनित पुनरुक्ति के लिए शार्ङ्गदेव ने कहा है कि लक्ष्य में भिन्नता होने पर भी कई भाषाओं में नाम-साम्य है। यथा :—

नामसाम्यं तु कासाञ्चिद् भिन्नानामपि लक्ष्यते ॥

(स र २।१।४७)

देशीराग

१ रागाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम)—१ शंकराभरण २ घण्टारव ३. हम्मर ४ दीपक ५ रीति ६ कर्णाटिका ७ लाटी ८. पाचाली । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम) १. मध्यमादि २ मालवश्री ३ तोडी ४ बङ्गाल ५ भैरव ६ वराटी ७ गुर्जरी ८ गौड ९ कोलाहल १० वसन्त ११ धन्यासी १२ देशी १३ देशाख्या ।

२ भाषाङ्ग—(पूर्व प्रसिद्ध नाम)—१. गाम्भीरी २ वेहारी ३ श्रसिता ४ उत्पली ५ गोली ६. नादान्तरी ७ नीलोत्पली ८ छाया ९ तरङ्गिणी १० गान्धारगतिका ११ वेरञ्जी । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम)—१ डोम्बक्री २ सावेरी ३. वेलावली ४ प्रथममञ्जरी ५ आदिकामोदिका ६ नागध्वनि ७ शुद्धवराटिका ८ नट्टा ९ कर्णाटबङ्गाल ।

क्रियाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम) १ भावक्री २. स्वभावक्री ३ शिवक्री ४ मकरक्री ५ त्रिनेत्रक्री ६. कुमुदक्री ७ दनुक्री ८ ओजक्री ९ इन्द्रक्री १० नागकृति ११. धन्यकृति १२. विजयक्री । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम)—१ रामक्री २ गौडक्री ३ देवक्री ।

उपाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम) १ कर्णाटी २ देवाल ३. तुरुष्किका । ('अधुना' प्रसिद्ध नाम) १ कौन्तली २ द्राविडी ३ सैन्धवी ४ उत्स्थानवराटिका ५ हतस्वरवराटी ६ प्रतापवराटिका (ये 'तुरुष्क तोडी' की छ छाया हैं) ७. महाराष्ट्री ८ सौराष्ट्री ९ दक्षिणा १० द्राविडी (ये चार 'गुर्जरी' हैं) ११ भुञ्जिका १२. स्तम्भतीर्थिका १३ वेलावली (दो प्रकार की—द्विवचन में कही है।) १५. भैरवी १६. कामोदा १७ सिंहली १८ छायानट्टा

१६. रामकृति २०. भल्लातिका २१. मल्हारी २२. मल्हार २३. गौडक २४. कर्णाट २५. देशवाल २६. तुरुष्क २७. द्राविड़ ।

३४ पूर्वप्रसिद्ध और ५२ अधुना प्रसिद्ध राग—यों कुल मिला कर ८६ 'देशी' राग शार्ङ्गदेव ने कहे हैं। पूर्वोक्त ग्रामराग, भाषा, विभाषा आदि कुल मिला कर २६४ राग शार्ङ्गदेव ने गिनाए हैं ।

तालिका (ग) नारद

१. रागों के प्रयोगकाल के अनुसार विभाजन

सूर्यांश राग—(विशेषत: प्रात:काल में प्रयोक्तव्य)—

१. गान्धार २. देवगान्धार ३. धन्नासी ४. सैन्धवी ५. नारायणी ६. गुर्जरी ७. बङ्गाल ८. पटमञ्जरी ९. ललिता १० आन्दोलश्रीका ११. सौराष्ट्रेय १२. जयसाक्षिक १३. मल्हार १४. सामवेदी १५. वसन्त १६. शुद्धभैरव १७. वेलावली १८. भूपाल १९. सोमराग ।

(मध्याह्न में प्रयोक्तव्य राग)—१. शंकराभरण २ बलहंस ३. देशी ४. मनोहरी ५. सावेरी ६ दोम्बुली ७. काम्भोजी ८. गोपिकाम्भोजी ९. कैशिकी १०. मधुमाधवी ११. बहुलीदय ११ मुखारी १२. मङ्गलकौशिका ।

चन्द्रमांश राग—(सायंकाल में प्रयोक्तव्य)— १ शुद्धनाट २. सालङ्ग ३ नाटी ४. शुद्धवराटिका ५. गोल ६. मालवगौड ७. श्रीराम ८. आहरी ९. रामकृति १०. रक्ती ११ छाया १२. सर्ववराटिका १३ वराटिका १४ द्राविडिका १५. देशी १६ नागवराटिका १७ कर्णाटहयगौडी ।

२. रागों की संपूर्णतादि अवस्था के अनुसार विभाजन—

संपूर्ण राग—१. देशाक्षी २. मध्यमादि ३ वसन्तभैरवी ४. शुद्धभैरवी ५. मालवी ६ नाटराग ७. मुखारी ८ आहरी ९. बलहंस १०. शुद्ध वसन्त ११. शुद्धरामक्रिया १२. शुद्ध वराटिका ।

षाडव राग—१. देवगान्धार २. नीलाम्बरी ३ श्रीराग ४. शुद्धबहुली ५. शुद्धगौल ६. ललित ■ मालवश्री ८. भूपाल ९. पद्मश्री १०. तुरुष्की ११. तुरुष्की ।

औडव राग—१. धन्यासी २ सावेरी ३. गुर्जरी ४. मधुमाधवी ५. मेघरञ्जी ६. वेलावली ७. रामकृति ८. नारायणी ।

३. लिंग के अनुसार राग-विभाजन

पुलिङ्ग राग—१ बङ्गाल २. सोमराग ३. श्रीराग ४ भूपाली ५. छायागौड ६. शुद्धहिन्दोलिका ७ आन्दोली ८ दोम्बुली ९. कर्णाट १०. गौड ११. फडमञ्जी १२. शुद्धनाटी १३. मालवगौलक १४. छायानाटी १५ कोलाहल १६. सौराष्ट्री १७. वसन्त १८. शुद्धसारंग १९. भैरवी २०. रागध्वनि ।❀

स्त्री राग—१. तुरुष्की २ तुरुष्कतुरुष्की ३. मल्हारी ४. माहुरी ५ पौरालिकी ६. काम्भारी ७. भल्लाती ८. सैन्धवी ९ सालङ्गाख्या १०. गान्धारी ११. देवक्री १२ देशिनी १३ वेलावली १४. बहुली १५. गुण्डक्री १६. घुर्जरी १७. वराटी १८. द्राविडी १९. हंसी २०. गौडी २१. नारायणी २२ आहरी २३. मेघरञ्जी २४. मिश्रनाटा ।

नपुंसक राग—१. कैशिकी २. ललित ३. धन्नाशी ४. कुरञ्जिका ५. सौराष्ट्री ६. द्रावडी ७ शुद्धा ८. नागवराटिका ९. कौमोदकी १०. रामक्री ११ सावेरी १२. बलहंस १३. सामवेदी १४. शंकराभरण ।

४. रागाङ्ग राग—१. मध्यमादि २. मालवश्री ३ श्रीका ४. जयसाक्षिका ५. वराटी ६. घूर्जरी ७. गौड ८. कोलाहल ९. वसन्त १०. धनाश्री ११. देश १२. देशाख्या १३. बङ्गाल ।

५ पुरुष रागों के साथ स्त्री रागिणियों का सम्बन्ध

(प्रथम मत)—१ भूपाल २. भैरव ३. श्रीराग ४. फडमञ्जरी ५ वसन्त ६. मालवी ७. नाट ८. बङ्गाल । ये आठ पुरुषराग और इनकी स्त्रियाँ इस प्रकार कही हैं :—

भूपाल की स्त्रियाँ—१. वेलावली २. मल्हारी ३. बहुली ।

भैरव की स्त्रियाँ—१. देवक्रिया २. पौराली ३. काम्भारी ।

❀ पुलिंग रागों के अन्तर्गत अनेक स्त्रीलिंगवाची नामों का संग्रह किया गया है यह विशेष ध्यान देने की बात है ।

पञ्चमअरी की स्त्रियाँ—१. श्रीरागति २ माम्मीजी। ३. गह्नाती ४ कुरंगिका ५. देशी ६. मनोहरी। ७ तुरुडी।

नाट की स्त्रियाँ—१. सारङ्गनाट २ श्राहरी।

बङ्गाल की स्त्रियाँ—१. नारायणी २. गान्धारी ३. रक्षी।

वसन्त की स्त्रियाँ—१. वराटी २ द्रावडी ३ हंसी।

मालव की स्त्रियाँ—१ गुएडक्रिया २. गुर्जरी ३ गौडी।

(दूसरे मत से)—छ पुरुषराग और प्रत्येक की स्त्रियाँ—

१. श्रीराग—१ गौडी २ कोलाहली ३. द्रावली ४ आन्दोलिनी ५ माधवी ६. देवगान्धारी।

२. पञ्चम—१ शुद्धनाटा २ सावेरी ३. सैन्धवी ४ मालती ६. कौमोदकी।

३. मेघराग—१ सोराष्ट्री २ काश्मीरी ३ बङ्गाली ४. मधुमाधवी ५ देवक्री ६ भूपाली।

४. नाटनारायण—१ ककुभा २ माधवी ३ विदग्धा अभिसारिका ५ त्रिवेणी ६ मेघरञ्जी।

बसन्त और नाटनारायण की स्त्रियों के नाम उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि आगे पाठ खण्डित है।

तालिका (घ) संगीतोपनिषत्सारोद्धार (वाचनाचार्य सुधाकलश)

छ पुरुष राग और प्रत्येक की छः भाषा:—

१ श्रीराग—गौडी, कोलाहला, आन्धाली, द्रविड, मालवकैशिकी, देवगान्धारी।

२. वसन्त—आन्दोला, कैशिकी, प्रथममञ्जरी, गुण्ड-गिरी, देवशाखा, रामगिरी।

३. भैरव—भैरवी, गुर्जरी, वेलाकुली, कर्णाटी, रक्त-हंसा, भाषा।

४ पञ्चम—त्रिगुणा, स्तम्भतीर्थी, आभीरी, ककुभा, वइराडी, सामेरी।

५. मेघराग—बङ्गाला, मधुरा, कामोदा, धोरसाटिका, देवगिरी, देवाला।

६. नट्टनारायण—तोटिका, नट्टा, डुम्बी, मल्लारी, सिन्धुमल्लारी।

तालिका (ङ) संगीतदामोदर (शुभंकर)

छ पुरुष राग और प्रत्येक की पाँच स्त्रियाँ:—

१. भैरव—भैरवी, कौशिकी, भाषा, वेलावरी बङ्गाली।

२. वसन्त—आन्दोलिता, देशाख्या, लोला, प्रथम, मञ्जरी, मन्दारी।

३. मालवकैशिक—गौडी, गुण्डगिरी, वराडी, श्यामावती, कर्णाटी।

४ श्रीराग—गान्धारी, देवगान्धारी, मालवश्री, सावेरी, रामकिरी।

५. मेघ—ललिता, मालसी, गौरी, लाटी, देवकिरी।

६. नटनारायण—तारामणि, आभारी, कामोदी, गुर्जरी, ककुभा।

तालिका (च) रसकौमुदी (श्रीकण्ठ)

११ मेल और उनके अन्तर्गत २५ पुरुषराग तथा १३ स्त्री रागिणी—

१ मुखारिका मेल—मुखारी (स्त्री०)

२. मालवगौडमेल—पुरुष० — मालवगौड, पञ्चम, भैरव, बङ्गाल, ललित, कर्णाट। स्त्री० सौराष्ट्री, गुर्जरी, मल्हारी, बहुली, पाली, गौडी।

३ श्रीरागमेल—पु०—श्रीराग, देवगान्धार, स्त्री० मालवश्री, धन्यासी, भैरवी।

४ विशुद्धनट्टमेल—पु०—शुद्धनट्ट।

५ कर्णाटगौडमेल—पु०—कर्णाटगौड, सामन्त, शुद्धवंगाल, घण्टारव, स्त्री० तोडी।

६. वसन्तरागमेल—पु० वसन्त—भूपाली।

७ केदाररागमेल—पु० केदार, नट्टनारायण, शंकरा-भरण। स्त्री० वेलावली।

८. मल्हारमेल—पु० मल्हार, गौडमल्हार, स्त्री० कामोदी।

९. पूर्णदेशाक्षिकामेल—स्त्री० देशाक्षिका।

१० कल्याणमेल—पु० कल्याण, कामोद हमीर।

११. सारंगरागमेल—पु० सारंग।

तालिका (छ) रागमाला (पुण्डरीक विट्ठल)

छः पुरुषराग, प्रत्येक की पाँच स्त्रियाँ और पाँच पुत्र :

१ शुद्धभैरव—स्त्री—धन्यासी, भैरवी, सैन्धवी, मारवी, श्रासावरी। पुत्र—भैरव, शुद्धललित, पञ्चम, परज, बङ्गाल।

२ हिन्दोल—स्त्री—भूपाली, वराटी, तोड़ी, प्रथममञ्जरी, तुरुष्कतोडिका। पुत्र—वसन्त, शुद्धवङ्गाल, श्याम, सामन्त, कामोद।

३. देशिकार—स्त्री—रामक्री, बहुली, देशी, श्री, गुर्जरी। पुत्र—ललित, विभास, सारंग, त्रिवण, कल्याण।

४. श्रीराग—स्त्री—गौडी, पाडी, गुणकरी, नादरामक्रिया, गुण्डक्री। पुत्र—टक्क, देवगान्धार, मालव, शुद्धगौड़, कर्णाटवङ्गाल।

५ शुद्धनाट—स्त्री—मालवश्री, देशाक्षी, देवक्री, मधुमाधवी, माहैरी। पुत्र—जिजावन्त, सालग, नाट, कर्णाटक, छायानाट, हमीरनाट।

६ नटनारायण—स्त्री—वेलावली, काम्बोजी, सावेरी, सुहवी, सौराष्ट्री। पुत्र—मल्हार, गौड़, केदार, शंकराभरण, विहागड़ा।

तालिका (ज) संगीतदर्पण (दामोदर पण्डित)

संगीतदर्पण में 'शिवमत' 'हनुमन्मत' तथा 'रागार्णव मत' के नाम से तीन पृथक तालिकाएं राग-रागिनी की दी गई हैं और इन तीन तालिकाओं के बाद राग-रागिणियों के ध्यान तथा विवरण हनुमन्मत के अनुसार दिए हैं और इस मत में समाविष्ट रागों के अतिरिक्त भी कुछेक स्त्री-पुरुष राग कहे हैं जो संभवतः लेखक को स्वयं मान्य रहे होंगे। ये सभी नामावलियाँ नीचे प्रस्तुत हैं।

१. शिवमत

छः पुरुष तथा प्रत्येक की छः-छः स्त्रियाँ।

श्रीराग—मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी।

वसन्त—देशी, देवगिरि, वराटी, तोडिका, ललिता, हिन्दोली।

भैरव—भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैन्धवी।

पञ्चम—विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, बडहंसिका, मालवी, पटमंजरी।

मेघराग—मल्लारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी, हरशृङ्गारा।

नट्टनारायण—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी, नट्टहम्वीरा।

२. हनुमन्मत

छः पुरुष राग तथा प्रत्येक की पाँच-पाँच रागिणी।

भैरव—मध्यमादि, भैरवी, बङ्गाली, वराटी, सैन्धवी।

कौशिक—तोडी, खम्भावती, गौरी गुणक्री, ककुभा।

हिन्दोल—वेलावली, रामकिरी, देशाख्या, पटमंजरी, ललिता।

दीपक—केदारी, कानडा, देशी, कामोदी, नाटिका।

श्रीराग—वासन्ती, मारवी, मालवश्री, धनासिका, आसावरी।

मेघराग—मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी, टंका।

इस तालिका में समाविष्ट पुरुष-स्त्री-रागों के अतिरिक्त निम्नलिखित नाम के पुरुष-स्त्री रागों का भी ग्रन्थकार ने विवरण दिया है किन्तु इनका परस्पर संबंध नहीं जोड़ा है अर्थात् यह नहीं कहा है कि किस राग की कौन-सी भार्या है। ये नाम इस प्रकार हैं :—

पुरुष राग—कल्याणनाट, पंचम, शंकराभरण, बड़हंस, विभास।

स्त्री रागिणी—सारङ्गनट्टा, देवगिरि, सोरठी, त्रिवणा, पहाड़ी, रेवा, कुडाई, आभीरी।

३. रागार्णव मत

छः राग तथा प्रत्येक के आश्रित पांच-पांच राग (रागिनी नहीं) छ।

छ यह ध्यान देने की बात है कि अधिकतर आश्रित रागों के नाम स्त्रीलिङ्गवाची हैं। फिर भी उन्हें स्त्री न कह कर पुरुष ही कहा गया है।

भैरव—बङ्गाली, मध्यमादि, गुर्णक्री, वसन्तक, धनाश्री।

पञ्चम—ललिता, गुजरी, देशी, वराडी, रामकृत्।

नाट—नट्टनारायण, गान्धार, सालग, केदार, कर्णाट।

मल्लार—मेघमल्लारिका, मालकौशिक, पटमञ्जरी, आसावरी। (यहाँ पांच के स्थान पर चार ही नाम दिए हैं)।

गौड—हिन्दोल, त्रिवण, आन्धारी, गौरी, पटहंसिका।

देशाख्य—भूपाली, कुड़ायी, कामोदी, नाटिका, वेलावली।

तालिका (झ) रागतरङ्गिणी (लोचन)

संस्थान-पद्धति

संस्थान	जन्य-राग-नाम
१. भैरवी	(२) भैरवी, नीलावरी
२. टोडी	(२) टोडी
३. गौरी	(२७) गौरी, मालवः, श्री गौरी, चेतीगौरी, पहाडीगौरी, देशीटोडी, देशकार., गौडः, त्रिवण, मूलतानी धनाश्री, वसंतव., गौरा, भैरव, बिभास., रामकली, गुर्जरी, बहुली, रेवा, भटियारः, पट्रागः, मालश्रीः, पंचमः, जयतश्रीः, आसावरी, देवगान्धारः, सिंधो आसावरी, गुणकरी।
४. कर्णाटः	(२०) कर्णाटः, कानर, देशी, वागीश्वरी कानरः, खमाचो, सोरठः, परजः, मारुः, जैजयंती, ककुभः, कामोदः, कामोदी, केदारी, गौरः, मालकौशिक, हिंडोलः, सुहाराई, अड़ानः, गारेकानरः, श्रीः।
५. केदारः	(१३) केदारः, केदारनाटकः, अहीरनाटः, खंभावती, शंकराभरण, विहागरा, हंमीरः, श्यामः, छायानट्टः, भूपाली, भीमपलासिका, कौशिकः, मारुः।
६. ईमनः	(४) ईमनः, शुद्धकल्याणः, पूरिया, जयकल्याणः,
७. सारंगः	(५) सारंगः, पटमंजरी, वृन्दावनी, सामन्त, बडहंसकः,
८. मेघः	(१०) मेघः, मल्लारः, गौडसारंगः, नाटः, वेलावली, मल्लहिया, शुद्ध सूरवः, देशाख, शुद्धनाटः।
९. धनाश्रीः	(२) धनाश्री., ललितः।
१०. पूर्वी	(१) पूर्वी।
११ मुखारी	(१) मुखारी।
१२. दीपकः	(१) दीपकः।

टिप्पणी—लोचन की संस्थान-पद्धति संभवतः उनकी अपनी ही उद्भावना है। और उसके कोई अनुयायी ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं। इस पद्धति का विवेचन 'प्रणव भारती' (राग शास्त्र) में किया जायगा।

तालिका (ञ) रामामात्य के मेल तथा जन्य राग

मेल नाम तथा क्रमांक	रामामात्योक्त स्वर-रूप	हिन्दुस्तानी स्वर-नामों के अनुसार स्वर-रूप	जन्य राग
१. मुखारी	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां (भरतोक्त शुद्ध स्वरावली)	सा – रि॒ – रि – म – प – ध॒ – ध – सां	१. मुखारी।
२. मालवगौड़	सा – रि – च्यु. म. गा. – म – प – ध – च्यु प. नि. – सां	सा – रि – ग – म – प – ध॒ – नि – सां	१. मालवगौड २. ललिता ३. बौली ४. सौराष्ट्र ५. गुर्जरी ६. मेचबौली ७. फलमंजरी ८. गुंडक्री ९. सिंधुरामक्री १०. छायागौळ ११. कुरंजी १२. कंनड-बंगाल १३. मंगलकैशिक १४. मलहरी।
३. श्रीराग	सा – पंच. रि. – सा. गां – म – प – पंच. ध – कै. नि. – सां	सा – रि – ग॒ – म – प – ध – नि॒ – सां	१. श्रीराग २. भैरवी ३. गौळी ४. धन्यासी ५. शुद्ध-भैरवी ६. वेलावली ७. मालवश्री ८. शंकराभरण ९. आधाली १०. देवगान्धार ११. मध्यमादि।
४. सारंगनाट	सा – पंच. रि. – च्यु. म. गा. – म – प – पंच. ध – च्यु प. नि – सां	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां	१ सारंगनाट २. सावेरी ३. सालगभैरवी ४. नाट-नारायणी ५. शुद्धवसन्त ६. पूर्वगौड़ ७. कुन्तलवराळी ८ भिन्नषड्ज ९. नारायणी।
५. हिंदोल	सा – पंच. रि. – सा. गा – म – प – ध – कै नि. – सां	सा – रि – ग॒ – म – प – ध॒ – नि॒ – सां	१. हिंदोल २. मार्गहिंदोल ३. भूपाल।
६. शुद्धरामक्रिया	सा – रि – च्यु म. गा – च्यु पं. म. प – ध – च्यु. प. नि. सां	सा – रि॒ – ग – म॒ – प – ध॒ – नि – सां	१. शुद्धरामक्रिया २. बौली ३. आर्द्रदेशी ४. दीपक
७. देशाक्षी	सा – षट्. रि. – च्यु. म. गा. – म – प – पंच. ध – च्यु. ध नि – सां	सा – ग॒ – ग – म – प – ध – नि – सां	१. देशाक्षी
८. कैनडगौळ	सा – षट्. रि – च्यु. म. गा. – म – प – पंच. ध. कै. नि. – सां	सा – ग॒ – ग – म – प – ध – नि॒ – सां	१. कंनडगौळ २. घंटारव ३. शुद्धवंगाल ४. छायानट ५. तुरुष्कतोडी ६. नागध्वनि ७. देवक्रिया
९. शुद्धनाट	सा – षट्. रि. – च्यु. म. गा. – म – पं – षट्. ध. – च्यु. ध. नि. – सां	सा – ग॒ – ग – म – प – नि॒ – नि – सां	१. शुद्धनाट

१०. महीरी	सा – पच. रि. – सा. गा – म – प – ध – च्यु. प. नि. – सां	सा – रि – ग् – म – प – ध् – नि – सां	१	महीरी
११ नादरामक्रिया	सा – रि – सा. गां. – म – प – ध – च्यु. प. नि. – सां	सा – रि् – ग् – म – प – ध् – नि – सां	१.	नादरामक्रिया
१२. शुद्धवराळी	सा – रि – ग – च्यु प म. – प – ध – च्यु प. नि. सा	सा – रि् – रि – म् – प – ध् – नि – सां	१.	शुद्धवराळी
१३. रीतिगौळ	सा – रि – ग – म – प – पच. ध. – कै. नि – सां –	सा – रि् – रि – म – प – ध – नि् – सां	१.	रीतिगौळ
१४. वसन्तभैरवी	सा – रि – च्यु म गा – म – प – ध – कै नि – सा	सा – रि् – ग – म – प – ध् – नि् – सां	१	वसन्तभैरवी
१५. केदारगौळ	सा – पंच रि – च्यु म गा. – म – प – पंच ध – च्यु प. नि. (कै नि ?)	सा – रि – ग – म – प – ध – नि्	१.	केदारगौळ
१६. हुजुजी	सा – रि – अ गा – म – प – ध – को नि – सा	सा – रि – ग – म – प ध् – नि – सां	१.	हुजुजी
१७ सामवराळी	सा – रि – ग – म – प – ध – मा. नि – सा	सा – रि – रि – म – प – ध – नि – सां	१.	सामवराळी
१८ रेवगुप्ति	सा – रि – अं. गां. – म – प – ध – नि – सा	सा – रि – ग – म – प – ध् – ध – सां	१	रेवगुप्ति
१९. सामन्त	सा – पट रि – अं गां – म – प – पट् ध – का. नि. – सां	सा – ग् – ग – म – प – नि् – नि – सां	१.	सामन्त
२०. काम्भोजी	सा – पच. रि – अ गा. – म – प – पच. ध. – का. नि – सां	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां	१.	काम्भोजी

टिप्पणी—प्रथम पन्द्रह मेलों में च्युतषड्जनिषाद तथा काकली निषाद को एवं च्युतमध्यमगान्धार तथा अन्तर गान्धार को एकरूप माना गया है। और अन्तिम पाँच मेलों में इन्हें भिन्न मान कर वैकल्पिक मेल प्रस्तुत किये हैं।

तालिका (ट) रागविबोध (सोमनाथ)

२३. मेल नाम तथा प्रत्येक के जन्य राग

१. मुखारी	१. मुखारी २. तुरुष्कतोडी
२. रेवगुप्ति	१. रेवगुप्ति
३. सामवराली	१. सामवराली २. वसन्तवराली
४. तोडी	१. तोडी
५. नादरामक्री	१. नादरामक्री
६. भैरव	१. भैरव २ पौरविका
७. वसन्त	१ वसन्त २ टक ३. हिजेंज ४ हिंदोल
८. वसन्तभैरवी	१ वसन्तभैरवी २ मार्गविका
९. मालवगौड	१. मालवगौड २ चेत्तीगौड ३ पूर्वी ४. पाडी ५ देवगान्धार ६ गोएडक्रिया ७ गुरुजी ८. बहुली ९ रामक्री १०. पावक ११ आसावरी १२ पञ्चम १३. वङ्गाल-१४ शुद्धललित १५ गुर्जरी १६. परज १७ शुद्धगौड।
१० रीतिगौड	१ रीतिगौड
११ आभीर	१ आभीर
१२ हम्मीर	१ हम्मीर २. विहङ्गड ३ केदार
१३ शुद्धवराटी	१ शुद्धवराटी
१४ शुद्धरामक्री	१ शुद्धरामक्री २ ललित ३ जैताश्री (देशकार) ४ सावणी ५ देशी।
१५ श्रीराग	१ श्रीराग २ मालवश्री ३ धन्याशिका ४ भैरवी ५ धवला ६ सैधवी।
१६ कल्याण	१. कल्याण।
१७ काम्बोदी	१. काम्बोदी २ देवक्री।
१८ मल्लारी	१ मल्लारी २. नट्टमल्लारी ३. पूर्वगौड ४. भूपाली ५. गौड ६ कन्नराभरण ७ नटनारायण ८. नारायणगौड ९ केदार (द्वितीय) १०. सालङ्ग (ङ्ग ?) नाट ११ वेलावली १२ मध्यमादि १३ सावेरी १४ सौराष्ट्री।
१९. सामन्त	१. सामन्त।
२०. कर्णाटगौड	१ कर्णाटगौड २. भङ्गाल ३. नागध्वनि ४. शुद्धवङ्गाल ५. कर्णनाट इराक़ (तुरुष्कतोडी)।
२१. देशाक्षी	१ देशाक्षी।
२२. शुद्धनाट	१ शुद्धनाट।
२३. सारङ्ग	१. सारङ्ग।

टिप्पणी—सोमनाथ के 'रागविबोध' की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि मेल पद्धति को ग्रहण करते हुए भी उन्होंने कुछेक जन्य रागों के पुरुष-स्त्री के रूप में 'देवतामय' ध्यान भी दिए हैं।

(ठ) सद्रागचन्द्रोदय, रागमंजरी (पुण्डरीक विट्ठल)

पुण्डरीक विट्ठल की 'रागमाला' में राग-रागिणी-वर्गीकरण का जिस प्रकार उल्लेख मिलता है वह हम ऊपर तालिका (छ) में देख चुके हैं। अपने दो अन्य ग्रन्थों में यानी 'सद्रागचन्द्रोदय' और 'रागमंजरी' में उन्होंने मेल-पद्धति के अनुसार राग वर्गीकरण किया है। 'सद्रागचन्द्रोदय' में प्रायः रामामात्य का ही अनुसरण करते हुए एक-दो परिवर्तनों के साथ रामामात्य के ही २० मेल ग्रहण किये हैं और 'रागमंजरी' में किंचित् परिवर्तन से केवल १५ मेल ग्रहण किये हैं। एक ही ग्रन्थकार द्वारा अपने भिन्न भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रीति से राग-वर्गीकरण प्रस्तुत करना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उस काल में स्वर-नामों की ही भांति ही मेल या 'राग' के बारे में भी ग्रन्थकार के मनमाने निरूपण को पूरा अवकाश था। यहाँ इन दो ग्रन्थों की मेल राग तालिका प्रस्तुत करने से कोई विशेष प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। अतः हम इस विषय के विस्तृत निरूपण को 'प्रणव भारती' (राग शास्त्र) में समाविष्ट करने की दृष्टि से यहीं छोड़ देते हैं।

तालिका (ड) चतुर्दण्डिप्रकाशिका (व्यंकटमखी)

व्यंकटमखी ने शुद्ध विकृत कुल १२ स्वर स्वीकार कर के सप्तक का 'पूर्वांग' और 'उत्तरांग' में विभाजन किया है। प्रत्येक 'अंग' में से चार चार स्वरों का ग्रहण करके गणित-पद्धति से ३६ पूर्वमेल (शुद्धमध्यमवाले) और ३६ उत्तरमेल (तीव्र मध्यम वाले) ग्रहण कर के कुल ७२ मेलों की गणितसिद्ध रचना की है। इन मेलों में से केवल १९ को

ही रागजनक माना गया है। शेष सब विवादी-दोष युक्त होने से अनुपयोगी माने गए हैं।

व्यंकटमखी के पूर्वांग और उत्तरांग के स्वर इस प्रकार हैं:—

पूर्वांग—षड्ज, शुद्ध ऋषभ, शुद्ध गान्धार, साधारण गान्धार, अन्तर गान्धार, शुद्ध मध्यम अथवा वराळी (तीव्र) मध्यम।

उत्तरांग—पञ्चम, शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद, कैशिक निषाद, काकली निषाद, तार षड्ज।

छ:—छः स्वरों के इन समूहों में से चार-चार का ग्रहण कर के व्यंकटमखी ने छः स्वर-समूह पूर्वांग के और छः उत्तरांग के बनाए हैं। पूर्वांग के एक-एक समूह के साथ उत्तरांग के एक छहों समूहों को जोड़ कर ६ × ६ = ३६ पूर्व मेल शुद्ध म० के और ३६ उत्तर मेल तीव्र म० के इस प्रकार कुल ७२ मेल की रचना की है। पूर्वांग-उत्तरांग के ये स्वर-समूह व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञाओं के अनुसार निम्नलिखित हैं:—

पूर्वार्द्ध		उत्तरार्द्ध	
व्यंकटमखी की स्वर संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	व्यंकटमखी की स्वरसंज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा
स र ग म (मि)	स — रि॒ — रि — म (म)	प — ध — न — (सं)	प — ध॒ — ध (सं)
स र गि म (मि)	स — रि॒ — ग॒ — म (म)	प — ध — नि — (सं)	प — ध॒ — नि॒ (सं)
स र गु म (मि)	स — रि॒ — ग — म (म)	प — ध — नु — (सं)	प — ध॒ — नि (सं)
स रि गि म (मि)	स — रि — ग॒ — म (म)	प — धि — नि — (सं)	प — ध — नि॒ (सं)
स रि गु म (मि)	स — रि — ग — म (म)	प — धि — नु — (सं)	प — ध — नि (सं)
स रु गु म (मि)	स — ग॒ — ग — म (म)	प — धु — नु — (सं)	प — नि॒ — नि (सं)

७२ मेल-सारिणी

(३६ पूर्व मेलों की स्वरावली दिखा कर उत्तर मेलों के नाममात्र का उल्लेख कर दिया गया है क्योंकि उनमें शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम के प्रयोग के सिवाय कोई अन्तर नहीं है।)

समूह १

क्रमांक	(पूर्व मेल शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
१	कनकांगी	स र ग म प ध न (सं)	स रि॒ रि म प ध॒ ध (सं)	सालग	३७
२	रत्नांगी	स र ग म प ध नि (सं)	स रि॒ रि म प ध॒ नि॒ (सं)	जलार्णव	३८
३	गानमूर्ति	[illegible] र ग म प ध नु (सं)	स रि॒ रि म प ध॒ नि (सं)	झालवराली	३९
४	वनस्पति	स र ग म प धि नि (सं)	स रि॒ रि म प ध नि॒ (सं)	नवनीतम्	४०
५	मानवती	स र ग म प धि नु (सं)	स रि॒ रि म प ध नि (सं)	पावनी	४१
६	तानरूपि	स र ग म प धु नु (सं)	स रि॒ रि म प नि॒ नि (सं)	रघुप्रिया	४२

समूह २

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल(तीव्र म)	क्रमांक
७	सेनावती	स र गि म प ध न (सं)	स रि ग् म प ध् ध (सं)	गावाम्बोधि	४३
८	हनुमत् तोड़ी	स र गि म प ध नि (सं	स रि् ग् म प ध नि् (सं)	भवप्रिया	४४
९	धेनुक	स र गि म प ध नु (सं	स रि् ग म प ध नि (सं)	शुभपन्तुवराली	४५
१०	नाटकप्रिया	स र गि म प धि नि (सं)	स रि् ग् म प ध नि् (सं)	षड्विधमार्गिणी	४६
११	कोकिलप्रिया	स र गि म प धि नु (सं)	स रि् ग म प ध नि (सं)	सुवर्णांगी	४७
१२	रूपावली	स र गि म प धु नु (सं)	स रि् ग् म प नि् नि (सं)	दिव्यमणि	४८

समूह ३

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल(तीव्र म)	क्रमांक
१३	गायकप्रिया	स र गु म प ध न (सं)	स रि् ग म प ध् ध (सं)	धवलाम्बरी	४९
१४	वकुलाभरण	स र गु म प ध नि (सं)	स रि् ग म प ध् नि् (सं)	रामनारायणी	५०
१५	मायामालवगौड	स र गु म प ध नु (सं)	स रि ग म प ध् नि (सं)	कामवर्धनी	५१
१६	चक्रवाक	स र गु म प धि नि (सं	स रि् ग म प ध नि् (सं,	रामप्रिया	५२
१७	सूर्यकांत	स र गु म प धि नु (सं)	स रि् ग म प ध नि (सं)	गमनश्रम	५३
१८	हाटकाम्बरी	स र गु म प धु नु (सं)	स रि् ग म प नि् नि (सं)	विश्वम्भरी	५४

समूह ४

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल तीव्र म	क्रमांक
१९	झंकारध्वनि	स रि गि म प ध न (सं)	स रि ग् म प ध् ध (सं)	श्यामलाङ्गी	५५
२०	नटभैरवी	स रि गि म प ध नि (सं)	स रि ग् म प ध् नि (सं)	षण्मुखप्रिया	५६
२१	कीरवाणी	स रि गि म प ध नु (सं)	स रि ग् म प ध् नि (सं)	सिंहेन्द्रमध्यम	५७
२२	खरहरप्रिया	स रि गि म प धि नि (सं)	स रि ग् म प ध नि् (सं)	हेमवती	५८
२३	गौरीमनोहरी	स रि गि म प धि नु (सं)	स रि ग् म प ध नि (सं)	धर्मवती	५९
२४	वरुणप्रिया	स रि गि म प धु नु (सं)	स रि ग् म प नि् नि (सं)	नीतिमती	६०

समूह ५

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
२५	माररञ्जनी	स रि गु म प ध न (सं)	स रि ग म प ध् ध (सं)	कान्तामणि	६१
२६	चारुकेशी	स रि गु म प ध नि (सं)	स रि ग म प ध् नि् (सं)	ऋषभप्रिया	६२
२७	सरसांगी	स रि गु म प ध नु (सं)	स रि ग म प ध् नि (सं)	लताङ्गी	६३
२८	हरिकाम्भोजी	स रि गु म प धि नि (सं)	स रि ग म प ध नि् (सं)	वाचस्पति	६४
२९	धीरशंकराभरण	स रि गु म प धि नु (सं)	स रि ग म प ध नि (सं)	मेचकल्याणी	६५
३०	नागानन्दिनी	स रि गु म प धु नु (सं)	स रि ग म प नि् नि (सं)	चित्राम्बरी	६६

समूह ६

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
३१	यागप्रिया	स रु गु म प ध न (सं)	स ग॒ ग म प ध॒ ध (सं)	सुचरित्र	६७
३२	रागवर्धनी	स रु गु म प ध नि (सं)	स ग॒ ग म प ध॒ नि॒ (सं)	ज्योतिस्वरूपिणी	६८
३३	गांगेयभूषणी	स रु गु म प ध नु (सं)	स ग॒ ग म प ध॒ नि (सं)	धातुवर्धनी	६९
३४	वागधीश्वरी	स रु गु म प धि नि (सं)	स ग॒ ग म प ध नि॒ (सं)	नासिकाभूषणी	७०
३५	शूलिनी	स रु गु म प धि नु (सं)	स ग॒ ग म प ध नि (सं)	कोसल	७१
३६	चलनाट	स रु गु म प धु नु (सं)	स ग॒ ग म प नि॒ नि (सं)	रसिकप्रिया	७२

व्यंकटमखी के जनक मेल तथा जन्य राग

जनक मेल	जन्यराग
१. मुखारी	१. मुखारी
२. सामवराली	१. सामवराली
३. भूपाल	१. भूपाल २ भिन्नषड्ज
४ वसन्तभैरवी	१. वसन्तभैरवी
५ गौळ	१ गौळ २ गुण्डक्रिया ३ सालंगनाट ४ नादरामक्रिया
	५ ललिता ६ पाडी ७ गुर्जरी ८, बहुली ९ मल्लहरी
	१०, सावरी ११ छायागौळ १२, पूर्वगौळ १३, कर्णाटक
	१४ बङ्गाल १५ सौराष्ट्र
६ आहुरी	१ आभेरी २ हिंदोलवसन्त
७. भैरवी	१. भैरवी २. हिन्दोल ३ आहीरी ४. घंटारव ५. रीतिगौळ ।
८. श्रीराग	१. श्री २ सालगभैरवी ३ धन्यासी ४. मालवश्री ५. देवगान्धार
	६. आन्धाली ७ वेलावली ८, कनडगौळ ।
९. हेजुज्जी	१ हेजुज्जी २. रेवगुप्ती
१०. कांभोजी	१ कांभोजी २ केदारगौळ ३ नारायणगौळ
११. शंकराभरण	१. शंकराभरण २ आरभी ३ नागध्वनि ४ साम ५ शुद्धवसन्त
	६ नारायणदेशाक्षी ७ नारायणी ।
१२ सामन्त	१. सामन्त
१३. देशाक्षी	१ देशाक्षी
१४. नाट	१ नाट
१५ शुद्धवराळी	१ शुद्धवराळी
१६. पंतुवराळी	१, पंतुवराळी
१७ शुद्धरामक्रिया	१ शुद्धरामक्रिया
१८. सिंहरव	१ सिंहरव
१९. कल्याणी	१. कल्याण

द्वितीय खंड

क्रियात्मक

कोमल आसावरी

आरोह-अवरोह—सारि॒मप ध॒सां, रि॒॑ऽनि॒ध॒ऽप ध॒ऽमग॒रि॒सा।
जाति—औडव-षाडव-सम्पूर्ण।
ग्रह—षड्ज।
अंश—ऋषभ, धैवत; उपांग—गान्धार, निषाद।
न्यास—पंचम।
अपन्यास—मध्यम।
विन्यास—षड्ज।
स्वर-संगति—ध॒-म, रि॒॑-नि॒।
मुख्य अंग—रि॒म पध॒ऽ मग॒ रि॒।
समय—प्रातःकाल।
प्रकृति—मृदु गंभीर।

विशेष विवरण

कोमल आसावरी में ऋषभ, गान्धार, धैवत, और निषाद कोमल लगते हैं, मध्यम शुद्ध लगता है। यों देखने से इसके स्वर भैरवी के-से प्रतीत होते हैं, किन्तु भैरवी के और इसके चलन में महद् अन्तर है। इसके आरोह में गान्धार तथा निषाद वर्ज्य हैं, और अवरोह में पञ्चम वक्र रहता है। यथा—सा रि॒ म प ध॒ सां, सां रि॒॑ नि॒ ध॒ऽप ध॒ऽम ग॒ रि॒ऽ सा। आसावरी के अंग को दिखाने के लिए सा रि॒ म प नि॒ध॒ऽप म प नि॒ध॒ऽप, रि॒म प नि॒ ध॒ ऽ प, मप सां नि॒ ध॒ ऽ प, म प ध॒ सां रि॒॑ नि॒ ध॒ऽप,—इस प्रकार पञ्चम पर न्यास करते हुए स्वर-रचना रखी जाती है। और कोमल आसावरी की स्थापना दिखाने के लिये, अवरोह में पञ्चम का समूचा त्याग करते हुए—ध॒ ऽ म, ध॒ऽ। ध॒ ऽ म, म प ध॒ प ध॒ ऽ म, रि॒ म प ध॒ ऽ म, म प नि॒ ध॒ ऽ म—ऐसे स्वर-प्रयोग किये जाते हैं। और अन्त में ध॒ ऽ म ग॒ रि॒ ऽ सा, यों ऋषभ पर थोड़ा सा रुक कर 'सा' पर पूर्ण न्यास करते हैं। जैसे पञ्चम के बाद अवरोह करते समय पञ्चम का त्याग करके 'ध॒मग॒ रि॒ सा' करते हैं, तद्वत् षड्ज से नीचे उतरते समय, षड्ज का त्याग करके 'रि॒॑ऽनि॒ ध॒ प' किया जाता है। 'रि॒॑ ऽनि॒ ध॒ म' और ध॒ऽम ग॒ रि॒ ये दोनों स्वर-क्रियाएँ एक दूसरे का जवाब हैं। और ये इस राग की रागवाची होकर इसके आविर्भाव के लिए अनिवार्य हैं।

इस राग को गाते समय यदि तानपूरे का पञ्चम का तार मध्यम में मिला लिया जाय, तो यह राग के रागत्व में और रस की निष्पत्ति में सहायक होगा। वह मध्यम कोमल ऋषभ से सप्त-श्रुति संवाद करेगा, और कोमल धैवत से षट् श्रुति संवाद करेगा। इस प्रकार मध्यम में मिला हुआ तार उपर्युक्त स्वर-संवाद के कारण राग के माधुर्य और रसको

बढ़ाने में प्रबल योग देगा। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इस राग में मध्यम पर्याप्त बलवान् स्वर है। इसलिए भी पञ्चम के स्थान पर मध्यम रखने की सूचना हम ने दी है। जिस मात्रा में पञ्चम की आवश्यकता है, उतनी मात्रा में पञ्चम तानपूरे के जोड़ के तारों से सुनायी देता ही है।

षड्ज इसका ग्रह-स्वर है, ऋषभ-धैवत अंश, गान्धार-निषाद उपांश स्वर हैं। पञ्चम न्यास, मध्यम अपन्यास और षड्ज विन्यास है। पञ्चम की अपेक्षा मध्यम का बहुत्व है। 'रि-नि' और 'ध-म' ये स्वर-संगतियाँ हैं।

इसकी गति, पञ्चम पर न्यास, स्वरों के उच्चार, 'रि-नि', 'ध-म' की स्वर-संगतियाँ, इन सबको देखते हुए यह रागिनी कोमल, कान्त, मधुर और गंभीर है, आत्म-कथन को प्रकट करने वाली और स्नेह-सिक्त है।

सारि ऽ नि रि ऽ ध रि ऽ, रिसारि ऽ रिनि रि ऽ रिनि ध रि ऽ, रिरिसानि रि ऽ नि नि ध सासानि रि ऽ

रिरिसा सासानि रि ऽ रिरिसा सासानि निनिधरि ∿∿ ध ∿∿ सा।

(४) साऽसारि ऽ, ध सा ऽ सा रि, मपध ऽ सो ऽ सारि, रिरिसानि सा ऽ सारि, ध ध पमप ऽ

पध ऽ रिरिसानि सा ऽ सारि, नि ध ∿∿ सा।

(५) सा रि ∿∿ म, सा ऽ रि ∿∿ म, सा ऽ सारि ∿∿ म, म ऽ मग ऽ गरि ऽ म, म ऽ मग ऽ

गरिरि ऽ म, सारि—रिम ऽ मग ऽ गरिरि ऽ म, धसा—सारि—रिम ऽ मग ऽ गरिरि ऽ म, मग ऽ गरि ऽ सा।

(६) सारिमपध ऽ म, सारिमप ऽ प ध ऽ म, म प ध प ध ऽ म, म प प ध ऽ म, मधमप ऽ प ध ऽ म, सारि

रिम मप पध ऽ म, सारिरि—सारिम ऽ रिमम—रिमप ऽ मपप—मपध ऽ म, धपप—प ऽ निधध ऽ म, पपम—म ऽ

ध ध प—प ऽ निधध ऽ म, रिसासा ऽ गरिरि ऽ पमम ऽ ध प प ऽ निधध ऽ म, रिसासा—गरिरि ऽ गरिरि पमम ऽ

पमम—धपप ऽ धपप—निधध ऽ म, रिसासा ऽ गरिरि ऽ प म म ऽ ध प प ऽ नि ध ध ऽ म, म ग रि ऽ सा।

(७) सारिम, म ऽ म ग ऽ ग रि ऽ म, सारि ऽ सा रि म, म म ग रि ऽ म, प प म म ग रि ऽ म, ध ध प

प प म म म ग रि ऽ म, मगरि ऽ सा। सा ऽ रि म ऽ प ध ऽ ध म ऽ म ग ऽ ग रि ऽ म, सा रि म प ध ऽ ध म ऽ

म ग ऽ ग रि ऽ म, म प ध ऽ नि ध ऽ म ग रि ऽ सा।

राग कोमल आसावरी

विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—एरी बीर बामनवा सगुन विचारो
कब घर आवे पिया मोरा री।

अन्तरा—काग उड़ावत मोरी बैयां थक गई री
नैना झरत सावन ज्यों नीर।
तन की बिथा मोरे मुई रे पड़ी आहें जगत ज्यों तीर री॥

स्थाई

		३		११	
				प-- धु म- -मध् सां	सां नि धु म ग रि
				पऽऽ० ०ऽऽ० री०	० बी ० र
×		०		५	
मनि नि नि ध - ध ध	ध प प म - म म	ग-मग-रि-गरि-	सा - म प	नि नि निध - ध ध	म प - प धनि - -
बा ऽ ० ०	ऽ ० ० ०	०ऽ००ऽ०ऽ००ऽ	०ऽ म न	वा० ऽ ० ०	०ऽ०००ऽऽ
०		३		११	
नि नि निध - ध ध	प प धम - म म	मग - रि गरि	सा - - -	- सा - - रि रि म	- प धम प
० ० ऽ ० ०	० ० ऽ ० ०	०० ऽ ० ००ऽऽ	० ऽ ऽ ऽ	ऽ स ऽ ऽ ० गु ०	ऽ न ० ० वि
×		०		५	
नि नि निध - ध ध	प - प धनि - -	नि नि निध - ध ध	ध म म म	म प - - -	धपपम- प -ध धप -
चा ० ऽ ० ०	० ऽ ० ० ० ऽ ऽ	रो ० ऽ ० ०	० ० ० क	ब ऽ ऽ ऽ	०० ००ऽ ०ऽऽ० घ०ऽऽ

×		०		५	
नि़ध़ नि़ध़	सां--रिं'गं'--	(रिं') गं'गं'रिं'--रिं'रिं'नि--	नि नि़ध़---प-	ध़-म-	--पम ध
म • ई •	रेऽऽ••ऽऽ	पं ••ऽऽ• ••ऽऽ	छो •• ऽऽ•ऽ	आऽ ईऽ	ऽऽ ल• ग

०		२		११	
नि़ नि़ / नि़ध़ ध़ ध़	सां---नि	नि रिं' --	रिं'नि़ध़मगरि़--	सा-सां-	रिं' नि़ धमप
त • • •	ज्योऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ	तो• • • •• ऽऽ	रऽ रीऽ	• धी • •र

राग कोमल आसावरी

त्रिताल

गीत

स्थायी—पपैया, आवो आवो रे, आज सुगड़ घड़ें पलना।

अन्तरा—रतन पतंने सो जड़ित हिंडोलना।

दशरावत जसोदा नन्द की ललना॥

स्थायी

×				२				०				३			
											प	पध्	म	(ध्)प	सां
											प	पै•	•	या	•
ध्	–	प	(ध्)प	ध्	म	पध्	नि्	ध्	–	म	(ग्)रे्	–	रे्	सा	–
आ	ऽ	वो	आ	•	वो	रे•	•	आ	ऽ	वो	आ	ऽ	वो	रे	ऽ
सा	सां	सां	सां	सां रें	नि्	सां	(सां)रें	(नि्)ध्	(नि्)ध्	प	प	पध्	म	(ध्)प	सां
आ	•	ज	सु	ग•	ड़	घ	ड़	प	ल	ना	प	पै•	•	या	•

अंतरा

×				२				०				३			
								म	म	प	प	नि्ध्	ध्	ध्	म
								र	त	न	प	त•	न	सो	•
प	ध्	सां	सां	सां,रें	नि्	सां	–	–	मम	–प	–प	नि्ध्	ध्	प	म
ज	ड़ि	त	हिं	डो•	ल	ना	ऽ	ऽ	रत	ऽन	ऽप	त•	न	सो	•

×		-		५				०				१३			
–	प ध़	–सां	–सां	सां रिं'	नि़	सां	–	–	सांसां	गं' –रिं'	गं'	रिं'	रिं'	सां	सां
ऽ	स टि	ऽत	ऽहि	यो •	ल	ना	ऽ	ऽ	इल	ऽरा	•	थ	व	प	सु
सां	रिं'नि़	–	सां नि़	सां	सां नि	नि़रिं' सां	रिं'नि़	नि़ ध़	नि़ ध़	प					
ता	••	ऽ	नं	•	द•	की	••	ल	ल	ना					

मुखड़े के प्रकार

×			५				०				१३			
			प -ध़	नि़	ध़	–	म--प	ध़	प	–प	पध़	म	ध़ प	सां
			लाऽऽ•		बो		लाऽऽ•	•	बो	ऽप	दे•	•	या	•
			–	ध़प	ध़म	प	–	ध़प	ध़म	प	–	–प	ध़म	पसां
			ऽ	ला•	••	बो	ऽ	ला•	••	बो	ऽ	ऽप	दे•	या•
			सारि	मप	ध़	–	मप	ध़सां	रिं'	–प	पध़	म	ध़ प	सां
			ला•	••	बो	ऽ	ला•	••	बो	ऽप	दे•	•	या	•
			सारि	रिम	मप	पध़	–	मप	पध़	ध़सां	सांरिं'	–प	ध़म	पसां
			ला•	••	बो•	••	ऽ	ला•	••	••	••	ऽप	दे•	या•
			रिं'रिं	रिं', नि़	नि़नि़,	ध़ध़	ध़, म	मम	गग़	रिरि	सासा	–प	ध़म	पसां
			ला•	•, बो	••	ला•	•बो	••	ला•	बो•	••	ऽप	दे•	या•
			मग	ध़सां	सांगं	गंरिं'	नि़नि़	नि़ध़	ध़म	मग़	गरि	सा, प	ध़म	पसां
			ला•	••	••	बो•	••	ला•	••	बो•	••	•, म	दे•	या•

X			५				०				११			
			साद्रि	द्रिम	–	मप	पध्	–	पध्	धसां	–	–प	धम	पसां
			सा•	पो•	ऽ	सा•	वो•	ऽ	सा•	वो•	ऽ	ऽव	दे•	या•

तानें

	X			५				०				११			
१)								साद्रि	मप	धध्	मग्	द्रिसा	–ध	दे	या
२)				साद्रि	ऽप	धध्	मग्	द्रिसा,	धध्	मग्	द्रिसा	प धम	–प	धम	पसां
												हो•	ऽव	दे•	या
३)				धध्	मग	द्रिसा,	धध्	मग्	द्रिसा,	धध्	मग्	द्रिसा	ऽव	दे	या
४)				साद्रि	मप	धध्	मग्	द्रिसा	धध्	–ध्	मग्	द्रिसा	ऽव	,,	,,
५)				सासा	सा,द्रि	द्रिद्रि	मम	म,प	पप,	धध्	मग्	द्रिसा	,,	,,	,,
६)				साद्रि	द्रिसा,	मम	मद्रि,	द्रिप	पम,	धध्	मग्	द्रिसा	,,	,,	,,
७)				साद्रि	साद्रि	द्रिम	द्रिम	मप	मप	पध्	पध्	धम	,,	,,	[illegible]

	x				५				०				१३			
८)					साम	मरि	– रि	रिप	पम	– म	मध्	धप	– प	ऽप	दे	या
९)					सारि	मप	धसां	रिं'रिं'	निध्	मग्	रिसा	प	सां	ऽप	,,	,,
१०)					सारि	मरि	रिम	पम	मप	धप	पध्	पम	पध्	पप	,,	,,
११)					ध्नि्	निध्	नि्नि्	धम	धम	मग्	ग्रि	रिसा	रिनि्	सा प	,,	,,
१२)					सारि	मप	नि्नि्	ध्,नि्	निध्	नि्नि्	ध्ध्	मग्	रिसा	ऽप	,,	,,
१३)					सासा	सा रि,	रिरि,	मम	म, प	पप,	धध्,	ध्, सां	सांसां,	रिं'रिं'	नि्नि्	धध
	मग्	रिसा,	सासा	सा, प	पप,	सां	सासा	सा,प	पप,	सां	सासा	सा, प	पप	सां, प	दे	या
१४)					सारि	म, सा	मम	रि –	–	रिम	प, रि	पप	म –	–	मप	धम
	नि्नि्	धध्	मग्	रिसा,	नि्नि्	धध	मग्	रिसा,	निनि	धध्	मग्	रिसा,	धम	ऽप	दे	या
१५)	–	–	सारि	रिम	मप	पध्	धम	मग्	गरि	रिसा	सारि	रिम	मप	पध	धसां	सनि्
	निध	धम	मग्	गरि	रिसा	सारि	रिम	मप	पध्	धसां	सांरिं'	रिं'मं	मंगं'	गं'रिं'	रिं'नि	निध्
	धम	मग्	गरि	रिसा	सारि	रिम	मप	पध्	धसां	–	धसां	–	धसां	– प	दे	या
१६)					सारि	मरि	रिम	पम	मप	धप	पध्	सांध्	धसां	रिं'सां	सांरिं'	गं'रिं'
	निध्	मग्	रिसा	सांरिं'	गं'रिं'	निध्	मग्	रिसा	सांरिं'	गं'रिं'	निध	मग्	रिसा	– प	दे	या

	×				२				०				३			
१७)					साद्रि	द्रि, द्रि	मम	मप	प, प	धध़	धसां	सां, सां	द्रि'द्रि'	द्रि'ग़'	ग़',ग़'	द्रि'द्रि'
	द्रि'नि़	नि़, नि़	ध़ध	धम	म, म	ग़ग़	ग़द्रि	द्रि,द्रि	सासा	साद्रि	द्रि,द्रि	मम	मप	प, प	ध़ध़	सां
										य •	•, दे	• •	या	•, •	• •	•
	–	साद्रि	द्रि, द्रि	मम	मप	प, प	धध़	सां	–	साद्रि	द्रि, द्रि	मम	मप	प, प	धध़	सां
	[illegible]	य •	• दे	• •	या •	•, •	• •	•	ऽ	य •	•, दे	• •	या•	• •	• •	•
१८)				साद्रि	मप	ध़	–	–	धध	मग़	द्रिसा	द्रिम	पध़	सां		–
	द्रि'द्रि'	नि़ध़	मग़	द्रिसा	मप	धसां	द्रि'	–	–	गं द्रि'	नि़ध़	मग़	द्रिसा	– य	दे	या
१९)					साद्रि	मप	ध़ –	– ध	–	ध़	–	धध़	मग़	द्रिसा	द्रिम	पध़
	सां	– सां	–	सां	–	द्रि'द्रि'	नि़ध़	मग़	द्रिसा	मप	धसां	द्रि'	- द्रि'	–	द्रि'	–
	द्रि'नि़	धम	मग़	द्रिसा	द्रि'नि़	धम	मग़	द्रिसा	द्रि'नि़	धम	मग़	द्रिसा	–	- य	दे	या

राग देशी (देशी तोड़ी)

आरोह-अवरोह—सा रिमप निृसां, पधृप रिग् रि ऽ सा।

जाति—औडव-वक्र सम्पूर्ण।

ग्रह—ऋषभ।

अंश—पूर्वांग में गांधार; उत्तरांग में धैवत।

न्यास—पञ्चम।

अपन्यास—गान्धार।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—पधृप रिग् रि ऽ सा, अथवा रिग् ऽ सा रि ऽ नि् सा। (ऊपर: सा, नि्)

समय—प्रातःकाल द्वितीय प्रहर।

रस-भाव—शृंगार; मधुर-भाव।

विशेष-विवरण

देशी एक बहुत प्रचलित है और मधुर राग है। इसे देशी या देशी तोडी ऐसे भिन्न-भिन्न नामों से पहिचानते हैं। प्रचार में इसके कई रूप पाये जाते हैं। एक रूप, जिसमें 'गृधृनि्' कोमल लगते हैं; दूसरा रूप जिसमें 'ग् नि्' कोमल और दो धैवत लगते हैं और तीसरा रूप जिसमें 'ग् नि्' कोमल और 'ध' शुद्ध लगता है। पहले रूप के आरोह में सारंग और अवरोह में आसावारी की छाया का आभास होता है। दूसरे रूप के आरोह में सारंग और अवरोह में काफ़ी तथा आसवारी की मिश्र छाया दिखाई देती है। और तीसरे रूप में आरोह में सारंग और अवरोह में काफ़ी की छाया दिखाई देती है। किन्तु इन तीनों ही रूपों में देशी का अलग व्यक्तित्व दिखाने के लिये जो अंग समान रूप से पाया जाता है, वह यों है—

सा रि मप नि् सां, पध् प रि् ग् ऽ रिऽसा

'पधप' करते समय धैवत शुद्ध बरतें या कोमल, यह ऊपर बताये हुए अंगों पर निर्भर है। फिर भी अन्य रागों से बचने के लिये और 'देशी' की स्थापना के लिए 'पधप' या 'पधृप रिग् ऽ रि सा' यह अंग अनिवार्य है, बल्कि यही इस राग की जान है। कुछ लोग 'पधप रिग् सारि नि् सा', भी करते हैं। किन्तु 'सा रि नि् सा' वाला अंग अनिवार्य नहीं है।

कर्णाटक संगीत में जो राग शुद्ध देशी के नाम से प्रचलित है, उसका आरोह अवरोह इस प्रकार है—सा रि म प ध़् नि् सां, सां नि् ध़् प म ग़् रि सा। स्वर-दृष्टि से यह आसावरी अंग का हमारे देशी के सन्निकट है, किन्तु हमारे देशी में 'प ध़ प रि ग' यह जो अनिवार्य अंग है, वह इसमें नहीं है।

आजकल तो यह राग देशी के नाम से ही अधिकतर प्रचलित है। देशी-तोड़ी नाम का व्यवहार अब कहीं कहीं अत्यल्प मात्रा में रह गया है। गुर्जरी तोड़ी, पंचम की तोड़ी (मियाँ की तोड़ी), बिलासखानी तोड़ी, भूपाल तोड़ी, लक्ष्मी तोड़ी, आदि जो तोड़ी के प्रकार हैं, उन सब में 'रि़ ग़् रि़ सा' यह स्वर विधान समान रूप से पाया जाता है। किन्तु देशी-तोड़ी में 'रि़ ग़् रि़ सा' के बजाय शुद्ध ऋषभ के साथ "रि ग़् रि सा" पाया जाता है। इसलिए यह कह सकते हैं कि जैसे भूपाल तोड़ी में सा रि़ ग़् प ध़् सां, प ध़् प रि़ ग़् रि़ सा किया जाता है, उसी का बचाव देशी में अन्य स्वरों में यों है:—सा रि म प नि् सां, प ध़् प रि ग़् रि ऽ सा। और शायद इसलिए देशी के साथ तोड़ी नाम का प्रयोग किया होगा।

इसका आरोहावरोह यों है—सा रि म प नि् सां, प ध़् प रि ग़् रि ऽ सा। तान लेते समय नि़् सा रि म प नि् सां, यों भी जा सकते हैं। प ध़् प रि ग़् रि सा, यह रागवाची स्वर क्रिया है।

इसकी आलापचारी 'सा' दिखाने के बाद 'रि' से आरम्भ होती है। यथा:—रि म प, रि म प ध म प, रि म प नि् सां, रिं ग़ं सां रिं नि् सां, प ध म प, रि ग सा रि नि़् सा। तानें भी बहुधा ऋषभ से ही आरम्भ होती हैं, यद्यपि कभी-कभी निषाद से भी उठती हैं। तब भी ऋषभ इसका ग्रह है, पूर्वांग में गान्धार, और उत्तरांग में धैवत दुर्बल स्वर है। पञ्चम न्यास है, गान्धार पर अनन्यास होता है। यथा:—प ऽ रि ग़्, रि म प रि ग़्, प ध़् प रि ग़्, प ध म प रि ग़्, रि म प ध़् म प रि ग़्, नि़् सा रि म प ध़् म प रि ग़्—इत्यादि। भूल से भी ऋषभ पर न्यास न किया जाय। अन्यथा तत्काल वहाँ काफी का दर्शन होगा।

यह राग प्रातर्गेय है। कुछ गुणीजन इसे काफी का प्रातर्गेय रूप मानते हैं। यह सर्वप्रिय और तत्काल जम जानेवाला राग है।

———

राग देशी

मुक्त आलाप

रि नि़ प नि़ सा
(१) सा, नि़ ऽ सो ऽ प़, ध़ ऽ प़, ध़म़ ऽ ध़प़ ऽ सा ऽ नि़सा ; सा ऽ रि रिसानि़सा ऽ प़ ध़ ऽ प़,

प़ नि़ म़ प़ सा नि़ प़ म़ सा नि़
ध़ध़प़म़प़ सा ऽ नि़सा –, रिमारि सा ऽ, ध़प़ध़ प़ ऽ सा ऽ नि़सा, रि रि ऽ सानि़ रि सा ऽ ध़ ध़ ऽ प़म़ ध़प़ ऽ नि़ ऽ सा।

❀सा नि़ ❀सा नि़ नि़ सा ❀सा
(२) रि ऽऽग़ रि सो, सारि ग़ ऽऽ रि ऽऽ ग़ रि सा, रिरिसा सो ऽ ग़ग़रि रि ऽ ग़ ऽ ऽ रि ऽ ऽ ग़ रि

नि़ म़ ध़ नि़ सा ❀सा नि़
ऽ सा, ध़ध़प़ प़ ऽ सासानि़ नि़ ऽ रिरिसा सो ऽ ग़ग़रि रि ऽ ग़ ऽऽ रिऽऽग़ रि ऽ सा।

❀सा सासा ❀सा
(३) सारिग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, रिरिसानि़सारि ग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, रिनि़ ऽ रिसा ऽ ग़रि ग़

❀सा ❀सा सा
ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, सासानि़ प़नि़ रिरिसानि़सा ग़ग़रिसारि ग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, प़म़ध़प़ सानि़रिसा ग़ रि

❀ सा सा रि नि़
ग़ ऽऽ रिऽऽग़ रि रि ऽ सा, सारिसारि ग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा नि़ सो।

सा रि म म
(४) सा रि म प ग़ ऽऽ रिग़ ऽ सारि ऽ नि़सा ऽ, रिससा मरिरि पमम धपप ग़ ऽ ऽ रिग़ ऽ सारिऽ

नि़सा, ध़प़प़ सानि़नि़ रिससा मरिरि पमम धपप ग ऽ ऽ रिग़ ऽ ऽ सारि ऽ ऽ नि़सा।

❀ इस प्रकार के चिह्नित स्वरों का केवल छूने भर के लिए प्रयोग किया जाता है।

सारिमपर्सा ऽ निसां, सारिसा—रिमरि—मपम पधप सां ऽ निसां, सांरिंनिसां पधूप, रिमपधूमप रिग़ ऽ सारि ऽ नि़सा ।

(६) सा रि म प सां ऽ निसां, सा रि म प सां ऽ निसां, रिसा मरि पम धप सां ऽ निसां, रिसा ऽ मरि ऽ पम ऽ धप ऽ सां ऽ निसां, रिसासा मरिरि पमम धपप सां ऽ निसां, सा ऽ सारि ऽ रि ऽ रिम म ऽ मप ऽ प ऽ पसां ऽ निसां, सारिरिसा रिममरि मपपम पधधप सां ऽ निसां, रिरिसानि़सा ममरिसारि पपमरिम धधपमप सां ऽ निसां, सां ऽ रिंग़ं ऽ रिंरिं ऽ सां, रिंरिंसांनिसां ऽ पधूप रिग़ ऽ सारि ऽ नि़सा ।

(१०) नि़सारिमपनिसांरिंग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां ऽ निसां, रिंरिंसांनिसांरिंग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां ऽ निसां, सांसांनिपनि ऽ रिंरिंसांनिसां ऽ रिंग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, धधपमप ऽ सांसांनिपनि ऽ रिंरिंसांनिसां ऽ रिंग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, सांनिनि रिंसांसां ग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, पमम धपप सांनिनि रिंसांसां ग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, मरिरि पमम धपप सांनिनि रिंसांसां ग़ं ∿∿ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, सारिरि रिमम मपप पसांसां सांरिंरिं ग़ं ∿∿

---

* चिह्नित स्वरों का पकड़े के साथ उच्चारण करना है ।

रि'ऽऽगं रि'रि' ऽ सां, सारिसांर रिमरिम मनमप पसंनिसां सांरि'सांरि' गं ∽ रि'ऽऽगं रि'रि' ऽ सां ऽ निसां,

सांरि'सांरि' ऽ निसांनिसां ऽ पमपम ऽ मगमग ऽ रिगुरिगु ऽ सारिसारि ऽ नि़सानि़सा ।

(१०) नि़सारिमपनिसांरि' गं' ∽ रि' मं' पं' ऽ धंमंधं गं ऽ, सां रि' मं पं ऽ धंमंधं गं,

सांरि'पं रि'गं ऽ सांरि' ऽ निसां, रि'मंपंधंमंधं रि'गं ऽ सां रि' ऽ सां, धम धप सांनि' रि'गं मंरि' पंमं धंपं

ऽ धंमंपं गं' ऽऽ रि'गं' ऽ रि' ऽ सां, धपधमग ऽ रि'सांरि'निसां ऽ गं'रि'गं'सांरि' ऽ धंपंधंमंधं ऽ गं' ∽ रि'गं' ऽ

सांरि' ऽ निसां ऽ पध ऽ मप ऽ रिग ऽ सारि ऽ नि़सा ।

(११) सारिमपनिसां—रि'मंपंधंमंपं रि'ऽऽगं' रि' ऽ सां, रि'ऽऽगं' रि'रि' ऽ सां, निऽऽसां सांधऽऽप,

पऽऽध धप ऽ म, मऽऽप पप ऽ रि, रिऽऽग रिरि ऽ सा ।

शुद्ध तानें

नि्सारिम पधमप रिग्रिसा, रिमपधमप रिग्रिसानि्सा, रिमरिम पधपधमप रिग्रिसानि्सा, रिसामरि पमधप पधमप रिग्रिसा । पधमप सारिनि्सा रिग्रिग् सारिनि्सा । रिमपध रिमरिम पधमप रिग्रिसा, रिमरि मपम पधपधमप रिग्रिसा, । सारिसारि रिमरिम पधपधमप रिग्रिसा । सारिसा सारिसा रिमरि रिमरि मपम मपम पधपधमप रिग्रिसा । रिसाऽसा मरिपमधपमप रिग्रिसा । नि्सारिम पधमप मधमप रिगरिसा । सारिरिसा रिमभरि मपपम पधमप रिग्रिसा । सारिरि सारिरि सारि, रिमम रिमम रिम, मपप मपप मप पधमप रिग्रिसा । पधमप सारिनि्सा पधमप रिग्रिसा । नि्सरिग्रिसा रिमपधमप रिग्रिसा, पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा । नि्सानि्सा सारिसारि रिमरिम मपमप पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा । सारिसारि नि्सानि्सा, रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, नि्सांनि्सां पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा । रिग्ग् रिग्ग् रिग्रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, मपप मपप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, पधध पधध पध मपप मपप मप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा । नि्सांसां नि्सांसां नि्सां पधध पधध पध, मपप मपप मप, रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, नि्सारिमपसांनि्सां पधमप रिग्रिसा । रिग्रिसा पधमप रिग्रिसा, रिं'ग्'रिं'सां सारिं'नि्सां पधमप रिग्रिसा । नि्सारिमपसांऽसां पधमप रिग्रिसा, रिसासा मरिरि पमम धपप सांनि् रिं'सांऽसां पधमप रिग्रिसानि्सा । रिसासा मरिरि पमम धपप धपधप रिग्रिसा, रिसासा मरिरि पमम धपप सांनि्रिं'सां पमधप रिग्रिसा । रिनि्रिसा रिग्रिसा, सानि्रिसा मरिपम रिग्रिसा, सानि्रिसा मरिपम धमप रिग्रिसा, सानि्रिसा मरिपम धपसांनि्रिं'सांनि्सां पधमप रिग्रिसा । रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, नि्सांनि्सां पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा, रिं'ग्'रिं'ग्' सारिं'सारिं' नि्सांनि्सां पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि्सानि्सा । साऽऽसा पऽऽप पधमप रिग्रिसा, साऽऽसा पऽऽप सांऽऽसां पधमप रिग्रिसा । सापऽप रिग्रिसा, परिं'ऽरिं' सांरिं नि्सां पधमप रिग्रिसा, सापऽप पसांऽसां रिं'ग्'ऽग्' सारिं'नि्सां पधमप रिग्रिसा । धपप धपप धपधपमप रिग्रिसा, रिं'सांसां रिं'सांसां रिं'सां रिं'सांनि्सां, धपप धपप धप धपमप रिग्रिसा, ग्'रिं'रिं' ग्'रिं'रिं' ग्'रिं' ग्'रिं'ग्'रिं' सारिं'नि्सां, रिं'सांसां रिं'सांसां रिं'सारिं'सां रिं'सां सारिं'नि्सां पधमप, धपप धपप धपधप मप रिग्रिसा । रिग्रिसा पधमप रिं'ग्'रिं'सां पधमप रिग्रिसा । रिऽऽम पधमप रिग्रिसा, पऽऽनि् रिं'सांनि्सां पधमप रिग्रिसा, रिं'ऽऽमं पंधंमंपं रिं'ग्'रिं'सां सारिं'नि्सां पधमप,रिग्रिसा, रिं'ग्'ग्'रिं' सारिं'रिं'सां नि्सांसांनि् पधपध मपपम रिग्ग्रि सारिसारि नि्सानि्सा । नि्सारिमपनि् नि्सांरिं'मं पंधंमंपं रिं'ग्'रिं'सां पधमप रिग्रिसा । रिऽमऽ पऽऽम रिग्रिसा, पऽनि्ऽ रिं'ऽऽरिं' सारिं'नि्सां पधमप रिग्रिसा, रिं'ऽमंऽ पंऽऽमं रिं'ग्'रिं'सां, पधमप रिग्रिसा । रिमरि रिमरि रिम रिम, मपम मपम मप मप, पधप पधप पधमप, नि्सांनि नि्सांनि् नि्सां नि्सां, रिं'ग्'रिं' रिं'ग्'रिं' रिं'ग्' रिं'ग्', सारिं' सारिं' नि्सां नि्सां पध पध मप मप रिग् रिग् सारि सारि नि्सा नि्सा । नि्सारिग्रि सारिमपम रिग्रि सारिसा, रिमपधप मपनि्सांनि पधप मपम, मपनि्सांनि् पनि्सांरिं'सां नि्सांनि् पधप, पनि्सांरिं'सां नि्सांरिं'ग्'रिं' सारिं'सां नि्सांनि्, पधप मपम रिग्रि सारिसा ।

राग देशी

ख्याल

विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—म्हारे डेरे आजो आजो जी महाराजा जेठा,
म्हारे डेरे आ, हूँ तो थारी टेल (टहल) करेंधा जेठा म्हारे......।

अन्तरा—अगली बात तुम् हम से न बोलो,
सदारंग बीन बजाओ जेठा म्हारे......॥

स्थाई

		६		११	
				(रि) प – ग् –	रिग् रिसा
				म्हाऽरेऽ	•• डेरे
×		०		५	
सारि – रि नि्	नि् सा – –	ग् – – – (सा) रि रि –	रिप म – – प (म) प –	– – मपनिसां –	– प प ध्
आ • ऽ • •	जो • ऽऽ	आ ऽऽऽ • • ऽ	जो • • ऽऽ • जो •	ऽ ऽ • • • • ऽ	ऽ • म हा
०		९		११	
प म प धमप –	म ग् रि ग्	(सा) सिरि – सा –	– सा (म) रि (प) म	(ध) प – म (म) गप ग् –	रि ग् रि सा
रा • • • • • ऽ	जा • • •	जे • ऽ ठा ऽ	ऽ म्हा • •	• ऽ • • • रे ऽ	• • डे रे

×		०		५	
सारि – रि नि़	नि़ सा – –	नि़सा – – –	प – धम धप सांनि़	नि़ सां – – रिं	सांनि़ – सां नि़सां
आ • ऽ • •	जो • ऽऽ	•• ऽ ऽ ऽ	ऽ हूँ• लो• या•	री • ऽ ऽ•	टे• ऽ• • •

०		९		११	
प प ध़ प	म प – ध़ मप ग़	रि ग़ रिरि –	रि सा –, सा	म प रि म प – ध़ मप	ग – रिग़ रिसा
• ल • क	रे • ऽ • •• शा	• • जे• ऽ	ठा ऽ ऽ, म्हा	• • •ऽ• ••	रे ऽ •• डेरे

अन्तरा

×		०		५	
			– धप धम धप	प सां – – –	नि़सां – – सांरिं
			ऽ अ• ग• ल•	बा ऽ ऽ ऽ	•• ऽ ऽ त•

०		६		११	
नि़ सां – –	नि़सं सां सां सां	सां रिंगं – – रिंगं	रिंरिं – – – सां –	– – रिंरिं – सांनि़ सां	नि़ सां प ध
हु • ऽ ऽ	•• मू ह म	से • • ऽ ऽ • •	• • ऽ ऽ ऽ ना ऽ	ऽऽ •• ऽ बो • ऽ •	• • • •

×		०		५	
प – – –	– म प – ध मप	सा ग़ – रि रि म	– – धम धप	नि़ – सां –	प – प ध़
लो ऽ ऽ ऽ	ऽ • • ऽ • स•	दा ऽ• ••	ऽ ऽ रं• ग•	बी ऽ • ऽ	• ऽ न व

०		६		११	
पमप – ध़ मप	म ग़ रि ग़	रिरि – सा –	- रिसासा - मरिरि - पमम -	ध धपप - मप ग़ -	रि ग़ – रि सा
जा • • ऽ • • •	ओ • • •	जे • ऽ ठा ऽ	ऽ म्हा •• ऽ ••• ऽ •••ऽ	•••ऽ •• रे ऽ	• • ऽ डे

राग देसी

त्रिताल

गीत

स्थायी—साँची कहो तुम साँचो, प्यारे रब नूँ भावे,
अब तुम लो मन में साँची ॥

अन्तरा—साँच को साँच में, झूठ ना समावे।
कहत अदारंग, साँच को नहीं आँची ॥

स्थायी

X				५				०				१३			
									ध	म	(ध)प	रि	ग॒	रि	सा
									साँ	ची	क	हो	•	तु	म
रि	–	–	नि॒	सा	–	रि	म	प	ध	म	(ध)प	रि	ग॒	रि	सा
सौं	ऽ	ऽ	•	ची	ऽ	ए	•	•	साँ	चो	क	हो	•	तु	म
रि	–	–	नि॒	।	–	–	–	–	रि	(प)म	प	–	रि	म	प
सौं	ऽ	ऽ	•	ची	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	प्या	•	रे	ऽ	र	ब	नूँ
–	धप	मप	धप	ग॒	–	रि	नि॒	सा	निसा	–रि	म	प	–	(ध)म	प
ऽ	भा•	••	••	वे	ऽ	•	•	•	अ ब	ऽतु	म	लो		म	न
पनि॒	सां	प	ध	म	प	रि	म								
में•	•	साँ	•	•	•	ची	•	•							

अन्तरा

×			५					०				१२			
			(ध)म	–	(नि॒)प	–	प	स	–	–	–	–	–	नि॒सां	सां
			साँ	ऽ	च	ऽ	को	सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	••	च
सां	–	–	(सां)नि॒	प	सां	–	नि॒	रिं	–	–	सां	सांरिं	ग॒	(सां)रिं	–
में	ऽ	ऽ	इ	ठ	ना	ऽ	•	•	ऽ	ऽ	•	••	•	स	ऽ
सां	–	–	रिं	नि॒सां	–	प	ध	प	–	–	ध	म	प	मप	धप
मा	ऽ	ऽ	•	••	ऽ	•	•	वे	ऽ	ऽ	क	ह	त	अ•	••
ग॒	–	(सा)रि	–	–	–	सा	–	सां	ग॒ं	–	(सां)रिं	–	सां	–	रिं
दा	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ऽ	साँ	•	ऽ	च	ऽ	को	ऽ	न
नि॒	सां	प	ध	म	प	रि	म	प	ध	म	(ध)प	रि	ग॒	रि	सा
हीं	•	आँ	•	•	•	ची	•	•	साँ	ची	क	हो	•	[illegible]	म

तानें

	×			५				०				१२				
१)	नि_सा	रिम	पध्	मप	रिग्	सा र	नि_सा	—	गाँ	वी	क	हो	•	ा	म	
२) रिसा	सा, म	गिरि	पम	म, ध	मप	रिग्	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	
३) सारि	सा, रि	मरि	मप	म, प	धप	रिग्	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	
४) सारि	सा रिसा	रिम	रि मरि	मप	म पम	पध	मप	रिग	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	
५) पध	प, प	धप	मप	म, म	पम	रिम	पध	मप	रिग्	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	
६) सारि	सारि	रिम	रिम	मप	धप	पम	मप	रिग्	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	
७) सारि	रि मरि	रिम	प पम	मप	प धप	पध्	मप	रिग्	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	
८) रिसा	नि_सा	मरि	स रि	पम	रिम	पध्	मप	रिग्	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	
९) सारि	सा रि, रि	मम	रि मप	म प, प	धध्	पध्	मप	रिग्	सारि	नि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	

	×				५				०				१३			
१०)	गुग्	रि,रि	रिसा	धुध्	प,प	पम	धप	पम	रिग्	रिसा	नि सा	,,	,,	,,	,,	,,
११)	नि सा	रिम	पनि	सां	पध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	सां	ची	क	हो	•	तु	म
१२)	सारि	मप	निसां	–	पध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१३)	रिसा	मरि	पम	ध।	सांनि	रिंसां	–प	धप	रिग्	रिसा	नि सा	,,	,,	,,	,,	,,
१४)	सारि	मप	निसां	रिंगुं	सांरिं	निसां	पध्	मप	रग्	सारि	नि सा	,,	,,	,,	,,	,,
१५)	रिंगुं	रिं,सां	रिंसां	निसां	पध्	प, म	पम	रिग्	रि, सा	रिसा	नि सा	क	हो	•	तु	म
१६)	नि सा	रिग्	रिसा	रिम	प	पम	पनि	सांरिं	निसां	ध्	मप	रिग्	सारि	नि सा	तु	म
१७)	रिग्	रि,सा	रिसा	पध	प, म	पम	रिंगुं	रिं, सां	रिंसां	पध्	प, म	पम	रिग्	रिसा	,,	,,
१८)	रिम	पध	मप	पनि	सांरिं	निसां	रिंमं	पधं	मंपं	रिंगुं	सांरिं	निसां	पध	मप	‐	सारि
	नि सा	क	हो	•	तु	म	क	हो	•	तु	म	क	हो	•	तु	म

	×				५				०				१३			
१९)	सारि	सा,रि	मरि	मप	म, प	धप	नि्सां	नि, सां	रिं'सां	रि'मं	रि', मं	पंमं	पंधं	पं, मं	पंमं	रि'गं_
	रिंसां	रि'सां	नि्'सां	नृ	धृप,	मप	मरि	गृरि,	सारि	सानि्_	सा –	क	हो	•	तु	म
२०)	रिरि	सा रि	सासा	मम	रिम	रिरि	पप	मप	मम	धध।	पध	पर	सांसां	नि्सां	नि्नि्	रिं'रिं'
	सांरिं'	सांसां	गं'गं'	रिं'गृं'	रिं'सां	रिं'रिं'	सांरिं'	नि्	सांसां	नि्रिं	निप	धध	पध	धम	धप	मप
	मरि	गृगृ	रिगृ	रिसा	नि्_सा	साँ	ची	साँ	ची	साँ	ची	क	हो	•	तु	म
२१)	रिं'गं'	रिं',सां	रिं'सां	सांरिं'	सां,नि	सांनि्	नि्सां	नि्,प	धप	पध	प,म	पम	मप	म,रि	गृरि	सारि
	सा,नि्_	सानि्_	सारि	मप	नि्सां	सारि	मप	नि्सां	सारि	मप	नि्सां	क	हो	•	तु	म
२२)	रिसा	सा,म	रिरि	पम	मध	पप	सांनि्	नि् रिं'	सांसां	मंगं_	गृं',गृं'	रिं'रिं'	रिं'सां	सां,ध	प प	पम
	म,म	गृ गृ	गृरि	रि,रि	सा सा	साँ	ची	क	हो	•	तु	म	तु	म	[illegible]	म
२३)	रिं'गं'	रिं'गृं'	सांरिं'	सांरिं'	नि्सां	नि्सां	पध	पध	मप	मप	रिग	रिगृ	सारि	नि_सा	तु	म

×				५				०				१३			
२४) रिंग्ं	रिंसां	सांरिं	सांनि्	नि्सां	नि्प	दध	पम	रिग्	रिसा	नि्सा	क	हो	•	तु	म
२५) नि्सां	नि्सां	–	पध	पध		मप	मर	–	रिग	रिग	–	सारि	सारि	–	नि्सा
नि्सा	साँ	ची	क	हो	•	•	क	ह	•	•	क	हो	•	तु	म
२६) रिग्	रि,सा	रिसा	मप	म,रि	ग्रि	सारि	सा,प	धप	मर	म,रि	ग्रि	सारि	सा,नि्	सांनि्	पध
प,म	दम	रग्	रि,सा	रिसा	रिंग्ं	रिं,सां	रिंसां	नि्सां	नि् प	ध प	म प	म,रि	गरि	सा रि	सा –
रिम	पनि्	सां	रिम	पनि्	सां	रिम	पनि्	सां	साँ	ची	क	हो	०	तु	॥
२७) सारि	सा,सा	रिसा	रिम	रि, रि	मरि	मर	म, म	पम	प ध	प, प	धप	नि्सां	नि्,नि्	सांनि्	सांरिं
सां,सां	रिंसां	रिंगं्	रिं रिं	गं् रिं	सां र	सां,सां	रिंसां	नि्सां	नि्,नि्	सांनि्	प ध	प, प	धप	मर	म म
पम	रि ग्	रि,रि	ग्रि	सा रि	सा,सा	रिसा	नि्सा	–	साँ	ची	क	हो	•	तु	म
२८) सारि	सारि	रिम	रिम	मप	मप	पध	पध	मर	मर	पसां	नि्सां	पध	पध	मप	मर

×				५				•				११			
परि'	सारि'	नि्मा	निमा	पध	पध	मप	मप	पग्॑	रि'ग्॑	सारि'	सारि'	नि्मा	निमा	पध	पध
मर	मर	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि मा	नि्सा	–	साँ	ची	क	हो	•	तु	म
२१) सारि	सारि	नि्सा	नि्सा	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि्सा	नि्सा	मर	मर	रिग्	रिग्	सारि	सारि
नि सा	नि्सा	पध	पध	मप	मप	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि्सा	नि्सा	नि्सा	नि्सा	पध	पध
मर	मर	रिग्	रिग्	सारि	सारि	नि्सा	नि्सा	सारि'	सारि'	नि्सा	नि्सा	पध	पध	मप	मर
ग्	रिग्	सारि		नि्सा	नि्सा	रिम	पध	मप	साँ	चा	क	हो	•	तु	म

राग गुर्जरी तोड़ी

आरोह-अवरोह—नि़ रि॒ ग॒ म॑ ध॒ नि सां, सां नि ध॒ म॑ ग॒ रि॒ ग॒ रि॒ सा।

जाति—षाडव-षाडव।

ग्रह—ऋषभ। द्रष्टव्य-विशेष विवरण।

अंश—पूर्वांग में गांधार अंश; उत्तरांग में धैवत उपांश।

न्यास—गांधार।

अपन्यास—धैवत।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—रि॒ ग॒ ऽ ऽ रि॒ ग॒ रि॒ ऽ सा। (ऊपर कण स्वर: रि॒, म॑)

समय—प्रातःकाल सूर्योदय के बाद नौ बजे से ग्यारह बजे तक।

प्रकृति—करुण; असह्य विरह की अपार वेदना।

विशेष विवरण

यह एक बड़ी करुणामय रागिणी है। इसमें ऋषभ, गान्धार, धैवत अति कोमल, निषाद शुद्ध और मध्यम तीव्रतर लगता है। पञ्चम का समूचा त्याग है। इस रागिणी में असह्य विरह की अपार वेदना भरी पड़ी है।

इसके आरोह-अवरोह की सामान्य परिपाटी यों है :—

नि़ रि॒ ग॒ म॑ ध॒ नि सां   सां नि ध॒ म॑ ग॒ रि॒ ग रि॒ सा

फिर भी 'सा, रि॒ ग॒ रि॒ ग॒ रि॒ सा' (ऊपर कण स्वर: रि॒, म॑)—यह इस रागिनी कि प्राण-क्रिया है। द्रुत तानों में नि़ रि॒ ग॒ म॑ ध॒ नि सां नि ध॒ म॑, म॑ ग॒ रि॒ ग॒ रि॒ सा यों आते हैं। क्योंकि 'नि़-स-रि॒-ग॒' में सब निकट के स्वर होने के कारण उन्हें विलम्बित गति में तो सुविधा से लिया जा सकता है, किन्तु द्रुत गति में वह नितान्त कष्ट साध्य होने के साथ साथ अनावश्यक भी है। इसी लिये तानों में लक्ष्य 'नि़ रि॒ ग॒ म ध॒ नि' ही है। इस प्रकार तानों में आरम्भक स्वर भले ही निषाद है, किन्तु रागिनी का मुख्य अङ्ग निषाद से शुरू नहीं होता। आलाप में जब 'सा' पर मिलते हैं, तब प्रायः 'म॑ ध॒ सा' या 'ध॒ सा' ही आते हैं। किन्तु जब ध॒ नि़ सा, ध॒ नि़ सा रि॒, ध॒ नि़ सा रि॒ ग॒, इस प्रकार की विधि की

जाती है तब आरोह में निषाद प्रयुक्त होता है। आरोह में निषाद वर्ज्य नहीं है, किन्तु राग की रचना में 'म् ध् सा' और 'म् ध् नि सां' विभिन्न ढंग से प्रयुक्त होते हैं।

'सा रे ग्' यों लेकर गान्धार पर ठहरिए और ठहरकर 'रे ग् रे सा' कहकर नीचे उतरिये, केवल इतने ही स्वरों में तोड़ी दीख जायगी, क्योंकि तोड़ी की प्राण-क्रिया यही है। जितने प्रकार की तोड़ी हैं, प्राय सभी पूर्वाङ्ग में ही दिखाई देता है। इस प्रकार यह असंदिग्ध सत्य है कि यह राग पूर्वाङ्गवाची ही है। फिर भी न जाने क्यों पण्डित भातखण्डे ने इसे उत्तरांग-प्रधान माना है, जो तथ्य के विरुद्ध है।

आजकल 'मियाँ की तोड़ी' के नाम से जो राग प्रसिद्ध है, वह इस गुर्जरी तोड़ी के अवरोह में केवल पञ्चम का अल्प प्रयोग करने से ही बनता है, इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। मियाँ की तोड़ी में भी बार-बार तोड़ी का आविर्भाव के लिए पञ्चम का त्याग दिखाना ही पड़ता है, केवल कहीं कहीं पञ्चम दिखाकर उसे मियाँ की तोड़ी कहा जाता है।

गुर्जरी तोड़ी का गुर्जर जाति से या गुर्जर राष्ट्र से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जैसे 'मुलतानी' मुलतान से, 'भूपाली' भूपाल से 'बरारी' बरार से, और 'बंगाली' बंगाल से सम्बन्धित कही जाती है, वैसे ही गुर्जरी तोड़ी का सम्बन्ध गुर्जरों से, गुर्जरराष्ट्र (गुजरात) से लगाया जाता है।

इसका ग्रह स्वर निर्धारित करते समय यह स्मरणीय है कि तोड़ी की स्थापना किन स्वरों से होती है। रागारम्भ में तो 'सा, ध् सा, म् ध् सा' इत्यादि स्वर प्रयोग किये जाते हैं, किन्तु तोड़ी का अपना स्वरूप रे ग् ऽ रे ऽ सा करने पर ही निखरता है। इस प्रकार सामान्य आरम्भ षड्ज से होने पर भी इस राग के मुख्य अंग या प्राणक्रिया का आरम्भक स्वर ऋषभ ही है। इसलिए ऋषभ को इसका ग्रहस्वर मानना उचित है। 'सा' पर कुछ ठहरकर यदि 'रे ग् ऽ रे ऽ सा' कहा जायगा, तो तोड़ी तत्काल दिखाई देगी। इस दृष्टि से भी ऋषभ ही इसका ग्रह-स्वर है। पूर्वांग में गान्धार अंश और न्यास है। एवं उत्तरांग में धैवत अंश और अपन्यास है।

इस राग में आलाप करते समय सभी स्वरों पर ठहर सकते हैं और आलाप में विस्तार को बढ़ा सकते हैं। किस स्वर पर कितना ठहरा जाय और कैसे ठहरा जाय यह सब गुरुमुख से ज्ञात होगा। इसके मन्द्र निषाद और मध्य मध्यम पर समझकर यथाविधि न्यास करने से अपार निराशा और करुणा निदर्शित होती है।

इस दृष्टि से इस रागिनी में आलाप ही किये जाय, तानों का समूचा त्याग किया जाय, यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि यह रागिनी करुणा भरी है। आजकल सामान्य परिपाटी ऐसी बन गयी है कि प्रत्येक राग में तैयारी दिखाने के लिए तान प्रयोग आवश्यक सा माना जाता है। इसलिए इसमें भी खूब तानें ली जाती हैं। इसका आरोह अवरोह सीधा होने के कारण इसमें तान का विस्तार सरल रहता है, इसलिए भी प्राय सभी इसमें जमकर तानें लेते रहते हैं। हम भी लेनी पड़ती हैं। किन्तु हमारे मत से इस करुण-रस वाहिनी रागनी में तानें न लेना ही समुचित है।

इस राग की स्वरावलि बहुत ही कठिन है। 'निसारिग' ये निकटतम स्वर होने के कारण, 'रि़ – ग़ – ध़' अति कोमल और मध्यम तीव्रतर रहने से तथा पञ्चम का त्याग होने से नये सीखनेवालों के लिये इस स्वरावलि का उच्चार दुष्कर और नितान्त कष्टसाध्य है। पण्डित भातखण्डे ने न जाने क्या समझकर प्रथमवर्ष के पाठ्यक्रम में 'तोडी' को प्राथमिक शिक्षण में ही स्थान दे दिया है, जो शिक्षण शास्त्रकी वैज्ञानिक पद्धति के सर्वथा प्रतिकूल है; और किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

गुरु के पास बैठकर जो तोडी सीखें हों, अपने शिष्यों को सिखा कर जिन्होंने अनुभव किया हो, वे ही इसकी कष्ट साध्यता को समझ सकते हैं। पाठ्यक्रम को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि विद्यार्थियोंकी ग्रहण शक्ति को जो सरलता से सुलभ हो, सुविधा से साध्य हो, उसे ही प्राथमिक शिक्षण में स्थान दिया जाय।

राग गुर्जरी तोड़ी

शुद्ध आलाप

(१) सा, ध॒ सा, रि॒सा ध॒ऽसा, म॒ ध॒ सा, सा साऽ रि॒सा ध॒ऽ म॒ ध॒ सा। सा रि॒ ग॒ऽ रि॒ग॒ऽ रि॒ ऽसा, सारि॒ऽसा, निसारि॒ग॒ऽसा, निसा सारि॒ रि॒ग॒ऽसा, ध॒ नि ऽ सारि॒ ऽ ग॒ऽसा, ध॒निसारि॒ ग॒ऽसा, ध॒नि ऽ ध॒सा ऽ निरि॒ऽ रि॒ ग॒ऽसा, ध॒नि निसा सारि॒ रि॒ग॒ऽसा, ध॒निसानि ऽ निसारि॒सा ऽ सारि॒ग॒रि॒ ऽ ग॒ऽसा, ध॒ऽ निसानि ऽ नि ऽ सारि॒सा ऽ सा ऽ रि॒ग॒रि॒ ऽ ग॒ऽसा, सारि॒ग॒ऽ ऽम॒ रि॒ग॒ऽ रि॒ ऽसा।

(२) ध॒सा ऽ निरि॒ ऽ साग॒ऽसा, ध॒सानि ऽ निरि॒सा ऽ साग॒रि॒ ऽ सा, ध॒नि ऽ ध॒सा ऽ ध॒रि॒ऽ ध॒ग॒ऽ रि॒ग॒ऽसा।

(३) सा, ग॒रि॒सानिध॒ ऽ ध॒ ग॒ऽ रि॒ ऽसा, म॒ ध॒नि सारि॒ग॒ऽ रि॒ ऽसा, म॒ध॒ऽ ध॒नि ऽ निसा ऽ सारि॒ ऽ रि॒ग॒ऽ रि॒ ऽसा, म॒ऽ निध॒ऽसा ऽ, ध॒ऽ सानि रि॒ऽ, सा ऽ ग॒रि॒ ऽ ग॒ऽ रि॒ ऽसा, म॒नि ध॒सा निरि॒ साग॒ ऽ रि॒ग॒ऽ रि॒ ऽसा, म॒निध॒सा ऽ ध॒सानिरि॒ ऽ साग॒रि॒ग॒ऽ रि॒ ऽसा।

(४) सा रि॒ ग॒ऽ, ध॒ नि सा ग॒, ग॒रि॒सारि॒ग॒, रि॒ ग॒ऽसा रि॒ऽसा ग॒, ग॒रि॒निध॒ ऽ ध॒ निसारि॒ग॒, नि ऽ सारि॒सा ग॒, रि॒ऽ ग॒रि॒ ऽसा।

रि
(५) सारिगरिग् ऽ, सागरिग् ऽ, सा ऽ गरिग् ऽ, निसारिग् ऽ, नि ऽ सारिग ऽ, ध निसारिग्,

ध् रि म रि
ध् ग् ऽ रि ग् ऽ ध् ऽ गरिग ऽ रि ग् ऽ रिसा।

रि सा रि रि
(६) रिरिसानिसा ऽ रि ग्, ग् गरिसारि ऽ रिरिसानिसा ऽ रि ग्, सासानिध् नि ऽ रिरिसानिसा ऽ

रि रि रि सा सा नि रि रि सा ध् नि
गगरिसारि ऽ रि ग्, ग् गरि—रि ऽ ग् ऽ, रि रिसा—सा ऽ, ग् गरि—रि ऽ ग् ऽ, सासानि—नि ऽ रिरिसा—सा ऽ

सा म् नि ध् नि सा म् म्
गगरि रि ऽ ग्, निनिध—ध् ऽ सासानि—नि रिरिसा—सा ऽ गगरि—रि ऽ ग्, रिग् ऽ रि ऽ सा।

रि रि रि नि ध्
(७) सारि ग् ऽ, गरि रिसा ऽ रि ग्, गरि—रिसा ऽ रिनिनिध् ऽ रि—ग्, गरि रिनि निध् ऽ

ध् नि सा रि सा सा रि रि
धनि निसा सारि रि ग्, ग् ऽ गरि ऽ रि ऽ रिसा ऽ रि ग्, रि ऽ रिनि ऽ नि ऽ निध् ऽ रि ग्,

रि रि सा रि
ग ऽ गरि रि ऽ रिनि नि ऽ निध् ऽ रि ऽ रिनि ऽ ग् ऽ गरि ऽ ग्, सारिग्—गरि ऽ निसारि—रिनि ऽ रि ग्,

ग
सारिग्—सागरि ऽ निसारि—निरिनि ऽ ध निसा—ध निध् ऽ रिग् ऽ, रि ऽ ऽ सा।

म् सा म् रि सा
(८) सारि गम् ∿∿ रि ग् ऽ मगरिसा, गगरि—सारि गम् ∿∿ रि ग् ऽ मगरि ऽ सा,

म् रि सा म् रि सा
गगरि सारि ममगरि ग म् ∿∿ रि ग् ऽ मगरि ऽसा, ध निसारि म् ऽ निसारि गम ∿∿ रि ग् ऽ मगरिऽसा,

म् सा
सा ऽ मगरि सानिध् म् ऽ म् ऽ रिग् ऽ मगरि ऽ सा।

ग् म् ध् म् सा रि ग् म् सां नि ग् म् सां
(११) सा रि ग् म् ध्, सा रि ग् म् ध्, सा रि ग् म् ध्, मधनि ऽ ध्, गम् मध् धनि ऽ

नि रि ग् सां नि सां नि सां
ध्; रिग् गम् ऽ मध् धनि ऽ ध्, ध ऽ धमग् धनि ऽ ध्, ध् ऽ धमम् मगग् ऽ गम् मध् धनि ऽ

नि म ध् म ग् म् ध नि सां नि सां नि ध् ध् . म्
ध, ध् ऽ ध् म् ग् रि ग् म् ध् नि ऽ ध् ऽ, ध् ऽ मगरिसा रिगमधनि ऽ ध्, निनिध् ध ऽ नि

सां नि ग् ग् रि म् म् ग् म् सां नि ग्
ऽ ध् ऽ, म् मग् ग् ऽ ध् धम् म् ऽ निनिध ध् ऽ नि ऽ ध, निधनिम् ऽ धमधग् ऽ मगमरि ऽ गरिगसा ऽ रि

म् ध् नि सां नि सां नि ध् म्
ग् म् ध् नि ऽ ध्, निध् निम् धम् धग् मग् मरि गरि गसा गरि गम् धम् निध् नि ऽ ध्, निध ऽ धम्

ग् रि सां नि म ग् रि
ऽ मग् ऽ गरि ऽ रिसा ऽ नि ऽ ध, ध् ऽ म् म् ऽ ग् ग् ऽ रि ऽ रि ऽ सा ऽ।

ॐ ॐ सा रि ग् म् ध्
(१२) सारिगम् धनिसांऽनि धनिध् ऽ, निरिगम धनिरसांऽनि धनिध् ऽ, सा रि ग् म् ध् नि

ॐ ग् ॐ नि म् ध्
सां ऽ नि धनिध्, सां ऽऽ निसांरिंसां ध् ऽ सां ऽ नि धनिध्, म् ध् सां ऽऽ रिंसांनि धनिध्, सां ऽ निसां ऽ

नि ध् ध् म् ॐ सा ॐ सा ॐ
ध् सां म् सां ऽ नि धनिध्, मगरि् सारिगमध् ऽ सां ऽ नि धनिध्, मगरिसा ऽ रिगमधसांऽनि धनिध्, सांऽऽम्

ध् सां ऽऽ म् मगरिनि निसा सां ऽऽ म मधसां ऽऽ म् धनिसां ऽऽ म् धसां ऽ,

सा सां ऽ नि धनिध् ऽ, मधम् ऽऽ गमग् ऽऽ रिग् रि ऽ सारिसा।

---

१ निषाद के प्रलम्बोच्चार में तार षड्ज का गुप्त स्पर्श है और बाद में धैवत के उच्चार के साथ पुनः निषाद का स्पर्श है। यह सूक्ष्म प्रयोग प्रत्यक्ष गुरुमुख से ही सीखा जा सकता है।

नि सां सा रि ग म ध नि
(१३) सा सां ऽ ध नि रि ऽ सां, सां ऽ निधमगरिसा ऽ सा रि ग म ध सां, सां ऽऽ नि सां ऽऽ

ध म सा नि
ध सां ऽऽ म सां ऽऽ सा सां ऽऽ निसा ऽऽ सां; सां ऽ सांनिध सां, सां ऽ निधम सां, सां ऽ मगरि सां, सां ऽ गरिसा

म रि
सां; सां ऽ सांनि ऽ निध ऽ धम ऽ मग ऽ गरि ऽ रिसा ऽ सां, निधमग ऽ रि ऽ ग ऽ रि ऽ सा।

नि रि
(१४) सां ऽ धनि धसां, मध मनि धसां, रिम गध मनि धसां, रिग रिम गध मनि धसां, सारि सा ग

सा ग रि म ग ध म ध
रि म ग ध म नि ध सां; सांनि सांनिध ऽ निध निधम ऽ धम धमग ऽ मग मगरि ऽ ग रि गरिसा ऽ सां, सांनिधम

ध म ग
ऽ निधमग ऽ धमगरि ऽ मगरिसा।

सा रि ग म ध नि
(१५) सा रि ग म ध नि सां ऽ निसां, रिसा गरि मग धम निध सां ऽ निसां, रिरिसा गगरि

ममग धधम निनिध सां ऽ निसां, सारिरि रिगग गमम मधध धनिनि सां ऽ निसां, रिसासा गरिरि मगग

धमम निधध सां ऽ निसां, रिसा—गरिरि ऽ गरि—मगग ऽ मग—धमम ऽ धम—निधध ऽ सां ऽ निसां,

सा रि ग म ध
गरि—रिसासा ऽ मग—गरिरि ऽ धम—मगग ऽ निध—धमम ऽ सांनि—निधध ऽ सां ऽ निसां, सारिगमधनिम ऽऽ

नि म ध नि नि नि
धसां ऽ निसां, सारिगमरि ऽ रिगमधग ऽ गमधनिम ऽ धसां ऽ निसां, सां ऽ निसांरिसांध ऽ धमम ऽ धसां ऽ

म
निसां, निधमगरिग ऽ धमगरिसारि ऽ रिग ऽ रि ऽऽ सा।

रि॒' रि॒'
(१६) सारि॒ग॒म॒ध॒नि सारि' ग॒' ऽ रि॒' ऽ ग॒ ऽ रि॒' ऽ सा, सा ऽ रि॒' ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा, निसारि॒'ग॒' ऽ

रि॒'ग॒'रि॒' ऽ सा, ध॒निसारि॒'ग॒' ऽ ध॒ ऽ ऽ ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा ; ध॒निध॒सा ऽ निसानिरि॒' ऽ सारि॒'साग॒' ऽ रि॒' ऽ सा,

नि रि॒'
रि॒'रि॒'सानिसारि॒'ग॒' ऽ ऽ रि॒'सानिध॒ ऽ सानिध॒म॒ ऽ ध॒सारि॒' ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा, सारि॒' रि॒'ग॒' ऽ निसा सारि॒' ऽ

रि॒' रि॒' सा सा नि
ध॒नि निसा ऽ रि॒' ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा, सारि॒'—रि॒'ग॒' ऽ ग॒रि॒' रि॒सा ऽ, निसासारि॒' ऽ रि॒'सा सानि ऽ, ध॒निनिसा ऽ

नि ध॒ सा ध॒ म॒ नि नि
सानि निध॒ ऽ, ध॒नि निसा सारि॒' रि॒'ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा, ग॒'रि॒'—रि॒'सा ऽ सानि निध॒ ऽ निध॒ ध॒म॒ ऽ म॒ ध॒

रि॒' नि ध॒ रि॒'
सारि॒' ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा, रि॒'रि॒'सा निसानि ऽ सासानि ध॒निध॒ ऽ निनिध॒ म॒ध॒म॒ ऽ ध॒ सारि॒' ग॒' ऽ रि॒' ऽ सा,

नि ऽ सानि ध॒ ऽ निध॒ म॒ ऽ ध॒म॒ ग॒ ऽ म॒ग॒ रि॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ सा।

म॒' रि॒' म॒'
(१७) सारि॒ग॒म॒ध॒निसारि॒'ग॒' ऽ रि॒' ग॒' ऽ रि॒' सा, सारि॒ग॒म॒ध॒निसा ऽ सा, रि॒ग॒म॒ध॒निरि॒' ऽ रि॒, ग॒म॒ध॒नि

म॒ ग॒ रि॒
रि॒'ग॒' ऽ ग॒, म॒ध॒निरि॒'ग॒'म॒' ऽ म॒, म॒ध॒सा ऽ निसा, सा ऽऽ रि॒'सानिध॒ ऽ ध॒ ऽ ऽ निध॒म॒ग॒ ऽ म॒ ऽ ऽ ध॒म॒ग॒रि॒ ऽ ग॒ ऽ

म॒ग॒रि॒सा।

राग गुर्जरी तोड़ी

मुक्त तानें

रिसानिध् सानिरिसा रिगरिसा, सारिगरि रिगरिसा, रिगरि रिगरि सारि सारिगरि रिगरिसा, निसारिग् रिगरिसा, ध् निसारि निसारिग् रिगरिसा, म् ध् निसा ध् निसारि निसारिग् रिगरिसा, निध् सानि रिसा गरि गग् रिगरिगरिसा धम् निध् सानि रिसा रिगरिग् रिगरिसा, म् ध् निसा सानिध् म् ध् निसारि गगरिसा। म् ध् निध् ध् निसानि निसारिसा रिगरिसा। सारिगरि गरिसारि रिगरि सा, निसारि सा सारि गरि गरि सारि रि गरि सा, ध् निसानि निसारि सा गरि सारि रि गरि सा, म् ध् निध् ध् निसानि निसारि सा सारि गरि गरि सारि रि गरि सा। गरि सारि रि स निसा सारि गरि रि गरि सा, गरि सारि रि सानिसा सानिध् नि रि सानिसा गरि सारि रि गरि सा। गरि सारि रि सानिसा सानिध् नि निध् म् ध् सानिध् नि रि सानिसा रि गरि सा। रि गरि रि गरि सारि रि गरि सा, रि गरि रि गरि सारि सा सारि सा रि गरि रि गरि सारि रि गरि सा, रि गरि रि गरि सारि सा सारि सा निसानि निसानि रि गरि रि गरि सारि रि गरि सा, रि गरि रि गरि सारि सा सारि सा निसानि निसानि ध् निध् ध् निध् रि गरि रि गरि सारि रि गरि सा, रि गरि रि गरि सारि सा सारि सा निसानि निसानि ध् नि ध् ध् नि ध् म् ध् म् म् ध् म् रि गरि रि गरि सारि रि गरि सा। सारि गम् मगरि सा रि गरिग् मगरि सा, निरि गम् निऽऽम् मगरि सा, गरि गगरि सा, गरि रि गरि रि गरि गगरि सा मगरि सा, सारि गरि रि गमग् रि गमग् मगरि सा। सारि सारि रि गरि ग् गमगम् रि गरि सा, ध् निध् नि निसानिसा सारि सारि रि गरि ग गमगम रि गरि सा। म् ध् म् ध् ध् नि ध् नि निसानिसा सारि सारि रि गरि ग् गमगम् रि गरि सा। रि सानिसा गरि सारि मगरि ग गमरे ग् रि गमग रि सानिसा। सारि गम् धधमगरि सा धधमगरि सा, गरि रि मगग् धमधध् मगरि सानिसा। रि गमधऽध् मधमगरि सा, रि रि रि गगग् ममम धधध् मगरि सा। सासा रि रि गग् मम धध मगरि सानिसा। ध् ध् ध् गगग रि सा, गरि रि मगग धम् धध् मगरि सानिसा। सारि गम् धमऽम् गमधध् मगरि सा, सारि गम् धरि ऽरि रि गमध् मगरि सा। सारि रि सारि रि सारि

सा रि ग्

रि गग रि गग रि ग, गमम् गमम गम, गमधध् मगरि सा। गगरि रि ऽरि ममग् गऽग् धधम् मऽम् धधमगरि सा। ध् ध् ध् गगग् धधमगरिसा। सारिगम् धनिमध् मनिधम् मगरिसा। रिगमधनि मऽम् मनिधम् मगरिसा, निरिगम् धनिमध् मनिधम् मगरिसा। ध् निसारि गगरिसा, रिगमध् निनिधम् मनिधम् मगरिसा। म् ध् निसा ध् निसारि निसारिग् सारि गम् रिगमध् गमधनि मनिधम् मगरिसा। निनिनि ममम निनिधनि धममगरिसा। निःरिऽगऽमऽ निनिधम् मगरिसा। निऽमऽ निऽऽनि धनिधम् मगरिसा। सारिगग् रिगरिसा, रिगमम गमगरि, गमधध् मधमग, मधनिनि धनिधम्, धनिसांसां निसांनिध्, मधनिनि धनिधम्, गमधध् मधमग, रिगमम गमगरि सारिगम रिगरिसा[1]। गगरिग रस

---

[1] इसी तान को तार सप्तक में भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

म्म्ग्म्ग्रि् ध्ध्म्ध्म्ग् निनिध्निध्म् सा॰निसांनिध् रिं्रिं्सांरिं्मंनि गं्गं्रिं्गं्रिं्सां रिं्रिं्सांरिं्सांनि सांसांनिसांनिध्
निनिधनिधम् ध्ध्म्ध्म्ग म्म्ग्म्ग्रि् ग्ग्रि्ग्रि्सा, सारि्ग्म् ध्निसांरि्' सांनिध्म्म्ग्रि्सा। निरि्ग्म्ऽम् म्ग्रि्सा।
रि्ग्म्ध्ऽध् ध्म्ग्रि, ग्म्ध्निऽनि:निध्म्ग्, म्ध्निसांऽसां सांनिध्म्, ध्निसांरि्ऽरि्' रि्'सांनिध्, सांनिध्म् निध्म्ग्
ध्म्ग्रि म्ग्रि्सा रि्ग्रि्सा ध्निध्म् रि्'गं्रि्सां सांनिध्म् म्ग्'रि्सा। सारि्ग्म् ध्निसांरि् ग्'ग्'रि्'सां सांनिध्म्
म्ग्रि्सा। ग्'ग्'रि्'सां सांनिध्म् म्ग्रि्सा ग्'ग्'ऽरि्' सांनिध्म् म्ग्रि्सा, रि्'ग्'रि्ग्'ऽरि्' सांनिध्म्
म्ग्रि्सा। ग्ग्रि्सा निनिध्म् ग्'ग्'रि्'सां सांनिध्म् म्ग्रि्सा। ग्रि्ग्ग्रि्सा निध्निनिध्म् ग्'रि्'ग्'ग्'रि्'सां
सांनिध्म् म्ग्रि्सा। ग्रि्रि् ग्ग्ग्रि्सा, निध्ध्निनिनिध्म्, ग्'रि्'रि्'गं्गं्गं्रि्'सां सांनिध्म् म्ग्रि्सा।
सारि्ग्म् म्ग्रि्सा म्ध्निसां। सांनिध्म् सांरि्'ग्म्' म्'ग्'रि्'सा सांनिध्म् म्ग्रि्सा। निरि्ग्म्ऽम् म्ग्रि्सा,
म्ध्निसांऽसां सांनिध्म्, निरि्'ग्म्'ऽम्' म्ग्रि्'सां सांनिध्म् म्ग्रि्सा। म्ग्रि्सा सांनिध्म् म्'ग्रि्'सां सांनिध्म्
म्ग्रि्सा। निरि्ग्म्ध्नि [निरि्'ग्म्' ध्'ध्म्'ग्'रि्'सां सांनिध्म् म्ग्रि्सा। निरि्ग्म्ध्न निरि्'ग्म्'ध्'नि'
सांनिध्म्' म्'ग्'रि्'सां सांनिध्म् म्ग्रि्सा।

नोट :—ऊपर लिखी तानों में ही बीच बीच में कहीं-कहीं निम्नलिखित ढंग से पंचम का प्रयोग करने से पंचम वाली तोड़ी (मियाँ की तोडी) का रूप बन सकेगा।

पम्पध्म्प रि्ग्रि्सानि्सा, पऽम्प्ध्म्ग् रि्ग्रि्सा, म्पध्प म्पध्ध् म्ग्रि्सा। पम्ध्प निध्सांनिध्प ग्म्पध्म्ग्रि्सानि्सा। पम्ध्प निध्सांनि रि्'सांनिसां ध्पम्प म्पध्ध् म्ग्रि्ग्रि्सानि्सा। निरि्ग्म्ध्नि सांरि्'सांनिध्म् म्पध्ध् म्ग्रि्ग्रि्सानि्सा। निरि्ग्म् ध्निसांरि् ग्'ग्'रि्'सां सांरि्'सांनिध्प म्पध्प्म्ग् रि्ग्रि्सा।

राग गुर्जरी तोड़ी

बड़ा ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—अब मोरे राम राम रे (रब) राम, राम राम रे (रब) राम।

अन्तरा—नित दिन तिहारी टेर करत मनरंग हम चेरी तुम श्याम, राम॥

स्थाई

०				१२			
						सारि॒सासा -	(नि॒) - ध॒ - नि॒
						अ • ब • ऽ	ऽ मो ऽ रे

	×			५			
सा	नि॒सा - - सा	सा - सा ध॒ -	- - नि ध॒म॒म॒ग॒	(ग॒) रि॒ - - -	- - रि॒ ग॒म॒	(ग॒) रि॒ - - -	सा - रि॒ सारि॒
रा	• • ऽ ऽ म	रा ऽ • • ऽ	ऽ ऽ • म • • •	रे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र ••	रा ऽ ऽ ऽ	• ऽ • म•

०				१२			
रि॒ग॒ - -	- - ग॒ -	रि॒ग॒म॒ध॒	ध॒म॒ म॒ग॒ - (म॒) रि॒	ग॒ - म॒ रि॒	- सा - सा	सारि॒सासा -	(नि॒) - ध॒ - नि॒
रा • ऽ ऽ	ऽ ऽ म ऽ	रा • • •	म• •• ऽ रे	र ऽ • रा	ऽ • ऽ म	अ • ब • ऽ	ऽ मो ऽ रे

अन्तरा

०				१२			
						(म॒) - म॒ ग॒ -	- म॒ध॒ म॒ध॒
						ऽ नि त ऽ	ऽ दि न ति•

×				५			
(ध)सां - - -	- - निसां -	सां — — —	निसां - - -	रिंसां निध - -	सां - नि रि'' सांरि'	रि' ग' - म'	ग' ग'रि' - -
हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ • • ऽ	री ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	दे • • • ऽ ऽ	• ऽ • र • •	क • ऽ •	र • • ऽ ऽ

०				११			
सां — — —	सांसां - सांरि' -	(नि) नि — ध —	(म) म — ग —	म — रि —	ग — — —	म — ग —	— — म ध
ऽ	• • ऽ • • ऽ	म ऽ न ऽ	र ऽ ग ऽ	• ऽ • ऽ	• ऽ ऽ ऽ	ह ऽ म ऽ	ऽ ऽ चे •

×				५			
सां - -	रि'सांसां नि सांरि'	सांनिनि ध - नि	धमम ग - -	रिग मध निध	धमम ग रिगम	(ग) रि — — —	सा - रि सारि
री ऽ ऽ ऽ	• • • • तुम	श्या • • • ऽ •	म • • • ऽ ऽ	सं • • • • •	म • • • • व •	रा ऽ ऽ ऽ	• ऽ • म •

आगे स्थाई की भाँति रहेगा।

राग गुर्जरी तोड़ी

त्रिताल

गीत

स्थायी—रंग जिन डारो, भीजे मोरी चुनरिया।

अन्तरा—छपक झपक गहि गहि यदु नंदन,
"प्रणवरंग" केसरिया, तुम हो नवल खेलरिया॥

स्थायी

×				५				०				१२			
											नि	ध॒	म॒	ग॒	रि
											रं	•	ग	जि	न
सा	–	रि॒	–	ग॒	–	म॒	–	ध॒	(म॒)म॒	ध॒	नि	ध॒	म॒	ग॒	रि॒
डा	ऽ	•	ऽ	•	ऽ	•	ऽ	•	•	रो	र	•	ग	जि	न
सासा	–	रि॒रि	–	ग॒ग॒	–	म॒म॒	–	ध॒	(ग)म॒	ध॒	नि	ध	म॒	ग॒	रि
डा•	ऽ	••	ऽ	••	••	••	ऽ	•	•	रो	रं	•	ग	जि	न
सा	ग॒	–	रि॒	नि	ध॒	म॒	ग	रि॒ग॒	ग॒म॒	म॒ध॒	ध॒नि	निध॒	ध॒म॒	म॒ग॒	ग॒रि॒
भी	जे	ऽ	मो	•	•	री	चु	न•	रि•	या•	रं•	••	ग•	जि•	न•

अन्तरा

×				५				०				१२			
म॒	म॒	ग॒	ग॒	म॒	म॒	ध	ध॒	(ध॒)म॒	ध॒	सां	सां	सां	सांनि	रिं॒	सां
छ	प	क	झ	प	क	ग	हि	ग	हि	य	दु	नं	••	द	न

×				५				०				११			
रि॒'सां	निध॒	ध॒	(ध)सां	–	सां	(गं)रि॒	गं	रि॒'	सां	(नि)ध॒	–	ध॒	नि	म॒	ध॒
प्र ०	ण ०	ब	रं	ऽ	ग	के	०	स	रि	या	ऽ	तु	म	हो	०
म॒ध॒	ध॒सां	सांरि॒'	रि॒'गं॒	रि॒'	नि	ध	म॒	ग॒	रि॒	सा	नि	ध॒	म॒	ग॒	रि॒
न ०	ब ०	छ ०	से ०	ल	रि	या	०	०	०	०	रं	०	ग	लि	न

तानें

	×				५				०				११			
१)									सारि॒	मग॒	रि॒सा	रं	ऽ	ग	लि	न
२)								सारि॒	गम॒	मग॒	रि॒सा	,,		,,		
३)							सारि॒	गम॒	धध॒	मग॒	रि॒सा	,,		,,		
४)						सारि॒	गम॒	धनि	निध॒	मग॒	रि॒सा	,,		,,		
५)					सारि॒	गम॒	धनि	सांनि	धम॒	मग॒	रि॒सा	,,		,,		
६)				सारि॒	गम॒	धनि	सांरि॒'	सांनि	धम॒	मग॒	रि॒सा	,,		,,		
७)			सारि॒	गम॒	धनि	सांरि॒'	गंरि॒'	सांनि	धम॒	मग॒	रि॒सा	,,		,,		

×				५				०				११			
८)	सारि	गम	धनि	सारिं'	गंमं'	गंरिं'	सांनि	धम	मग	रिसा	„		„		
९) सारि	गरि	रिग	मग	म	धम	मध	निनि	धम	मग	रिसा	„		„		
१०) सांनि	धनि	निध	मध	धम	गम	मग	रिग	गरि	गग	रिसा	„		„		
११) सारि	गग	रिग	रिसा	रिग	मम	गम	गरि	गम	धध	मध	मग	मध	निनि	धनि	धम
धनि	सांसां	निसां	निध	निसां	रिं'रिं'	सांरिं	सांनि	धनि	सांसां	निसां	निध	मध	निनि	धनि	धम
गम	धध	मध	मग	रिग	मम	गम	गरि	सारि	गग	रिसा	रं	ऽ	ग	बि	न
१२) गग	रिग	रिसा,	मम	गम	गरि,	धध	मध	मग,	निनि	धनि	धम	सांसां	निसां	निध,	गं'गं'
रिं'गं'	रिंसां,	रिं'रिं'	सांरिं'	सांनि,	सांसां	निसां	निध,	निनि	धनि	धम,	धध	मध	मग	मम	गम
गरि,	गग	रिग	रिसा,	सारि	गम	धनि	सांनि	धम	मग	रिसा	रं	ऽ	ग	जि	न
१३)								सारि	गम	–म	मग	रिसा	रिग	मध	–ध

	×				५				०				१३			
	घ्म्'	ग्र्‌	ग्म्	घ्नि	– नि	निध्	म्ग्	म्ध्	निर्सा	– र्सा	र्सानि	घम्	घ्नि	सारिं'	– रिं'	रिं'र्सा
	निध्	मध्	निर्सा	– र्सा	र्सानि	धम्	गम्	धनि	– नि	निध्	म्ग्	रिग्	म्ध्	– ध्	ध्म्	गरि
	सारि	ग्म्	– म्	म्ग्	रिसा	ग –	रिग्	– रि	सा –	ग् –	रिग्	– रि	सा –	ग् –	रिग्	– रि
						रं ऽ	ग जि	ऽ न	डा ऽ	रं ऽ	गजि	ऽ न	डा ऽ	रं ऽ	ग जि	ऽ न
१४)													ग्रि	रिसा	म्ग्	ग्रि
	ध्म्	म्ग्	निध्	ध्म्	स न	निध्	रिं'र्सा	स नि	ग्'रिं'	रिं'र्सा	रिं'र्सा	र्सानि	र्सानि	निध्	निध्	ध्म्
	ध्म्	म्ग्	म्ग्	ग्रि	ग्रि	रि,सा	– रि	ग्म्	ध् –	ध्, ध्	निध्	म्ग्	रि –	रि,ग्	म्ग्	रिरि
						रं	ऽ ग	जिन	डा ऽ	रो, रं	० ग	जिन	डा ऽ	रो, र	० ग	जिन
१५)	सारि	गम्	म्ग्	रिसा	रि.ग्	म्ध्	ध्म्	ग्रि	ग्म्	ध्नि	निध्	म्ग्	म्ध्	निर्सा	र्सानि	ध्म्
	ध्नि	र्सारि'	रिं'र्सा	निध्	म्ध्	निर्सा	र्सानि	ध्म्	ग्म्	ध्नि	निध	म्ग्	रिग्	म्ध्	ध्म्	ग्रि
	सारि	ग्म्	म्ग्	रिसा	सारि	ग्म्	ध्नि	र्सा'	र्सानि	ध्म्	म्ग्	रिसा	नि	ध्	ध् म्ग्	– रि
													रं	ऽ	ग जि	ऽ न
५	सा	–	सा	–	नि	ध्	ध् म्,ग्	– रि	सा	–	सा	–	नि	ऽ	म्ग	– रि
	डा	ऽ	रो	ऽ	रं	ऽ	ग जि	– न	डा	ऽ	रो	ऽ	रं	ऽ	ग जि	ऽ न

×				५				०				११			
१६) सारि्	ग्म्	ध्ध्	म्ग्	रि्सा,	रि्ग्	म्ध्	निनि	ध्म्	ग्रि्,	ग्म्	ध्नि	सांसां	निध्	म्ग्,	म्ध्
निसां	रिं'रिं'	सांनि	ध्म्,	ध्नि	सारिं'	ग्'ग्'	रिंसां	निध्,	म्ध्	निसां	रिं'रिं'	सांनि	म,	ग्म्	धनि
सांसां	निध्	म्ग्,	रि्ग्	म्ध्	निनि	ध्म्	ग्रि्,	सारि्	ग्म्	ध्ध्	म्ग्	रि्सा,	सारि्	ग्म्	ध्नि
सांरिं'	ग्'ग्'	रिंसां	सांनि	ध्म्	म्ग्	रिंसा	सां	रिंग्	–म्	ध्	–म्	–ग्	रिं	–ग्	–रिं
							र	ग बि	ऽ न	बा	ऽ बि	ऽ न	हा	ऽ बि	ऽ न
१७) सारि्	ग्म्	ग्रि्	ग्रि्	रि्ग्	म्ध्	म्ग्	म्ग्,	ग्म्	ध्नि	धम्	ध्म्	म्ध	निसां	निध्	निध्
ध्नि	सांरिं'	सांनि	सांनि	सांरिं'	ग्'गं	रिं'सां,	निसां	रिं'रिं'	सांनि,	ध्नि	सांसां	निध्	म्ध्	नि न	ध्म्
ग्म्,	ध्ध्	म्ग्,	रि्ग्	मम्	ग्रि्,	सारि्	ग्ग्	रि्सा,	सारि्	ग्म्	ध्नि	सां	रि्	ग्	रिं
									र•	••	••	•ऽ	ग	बि	न
१८) सारि्	ग्म्	ग्रि्,	रि्ग्	म्ध्	म्ग्,	ग्म	ध्नि	ध्म्,	म्ध्	निसां	निध्,	ध्नि	सांरिं'	सांनि,	निसां
रिं'सां	निध्,	ध्नि	सांनि	ध्म्,	म्ध्	नि.	म्ग्,	ग्म्	ध्म्	ग्रि्,	रि्ग्	म्ग्	रि्सा,	सारि्	गम्
, ध्नि	स –	– –	सारि्	ग्म्	ध्नि	सां –	– –	सारि्	ग्म्	ध्नि	सां –	– –	ग् –	रि् ग्	–रि्
													र ऽ	ग बि	ऽ न

×				२				०				३			
१९) साद्रि	गम्	साम्	मग्	द्रिसा,	द्रिग्	मध्	द्रिध्	धम्	गद्रि,	गम्	धनि	गनि	निध्	मग्,	मध्
निस	मसां	सांनि	धम्,	धनि	सांद्रि'	धद्रि'	द्रि'सां	निध्,	मध्	निसां	मसां	सांनि	धम्	गम्	धनि
गनि	निध्	मग्,	द्रिग्	मध	द्रिध	धम्	गद्रि,	साद्रि	ग	साम्	मग्	द्रिसा,	साद्रि	गम्	धनि
साद्रि'	'म्'	म'ग्'	द्रि'सां	सांनि	धम्	मग्	द्रिसा	नि	– ध्	ध्	– म्	म्	– ग्	ग्	– द्रि
								रे	ऽग	रे	ऽग	र	ऽग	बि	ऽन
२०) साद्रि	द्रि ग् सा	– ग्	गद्रि	द्रिसा,	द्रिग	ग म् द्रि	– म्	मग्		गम्	म् ध् ग्	– ध्	धम्	मग,	मध्
ध् नि म्	- नि	निध्	धम्,	धनि	नि सां ध्	– सां	सांनि	निध्,	निसां	सां द्रि' नि	–द्रि'	द्रि'सां	सांनि,	सांद्रि'	द्रि' ग्' सां
– ग्'	ग्'द्रि'	द्रि'सां,	द्रि'सां	सांनि,	स	निध्,	निध्	धम्,	ध	मग्,	मग्	गद्रि,	गद्रि	द्रिसा,	साद्रि
द्रिग्	गम्	मध्	धनि	निसां	सांद्रि'	द्रि'ग्'	द्रि'सां	सांनि	निध्	धम्	मग्	गद्रि	द्रिग्	गद्रि	गद्रि
														रंग	बिन
२१) साद्रि	द्रिग्	गद्रि	द्रिसा,	रिग्	गम्	मग्	गद्रि,	गम्	मध्	धम्	मग्,	मध्	धनि	निध्	धम्,
धनि	निसां	सांनि	निध् ,	[illegible]सां	सां	द्रि'सां	सांनि,	सद्रि'	द्रि'ग्'	ग्'द्रि'	द्रि'सां,	द्रि'ग्'	ग्'द्रि',	सांद्रि'	द्रि'सां,
निसां	सांनि,	धनि	निध,	मध्	धम,	गम्	मग्,	द्रिग्	गद्रि,	साद्रि	द्रिसा	गद्रि	गद्रि	गद्रि	द्रिग्
												रंग	रंग	बिन	बिन

राग गुर्जरी तोड़ी

ध्रुवपद—चौताल

गीत

अस्थायी—तेरे मन में ऐसो गुन रे
जैसो होइ, तैसो प्रकाश कर रे ॥

अन्तरा—कहूँ तोसे बार बार मूरख मन रे।
सोई सुर आवे सोई रर रे ॥

संचारी—खरज रिखब गान्धार मध्यम,
धैवत निषाद सुर को भर रे, भर रे, भर रे। .

आभोग—कहे बैजू बावरे, सुनो हो गोपाल नायक
नाद-विद्या अथाह काहू सों न अर रे, न अर रे, न अर रे।

स्थायी

×		०		५		७		०	
सा	सा	(नि) ध॒	ध॒	नि	सा रे॒	(ग॒) रे॒	ग॒	–	–
ते	•	रे	•	म	न •	में	•	ऽ	ऽ
(ग॒) म॑	ध॒	(ध॒) म॑	(म॑) ग॒	(ग॒) रे॒	(रे॒) ग॒	(ग॒) रे॒	–	सा	–
ऐ	•	सो	•	गु	न	रे	ऽ	• •	ऽ
(ग॒) सा	–	रे॒	(ग॒) रे॒	ग॒	ग॒	ग॒	म॑ ग॒	(ध॒) म॑	ध॒
जै	ऽ	सो	हो	•	इ	ते	• •	सो	•
म॑	(नि) ध॒	नि	ध॒	(ध॒) नि	(नि) ध॒	(ग॒) म॑	(म॑) ग॒	(ग॒) रे॒	सा
प्र	का	•	श	क	र	रे	•	•	•

अन्तरा

×		०		५		७		०	
(ग्)म्	(म)रि्	ग्	(ध्)म्	(नि)ध्	(नि)म्	(नि)ध्	सां	—	—
क	हूँ	•	तो	•	•	से	•	ऽ	ऽ
(सां)ध्	सां	रि्'	(रि्')ग्'	—	ग्'	(म')रि्'	ग्'	रि्'	सां
बा	•	•	•	ऽ	र	बा	•	•	र
सां	(नि)ध्	सां	नि	रि्'	सां	सां रि्'	ग्'	—	—
मू	•	र	ख	म	न	रे •	•	ऽ	ऽ
(म्')रि्'	—	रि्'	ग्'	रि्'	सां	सां	रि्' सां	ध्	—
जो	ऽ	ई	•	मु	र	आ	• •	वे	ऽ
(ध्)म्	ध्	म्	ध	(म्)नि	ध्	म्	ग्	रि्	सा
सो	•	ई	•	र	र	रे	•	•	•

संचारी

×		०		५		७		०	
सा	सा	सा	रि्	रि्	रि्	ग्	—	—	ग्
[illegible]	र	ब	रि	ल	ब	गा	ऽ	ऽ	ग्वा
—	ग्	(ग्)म्	—	म्	म्	(नि)ध्	—	ध्	ध्
ऽ	र	[illegible]	ऽ	ज	म	धे	ऽ	व	ट
(ध्)नि	नि	—	नि	सां	सां	ध्	सां	नि	रि्'
नि	धा	[illegible]	द	गु	र	को	•	•	•

×		०		५		७		०	
सां	रि॒'	रि॒'	गं॒	–	सां गं॒	रि॒'	नि	ध॒	म॒ ध॒
•	•	•	•	ऽ	म	र	रे	•	• •
नि	ध॒	म॒	ग॒	रि ग॒	म॒	ग॒	रि	–	सा
म	र	रे	•	• •	म	र	रे	ऽ	•

आभोग

×		०		५		७		०	
सा	सां	–	सां	–	सां	रि॒'	गं॒	रि॒'	सां
क	है	ऽ	वे	ऽ	जू	बा	•	म	रे
रि॒' सां	सां ध॒	–	सां	–	रि॒'	गं सां	गं रि॒'	रि॒' गं॒	गं॒
मु •	नो	ऽ	हो	ऽ	गो	पा	•	•	स
म॒' रि॒' –	–	सां	सां	नि ध॒	नि	सां	रि॒'	गं॒	गं
ना ऽ	ऽ	थ	क	ना	•	•	•	•	द
रि॒'	–	सां	–	नि ध॒	नि	ध॒ रि॒'	सां	–	सां
वि	ऽ	धा	ऽ	अ	•	•	धा	ऽ	इ
म॒	ध॒	नि	सां	–	सां रि॒'	गं॒	रि॒'	नि	ध॒
का	•	[illegible]	सों	ऽ	न •	अ	र	रे	•
म॒ ध॒	नि	ध॒	म॒	ग॒	रि ग॒	म॒	ग॒	रि	सा
न •	अ	र	रे	•	न •	अ	र	रे	•

राग पूर्वी

आरोह-अवरोह—नि़ रि॒ ग म॑ ध॒ नि सां, सां नि ध॒ प ऽ म॑ ग म ग ऽ म॑ ग रि॒ सा।

जाति—षाडव-वक्र सम्पूर्ण।

ग्रह—निषाद।

अंश—पूर्वाङ्ग में कोमल ऋषभ; उत्तरांग में कोमल धैवत उपांश।

न्यास—गांधार।

अपन्यास—पञ्चम।

विन्यास—मध्य षड्ज।

मुख्य-अंग—ग म ग, रि॒ गम ऽ ग, प ऽ म॑ ग म ग।

समय—सायंकाल सूर्यास्त के समय।

प्रकृति—द्रष्टव्य विशेष विवरण।

विशेष विवरण

पूर्वी एक सायगेय पूर्वाङ्ग प्रधान राग है। इसमें 'रि॒-ध॒' कोमल, और दो मध्यम लगते हैं। सूर्यास्त के पूर्व, पूर्वी, पूरिया धनाश्री आदि रागों में 'नि़ रि॒ ग' इन स्वरों का अंग मुख्यतः प्रयुक्त होता है। सायंकाल में सूर्यास्त के पूर्व निसर्ग की अवस्था भान्त मालूम होती है, और 'रि॒-ध॒' कोमल के साथ तीव्रतर मध्यम के प्रयोग से वह अवस्था रागों के द्वारा अभिव्यक्त की जाती है। प्राकृतिक शैथिल्य इन स्वरों में प्रतिघोषित होता है। प्रातःकाल में प्राणिमात्र की जो उत्फुल्ल स्थिति होती है, सायकाल में उससे विपरीत वातावरण रहता है। उसी का प्रतिबिम्ब तीव्रतर मध्यम और कोमल 'रि॒-ध॒' स्वरों के संयोग से निखर आता है।

इस राग का आरोह-अवरोह निम्नोक्त है :—

नि् रि् ग म् ध् नि र्सा—र्सा नि ध् प ऽ ऽ म् ग म रि ग, म् ग रि् सा। इसका मह-स्वर निषाद है, क्योंकि अलाप और तान का आरम्भ निषाद से होता है। पूर्वांग में कोमल ऋषभ और उत्तरांग में कोमल धैवत इसके अंश और उपांश स्वर हैं। न्यास गान्धार, अपन्यास पञ्चम और विन्यास मध्यषड्ज होगा। इसके अतिरिक्त पूरिया धनाश्री से पूर्वी को पृथक् रखनेवाली शुद्ध मध्यम की एक विशेष क्रिया है, जो इसे वैशिष्ट्य प्रदान करती है। वह यों है, ग म रि ग, नि् रि् ग म रि ग, रि् ग म् प ऽ म् ग म रि ग, प ध् म् प ऽ ऽ म् ग म रि ग, इत्यादि। गुरुमुख से यह विशेष क्रिया गले में बिठा लेनी चाहिए। अन्यथा 'प म् ग म ग' कहते समय बिहाग या परज दीख जाने की सम्भावना है। 'प म् ग म ग' कहते समय किन स्वरों के कण से बिहाग होगा, किनसे परज, किनसे पूर्वी, यह लेखन में समझाने पर भी कुछ अस्पष्ट रहने की सम्भावना है। (द्रष्टव्य 'परज' का विवरण)। इसलिये इन तीनों रागों की क्रियाएँ गुरु-मुख से सीख कर आत्मसात् करने से ही सम्पूर्णता स्पष्ट होगी।

इस में पूरिया धनाश्री से बचने के लिए 'म् ग म् रि् ग' यह स्वरावलि कतई न छुई जाय। साथ ही अवरोह करते समय 'रि्' नि ध् प' 'नि रि्' नि ध् प' इन प्रयोगों से भी बचकर ही इसकी अलापचारी की जाय।

तद्वत् 'सा रि् नि्' नि सा रि् नि, रि् सा रि् नि्, सा रि् सा रि् नि्, इस प्रकार मन्द्र 'नि्' पर कभी न ठहरें। इस प्रकार 'नि' का ठहराव 'गौरी' का आविर्भाव करेगा। वैसे ही 'नि् रि् नि् ग ऽ म् गऽ नि् रि् ऽ सा', इस ढंग से राग के स्वरों का उच्चारण कभी न किया जाए, अन्यथा उससे पूरिया का आविर्भाव हो जायगा। पूर्वी के अपने अङ्ग के निदर्शन के लिये निम्नोक्त स्वरावलि कंठस्थ कर लें।

'नि् रि् ग म रि ग, ग म रि् गम ऽ रि ग' ग म् प-म् ~~~ ग म रि् गम ऽ ग, नि् रि् ग म ध्म् प ऽ म् ग म रि् गम ऽ ग, म् ग रि् ऽ सा।

इसके पूर्वा, पूरबी, पूर्वी, पौरवी ऐसे अलग अलग नाम पाये जाते है। यह मध्य गति में गाया जाता है। थकान, निरुत्साह दैन्य आदिक भाव इसके स्वरों में निदर्शित होते हैं।

———

राग पूर्वी

मुक्त तानें

नि रिगग रिगमगरिसा, नि रिगमरम गमरिगमगरिसा। निरिगगरिसा निरिगमपम गमरिग मगरिसा। निनिनि रिरिरि गगग मपम पमगम रिग गरिसानिसा। निनिनि रिरिरि गगग मधम पधमरमग रिगमगरिसा। निरिगम पधमर गमरिग मगरिसा, पधप मरम गमग रिगग रिगमग रिसानिसा। निरिगग रिगमम गमपम गमरिग मगरिसा। निरिग निऽगगरि, रिगम रिऽमगग, गमप गऽपरम गमरिग मगरिसा। निरिगमगरि रिगमरमग गमरिग मगरिसा। निरिगमग रिगरि, रिगमरम गमग, गमरध र मपम, गमरिग मगरिसा। पधप मपम गमग रिगरि, पधप पधप मपम मपम गमग गमग रिगरि रिगरि, गमपम गमरिग मगरिसा। निगरिसा रिम गरि गरमग मधपम गमरिग मग रिसा। निनि गग मम निनिधपमप गमरिग मगरिसा, निनिनि रिरिरि गगग निनिनिधप पधरम गमरिग मगरिसानिसा। निनिनि गगग ममम निनिनिधपमप गमरिग मगरिसा। निरिरिसा रिगग रि गममग मधधम धनिनिध परमप गमरिग मगरेसा। निरिरिसा रिगग रि गममग मधधम धनिनिध पधमप गमरिग मगरिसा। धनिनि धनिनि धप पधमप गमरिग मगरिसा, रिगग रिगगरिसा, धनिनि धनिनिधप, पधमर गमरिग मगरिसा। रिगग रिगग धनिनि धनिनि मधध मधध गमम गमम रिगग रिगग निरिगमरम गमरिग मगरिसा। नि रिगमधनि सांनिधपमप गमरिग मगरिसा। निरिगम धनिसांरिं सांनिधप पधमप गमरिग मगरिसा। निरिगरि रिगमग गमधम मधनिध धनिसांनि धनिसांरिं सांनिधप पधमप गमरिग मगरिसा, धनिसांरिं सांनि धनिनि धनिनिधप पधप पधमर गमम गममरिग मगरिसानिसा। निरिगरि रिगमग गमरम गमगरि गमपम मगरिसा, निरिगम धनिधप मधमर गमगरि गमरम मगरिसा। रिगग रिगगरिसा धनिनि धनिनिधप रिंगंगं रिंगंरिंसां सांनिधप मधमर गमगरि गमपम मगरिसा। नि रिगरे रिगमग गमधम मधनिध धनिसांरिं सांनिधप मधमर गमपम गमरिग मगरिसा। निरिगम धनिनिरिं गंमंपं मंगंरिंसां सांनिधप मधमप गमरम गमरिग मगरिसा। गगरिगरिसा ममगमगरि धधमधमग निनिधनिधप सांसांनिसांनिध गंगंरिंगंरिंसां मंमंगंमंगंरिं गगरिंगंरिंसां सांसांनिसांनिध निनिधनिधप धधमधमग ममगमगरि गगरेगरिसा। सारिसा निसानि, रिगरे सारिसा, गमग रिगरि मरम गमग, पधप मरम, धनिध पधप, निसांनि धनिध, सांरिंसां निसांनि, रिंगंरिं सांरिंसां, गंमंगं रिंगंरिं, रिंगंरिं सांरिंसां, सांरिंसां निसांनि, निसांनि धनिध, धनिध पधप, पधप मपम, गमग रिगरि, रिगरे सारिसा। सांरिंसां सांरिंसां, निसांनि निसांनि, धनिध धनिध, पधप पधप, मपम मपम, गमग गमग, रिगरि रिगरि, सारिसा सारिसा। निसांरिंसां धनिसांनि, निसांरिंसां धनिसांनि मधनिध, निसांरिंसां धनिसांनि मधनिध गमधम, निसांरिंसां धनिसांनि मधनिध गमधम रिगमग, निस रिंसां धनिसांनि मधनिध गमधम रिगमग सारिगरि निसारिसा। निरिरिग गरिरिसा, रिगगम मगगरि, गममर पमग, मरधध धपरम मधधनि निधधर, धनिनिसां सांनिनिध, निसांसांरिं रिंसांसांनि, रिंसांसांनि निधधर धपपम पममग रिगगग रिगरेसा।

राग पूर्वी

विलम्बित ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—पियरवा की बाँह सो मोहे भावे,
लगे गरवा ए पिया।

अन्तरा—तू जिन सतावहो, तो सी तू बड़भागन,
सुघड़नी नार, पियरवा॥

स्थायी

			१२			
				-- म॒ध॒	म॒ - ग -	रि॒सासानि॒ - रि॒ ग रि॒
				ऽ ऽ पि •	य ऽ र ऽ	वा • • • ऽ • • की

×				५			
(ग) म॒ - - -	(प) ग - - -	(ग) प - ध॒पपम॒ -	- - प ध॒	पध॒म॒ - -	ग - रि॒ गम	ग - - -	- म॒ ध॒ म॒
बाँ ऽ ऽ ऽ	ह ऽ ऽ ऽ	सो ऽ • • • • ऽ	ऽ ऽ मो हे	भा • • ऽ ऽ	• ऽ • • •	वे ऽ ऽ ऽ	ऽ ला • गे

०				१३			
ग - - -	रि॒गरि॒ -	सा - - -	रि॒सासानि॒ - - रि॒	ग - - -	-- म॒ध॒	म॒ ग - -	रि॒सासानि॒ - रि॒ ग रि॒
ग ऽ ऽ ऽ	र • • ऽ	वा ऽ ऽ ऽ	ए • • • ऽ ऽ पि	या ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ पि •	य र ऽ ऽ	वा • • • ऽ • • की

अन्तरा

•			११			
			– – म् – ध	ध् सां – सां –	सां – सां –	– – निरिं
			ऽ ऽ तू ऽ •	बि ऽ न ऽ	ल ऽ बा ऽ	ऽ ऽ • प

×				५			
सां – – –	– नि – ध्	नि – – –	- धनि निरिं नि	ध् – – –	प – – –	पधमप • • मग	रि ग रि गम
ही ऽ ऽ ऽ	ऽ ला ऽ सी	तू ऽ ऽ ऽ	ऽ ब • • • ड	मा ऽ ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ	•••• ऽ ऽ ••	ग • • • •

•				१३			
ग – – –	मध् धनि निरिं नि	ध् – प –	पधमप - मग	रि ग रि गन	ग •, मध्	म् – ग –	रिसांसानि - रि ग रि
न ऽ ऽ ऽ	सु • ल • छ • •	नी ऽ • ऽ	ना ••• ऽऽ ••	र • • • •	• ऽ, पि •	य ऽ र ऽ	वा • • • ऽ • • की

राग पूर्वी

त्रिताल

गीत

स्थायी—अरि ये मैं का सब सुख दीना,
दूध पूत अरु अन धन लछमी, पियु पायो गोविंद रंग भीना।

अन्तरा—अधम उधारन, जग निस्तारन, कृपा करन,
दुखहरन, सुख सदन, सब बासन मो लायक कीना ॥

स्थाई

×				५				०				१३			
								ग	रि॒	गम॒	पम॒	ग	(ग) रि॒	ग	म॒
								अ	रि	ये •	• •	मैं	•	का	•
प	ध॒	म॒	प	ग	(प) म	(रि॒) ग	–	म॒	–	ग	रि॒	–	सा	सा	सा
स	ब	सु	ख	दी	•	ना	ऽ	दू	ऽ	ध	पू	ऽ	त	अ	र
नि॒	रि॒	ग	–	रि॒	सा	सा	सा	नि॒	नि॒	रि॒	–	ग	–	म॒	ध॒
अ	न	ध	ऽ	न	ल	छ	मी	पि	यु	पा	ऽ	यो	ऽ	गो	•
नि	सारि॒'	नि	ध॒	प	–	म॒ग	ध॒ग								
वि	द •	रं	ग	भी	ऽ	ना •	• •								

अन्तरा

×				४				०				१२			
								म्	ग	ग	ग	म्	–	धम्	ध
								अ	ध	म	ठ	धा	ऽ	र•	न
सां	सां	सां	–	सां	–नि	रिं	सां	रिं	गं	–	मं	गं	रिं	सां	सां
ज	ग	नि	ऽ	ता	ऽ•	र	म	क	पा	ऽ	क	र	न	हु	ल
रिं	नि	ध्	नि	ध्	प		ग	म्	म्	ग	–	ध म्	नि ध्	नि	स
ह		न	सु	स	स	द	न	स	ब	धा	ऽ	त	न	मों	•
ध नि	नि रिं	नि	ध्	प	–	मप	प								
सा	•	य	क	की	ऽ	ना•	••								

तानें

	×				५				०				११			
१)				पध्	पम्	गम	रिग	मग	अ	रि	ए ०	०	मैं	०	का	०
२)				नि्रि्	गम्	पम्	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)	न्रि्	गम्	प –	– म्	गम	रि्ग	मृग	रि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)				पध्	प, म्	पम्	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)			नि्रि्	गम्	पध्	मृप	गम	रिग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)	नि्नि्	रि्रि्	गग	मृम्	पध्	पम्	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	पध्	प, प	्प	मृप	म, म्	पम्	गम	र्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	गम्	पम्	मृप	धृप	प –	पम्	म	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९)	पप्	प।्	मृप	मृप	गम	गम	रि्ग	मग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

×				५				०				१३			
१०) नि़रि़	रि़ग	गम़	म़प	पध़	पम़	गम	रि़ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,	,,
११) नि़नि़	नि़नि	निनि	ध़प	ध़	म़प	गम	रि़ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१२) म़ग	रि़सा	सांनि	ध़प	पध़	प	गम	रि़ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१३) नि़रि़	गम़	ध़नि	नि,ध़	निनि	ध़प	म़ग	रि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१४) म़ग	म़ग	रि़सा	सांनि	सानि	ध़प	म़ग	रि़सा	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,
१) नि़रि़	गम़	ध़सां	– नि	ध़प	म़ग	रि़सा	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१६) नि़रि़	गम़	ध़नि	म़ध़	सांनि	ध़प	म़ग	रि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१७) नि़रि़	गम़	ध़नि	सांरि़'	सांनि	धप	म़ग	रि़सा	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,
१८) सासा	सा,सां	सांसां	सांरि़'	सांनि	ध़प	म़ग	रि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१९) सासां	– सां	सांनि	ध़प	पध़	म़प	गम	रि़ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

X | ५ | ० | १३

२०) सासां | -रि॒ं | सांनि | धृप | मृप | - मृ | गम | रि॒ग | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,,

२१) सानि॒ | रि॒सा | पम् | धृप | सांनि | रि॒ंसां | पम् | धृप | गम | रिग | अरि | ये • | मैं • | का | - | पध
पम् | गम | रि॒ग | अरि | ये • | मैं • | का | - | पध् | पम् | गम | रि॒ग | अरि | ये • | मैं • | का•

२२) नि॒रि॒ | गम् | धृनि | सांरि॒ं | सांनि | धृप | पध् | मृप | गम | रि॒ग | मृग | रि॒सा | अरि | ये • | मैं • | का•
- | धृमप - हो••ऽ | अरि | ये • | मैं • | का | - | धृमप - हो••ऽ | अरि | ये | मैं • | का • | स | न | स | म

२३) नि॒रि॒ | गरि॒ | रि॒ग | मृग | गम् | पम् | मृप | धृप | मृध् | निध् | धृनि | सांनि | निसां | रि॒ंसां | धृनि | सांनि
मृध् | निध् | मृप | धृप | गम् | पम् | गम | रि॒ग | अरि | ये • | अरि | ये • | अरि | ये • | मैं • | का•

२४) नि॒रि॒ | गम् | धृनि | सांनि | धृप | मृग | रि॒सा | नि॒रि॒ | गम् | धृनि | सांरि॒ं | सांनि | धृप | मग | रि॒सा | नि॒रि॒
गम् | धृनि॒ | निरि॒ं | गंगं | रि॒ंसां | सांनि | धृप | मृग | रि॒सा | नि॒रि॒ | गम् | धृनि | सां • | • • | मैं • | का•

२५) नि॒नि॒ | नि॒,रि॒ | रि॒रि॒, | गग | ग, मृ | मृम, | धृध् | धृ, नि | निनि, | रि॒ंरि॒ं | रिं, गं | गंगं, | रि॒ंसां | सांनि | धृप | मृग
रि॒सा, | नि॒नि॒ | नि॒, ग | गग, | निनि | नि, गं | गंगं | रि॒ंसां | सांनि | धृप | मृग | रि॒सा | अरि | ये • | मैं • | का •

	X				२				०				१३			
२६)					निरि_	गम्	पध्	पम्	धृध्	पम्	पध्	पम्	गम	रिग	मग	रिसा
	पध्	प, प	धप,	मप	म, म	पम्	गम	ग, ग	मग	रिग	मग	रिसा	निरि	निरि	रिग	रिग
	गम	गम्	मप	म प	पध्	पध्	मप	मध्	पध्	मप	गम	गम	रिग	रिग	मग	रिसा
	अरि	ये •	मैं	का •	।	ब	अरि	ये •	मैं •	का•	स	ब	अरि	ये •	मैं •	का•

राग श्री

आरोह-अवरोह—सा रि॒ऽ पऽ पम॑ध॒ऽप, ध॒नि रि॒ नि ध॒ऽप म॑ध॒ऽ म॑ग रि ऽ परि॒ऽ ग रि॒ऽसा।

जाति—औडव वक्र सम्पूर्ण।

ग्रह—ऋषभ।

अंश—ऋषभ, उपांश धैवत।

न्यास—पञ्चम।

अपन्यास—ऋषभ।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—रि॒ पऽ प रि॒, रि॒ऽ गरि॒ऽसा, ध॒ऽ निध॒ऽप।

समय—सन्ध्या।

प्रकृति—द्रष्टव्य विशेष विवरण।

विशेष विवरण

राग-रागिनी की वर्गीकरण परम्परा में 'श्री' राग का प्रमुख पुरुष रागों में स्थान पाया जाता है। शंकर के पाँच मुखों से अन्य पाँच रागों की एवं पार्वती के 'श्रीमुख' से इस छठे राग की उत्पत्ति मानी जाने के कारण इस राग का नाम 'श्री' है, ऐसी मान्यता प्रचलित है। इस राग का चलन कठिन है। इसीलिए विशेष योग्यता वाले गुणी ही इसको बरतते हुए देखे जाते हैं। 'रि॒-प' 'प-रि॒' ये संवाद-रहित स्वर संगतियाँ और रि॒ गरि॒ऽसा, ध निध॒ऽप, ऐसे आघात के स्वरोच्चार वाली क्रियाएं देखते हुए यह भयानक रस का द्योतक राग प्रतीत होता है। इसमें 'रि॒-ध' कोमल हैं और मध्यम तीव्रतर है, आरोह में गान्धार पञ्चम वर्ज्य हैं। कुछ परम्परा ऐसी भी हैं जिन में गान्धार धैवत वर्ज्य करके रि, म॑ प निर्सा यों इसका आरोह किया जाता है; हमारी परम्परा रि॒ म॑ ध॒ निर्सा हो जाने की आज्ञा देती

है। साथ ही रि ऽ गरि ऽ सा, ध ऽ निध ऽ प अथवा म ध निध ऽ प और म ध म ग रि—ये क्रियाएं जो कि मुख्यतः रागवाची हैं, 'रि म प नि' के आरोह की स्वीकृति नहीं देती हैं। कर्णाटक प्रदेश में जिस प्रकार के 'श्री राग' का प्रचार है, जो हमारे सारंग से मिलता जुलता है, उसके आरोह में 'रि म प निसां' जाना समुचित है। किन्तु हमारे 'श्री' के स्वरों को और चलन को देखते हुए 'रि म पनि सां' का आरोह ग्राह्य नहीं है। 'रि म पनि' का आरोह करना उतना कठिन नहीं है, जितना रि म ध नि' कष्ट साध्य है। जो राग कठिन माने गये हैं, उनमें मुख्यत. स्वरों की कष्ट साध्य अवस्था को दृष्टि में रखकर ही वैसी मान्यता बनी है। इस राग का सामान्य चलन निम्नोक्त है।

रि ऽ गरि ऽ सा, सा नि रि ऽ गरि ऽ सा, रि म रि, रि प ऽ रि, रि प म ध ऽ म ग रि, रि प प ऽ रि ऽ गरि ऽ सा।

रि प, म ध ऽ निध ऽ प, प म ध ऽ निध ऽ प, रि प म ध ऽ निध ऽ प, रि म धनि, रिं नि ध ऽ प, म ध ऽ म ग रि, प रि ऽ गरि ऽ सा।

रि म ध नि रिं ऽ गंरिं ऽ सां, सां नि रिं ऽ गंरिं ऽ सां, नि रिं ऽ नि ध ऽ प, म ध ऽ म ग रि, प रि ऽ गरि ऽ सा।

इस राग के जो कुछ आलाप दिए हैं, उनमें 'रि म प नि सां' के आरोह का भी दिग्दर्शन करा दिया गया है।

इसके चलन को देखते हुए ऋषभ इसका वादी, अंश और उपन्यास स्वर है, धैवत का उद्योग और पञ्चम न्यास है। ऋषभ पञ्चम, पञ्चम ऋषभ की स्वर-संगतियाँ इसके रागत्व को अभिव्यक्त करती हैं। 'रि - प' 'प - रि' के सदृश रि - ध' 'ध - रि', 'रि म', 'म रि' से भी 'श्री' की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि ये स्वर-संगतियाँ अन्य किसी राग में नहीं की जातीं। रि ऽ गरि ऽ सा, म निध ऽ प, निरिं नि ध ऽ प, म ध म ग रि ये स्वर क्रियाएं, इस राग की अभिव्यक्ति में सहायक हैं।

यह राग शाम को, सन्ध्या की वेला में गाया बजाया जाता है। सन्ध्या-वेला में प्रकृति क्लान्त और शान्त रहती है। ऐसे वातावरण में इस भीषण राग रूप का प्रयोग क्यों किया होगा, भावदृष्टि से यह विचारणीय है। तांत्रिकों की दृष्टि में सन्ध्या काल पैशाचिक क्रियाओं के लिए उपयुक्त माना गया है। शंकर के गणों का यह जागृति काल है। इसीलिए तो इस भीषण राग का इस काल में उपयोग नहीं होता होगा? शंकर के घोर ताण्डव नृत्य का यही काल माना गया है। इस भयानक राग के साथ उसका तो कोई संबंध नहीं है?

प्राकृतिक नियमानुसार सूर्योदय के समय जो प्राणी जागृति का अनुभव पाते हैं, वे सभी सूर्यास्त के बाद शान्त होकर विश्राम की कामना करते हैं, और निद्रा की गोद में जाना चाहते हैं, किन्तु प्राणि मात्र का जो विश्राम काल है, वही उल्लूक जैसे पक्षियों का जागृति काल है। निशाचरों का यह उदय काल है, चाहे प्राणिमात्र का वह अस्त-काल हो। महर्षियों ने इन सब पहलुओं को देखकर तो इस रागके लिये यह समय निर्धारित नहीं किया होगा?

संगीत के क्षेत्र में कितने ही अनुसन्धान कार्य हैं, जिनमें यह भी एक है। कोई द्रष्टा उसे देखेगा, जीवन के तप से खोजकर, इन रागों की विशेषताओं के रहस्य को उद्घाटित करेगा और जगत् को प्रदान करेगा।

राग श्री

मुक्त आलाप

(१) सा, रि ऽ गरि ऽ ऽ सा, निसा सारि ऽ गरि ऽ ऽ सा, सा ऽ नि रि ऽ ऽ गरि ऽ ऽ सा, नि ऽ ध सा ऽ नि रि ऽ ऽ गरि ऽ सा, सा ऽ नि नि ऽ ध साऽनि रि ऽ ऽ गरि ऽ ऽ सा, सानि निध सानि रि ऽ ऽ गरि ऽ ऽ सा।

(२) सा, रिनिध ऽ प, प ऽ म ऽ नि ऽ निऽनिध ऽ ऽ प, मप पध ऽ नि ऽ निध ऽ प, म पपम ऽ पमध ऽ सानिरि ऽ ग ऽ गरि ऽ ऽ सा, म पप ध ऽ निसानिरि ऽ ग ऽ गरि ऽ सा, ग ऽ गरिऽसा नि निध ऽप सानिरि ऽ गरि ऽ सा, ग ऽ गरि ऽ निऽनिध ऽ ध ऽ धम ऽ पसानिरि ऽ ग ऽ गरि ऽऽ सा।

(३) सारिनिसा ऽ नि रि ऽ ग ऽ गरि ऽ ऽ सा, पध म प सारिनिसा ऽ निरि ऽ ग ऽ गरि ऽ सा, रि ऽ नि नि ऽ ध ध ऽ म ध म निध सानि रि ऽ ग ऽ गरि ऽ ऽ सा, रिनिनि निध ध ऽ निध प ध म म ध म म निध ध सानिनि रि ऽऽ ग ऽ गरि ऽ सा।

(४) निसा सारि ऽ ग ऽ गरि ऽ, म पपध ऽ निसासारि ऽ ग ऽ गरि ऽ, मप पध ध नि निसा सारि ऽ ऽ ग ऽ गरि ऽ, पम म ऽ निध ध ऽ सानिनि ऽ रि ऽऽ गरि ऽ सा।

(१५) रिंरिसानिसारिमपनि ऽ, म घ पम प नि ऽ। रिरिसानिसा म् ऽ धधपमप नि, पमम् नि, गरिरि,

प
पमम् धपप नि, सानिनि रिसासा गरिरि पमम् धपप नि, सां ऽ निसां, निरिं ऽ निध् ऽ प ऽ मध् ऽ मगरि ऽ

प ऽ रि ऽ गरि ऽ सा।

(१६) निसारिमपनि ऽ सां ऽ निसां, रिमप सां ऽ निसां, पधमप ऽ पसां ऽ निसां, रि म रिम् मप पनि ऽ

ध प रि
धमम ऽ प सां ऽ निसां, निरिं ऽ निध् ऽ प, मध् ऽ मग रि ऽ प ऽ ऽ रि ऽ गरि ऽ सा।

रि
(१७) निसारिप ऽ ऽ रि, रिमपध् ऽ ऽ रि, मपनिसां ऽ रि, धनिसां रिं ऽ रि, प सां, रिसासा

सा रि
गरिरि प ऽ रि, गरिरि पमम् ध ऽ रि, पमम् धपप सां ऽ ऽ रि प सां ऽ निसां, सारि रिम मप ऽ रि,

ग रि म म प
रिम् मप पध् ऽ रि, मप पनि निसां ऽ रिं ऽ पसां ऽ निसां, सारिनिसा पधमप ऽ ऽ रि, पधमप सांरिंनिसां ऽ ऽ रिं,

म प रि
सारिनिसा पधमप सां ऽ निसां, निरिं ऽ निध् ऽ प, मध् ऽ मग रि ऽ रि ऽ ऽ रि ऽ गरि ऽ सा।

नि
(१८) धपमम् ऽ ध सां ऽ निसां, धमम् ऽ पसां ऽ निसां, धमम् ऽ ध् ऽ निध् ऽ प, सां ऽ निसां,

नि सा रि म
रि निरि ऽ गरि ऽ पमध् ऽ निध् ऽ पसां ऽ निसां, निसारिमप सां ऽ निसां, निसा सारि रिम् मप पसां ऽ निसां,

रिनिनि गरिरि पमप धपप सां ऽ निसां, निरिगरि ऽ मधनिध ऽ सां ऽ निसां, गरिरि — गरिरि ऽ निधध — निधध ऽ

सां ऽ निसां, सांनिरिं ऽ गं ऽ गंरिं ऽ सां, नि ऽ निधु ऽ प गं ऽ गंरिं ऽ सां, ग ऽ गरि ऽ नि ऽ निधु ऽ गं ऽ गंरिं ऽ

सां, गंरिंरिं — रिंनिनि ऽ रिंनिनि — निधध ऽ गं ऽ गंरिं ऽ सां, गरिंरिं — रिंनिनि ऽ रिंनिनि — निधध धपम — निधध

सांनिनि रिंसांसां गं ऽ गंरिं ऽ सां, सा ऽ प ऽ सां ऽ रिं ऽ गं ऽ गंरिं ऽ सां, रि ऽ म ऽ नि ऽ रिं ऽ गं ऽ गंरिं ऽ

सां, निरिं ऽ निध ऽ प, मध ऽ मग रि ऽ प ऽ रि ऽ गरि ऽ सा ।

नोट :— जिस प्रकार मध्य सप्तक में आलाप-विस्तार दिखाया गया है, उसी प्रकार तार सप्तक में भी करना चाहिए ।

राग श्री

मुक्त तानें

रिग् गरि्सासा, रिमम् रिगगरिसा, रिपप रिगगरिसा, रिगग रिमम् रिपप रिगगरिसा । रिसासा गरिरि पमम् धपप मग रिग गरिसासा । सासा रिरि मम् पप सासासा रिरिरि ममम् पपप मगरिग गरिसासा । सासासा रिरिरि सासासा ममम् सासासा पपप मगरिग रिगगरिसासा । रिपऽपमग रिमगरिसासा, रिपऽप मधऽम् निनिधपमग रिगगरिसासा । रिपऽप मगरिसा धरि'ऽरि' निधमग रिगरिसा । रिमम् मधध् मग रिगरिसा, मधध् धरि'रि' निधमग रि्गगरि्सासा । रि्सासा धपप रि्गगरि्सासा, रि्सासा धपप रि'सांसां धपप रि्गगरि्सासा, रि्रि्रि् धधध् रि'रि'रि' गंगंरि'सां रि'निधप मग रि्गगरि्सासा । रि्ऽपऽ धमम् मगग रि्गगरि्सासा, पऽसांऽ रि'निनि निधध् धमम् मगग रि्गगरि्सासा, रि्रि्रि् पपप मग रि्गगरि्सासा । गगरि् गगरि्सासा, निनिध निनिधपप, गंगंरि'गंगंरि'सांसां, निनिध् निनिधपप, गगरि् गगरि्सासा । रि्रि्रि् ममम् निनिनि धधप मधधम् मग रि्गगरि्सासा, निनिनि रि्रि्रि् ममम् निनिनिधप मधधम् मग रि्गगरि्सासा, ममम धधध् रि'रि'रि' मग रि्गगरि्सासा, पऽसांऽ निरि'रि'निधप मधधम् मग निनिनि धप मधधम् मग रि्गगरि्सासा । रि्ऽपऽ मधधम् मग रि्गगरि्सासा, रि्रि्रि् पपप मग रि्गगरि्सासा । रि्गगरि सासा, रि'ऽपंऽ रि'गंगंरि'सांसां निरि'रि'निधप मधधममग रि्गगरि्सासा, गगरि्सा निनिधप गंगंरि'सां निरि'निध् मधमग रि्रि्रि् धधध् रि'रि'रि'निधप मधधममग रि्गगरि्सासा । गगरि्गरि्सा निनिधनिधप गंगंरि'गंरि'सां निनिधनिधप गगरि्गरि्सा, रि्रि्रि् पपप मधधममग रि्गरि्सा । गगरि्गरि्सा निनिधनिधप गंगंरि'गंरि'सां निनिधनिधप गगरि्गरि्सा, रि्रि्रि् पपप मधधममग रि्गरि्सा । गरि्रि् गरि्रि् गरि् गगरि्सा, निधध् निधध् निध निनिधप, गंरि'रि' गंरि'रि' गंरि' गंगंरि'सां, रि्गगरि्सासा । गरि्रि् गरि्रि् गरि् गगरि्सा, निधध् निधध् निध निनिधप, गंरि'रि' गंरि'रि' गंरि' गंगंरि'सां, रि्गगरि्सासा । रि्रि्रि् ममम रि्रि्रि् पपप रि्रि्रि् धधध् रि्रि्रि् निनिनि रि्रि्रि् निरि'निध् मधमग रि्गरि्सा । रि्रि्रि् ममम रि्रि्रि् पपप रि्रि्रि् धधध् रि्रि्रि् निनिनि रि्रि्रि् रि'रि'रि' निरि'रि'निधप मधधममग रि्गगरि्सासा ।

राग श्री

ख्याल—एकताल विलम्बित

गीत

स्थायी—गजरवा बाजो रे बाजो बाजो रे ।

अन्तरा—घरि पल छिन माई यों बीतत, हीं
आठो यामें श्याम हिये कोऊ न रही ॥

स्थाई

	१		११		
		— — — ग	रि॒ - रि॒सा नि॒सा - -	— सानि॒ रि॒ —
		ऽ ऽ ऽ ग	ब ऽ • • • • ऽ ऽ	ऽ र • बा ऽ

×		०		४	
प — — —	म॑प — — —	म॑प — म॑ध॒ —	— — म॑ ग	प रि॒ — — —	नि॒स — नि॒ ध॒
बा ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	• • ऽ • • ऽ	ऽ ऽ जो •	रे ऽ ऽ ऽ	• • ऽ बा जो

०		१		११	
नि॒नि॒ — रि॒रि॒ —	— नि॒सारि॒म॑	ध॒ — म॑ ग	प रि॒ — — ग	रि॒ - रि॒सा नि॒सा - -	— सानि॒ रि॒ —
बा • ऽ • • ऽ	ऽ • • • •	• ऽ जो •	रे ऽ ऽ ग	ब ऽ • • • • ऽ ऽ	ऽ र • बा ऽ

अन्तरा

	३		११	
	म् – म्' –	मध् सां – सां –	सां – सां –	– सांनि रिं' –
–	ब ऽ रि ऽ	प ऽ ह ऽ	कि ऽ न ऽ	ऽ मा • • ऽ

×		०		५	
सां – – –	निसां – – –	रिं'सांसांनि – – –	– – – रिं' गं – – –	रिं' • रिं'सांनिसां – –	– – – म् ध्
हैं ऽ ऽ ऽ	• • ऽऽऽ	यो • • • ऽऽऽ	ऽऽऽ • • ऽऽऽ	बो ऽ • • • • • ऽऽ	ऽ ऽ ऽ त

०		६		११	
ध् निरिं' नि – –	धमम् – म् ध् –	ध् रि – – –	रिं' – – –	सां – – –	नि ध् नि –
त • • ऽ ऽ	हीं • • ऽ – ऽ	म ऽ ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ	यों ऽ ऽ ऽ	या • • ऽ

×		०		५	
धमम् – धध् –	– – – ग रि	रिं' नि – – –	– – सां रिं'	रिं'निनिध् –	– – – ग रि
में • • ऽ • • ऽ	ऽ ऽ ऽ का	• ऽऽऽ	ऽ ऽ म कि	ये • • • ऽ	ऽ ऽ ऽ को

०		६		११	
गं रिं' – – –	सां – – –	रि – गरि –	सा – – ग		
ड ऽ ऽ ऽ	ज ऽ ऽ ऽ	र ऽ ही • ऽ	• ऽ ऽ ग		

राग श्री

त्रिताल

गीत

स्थायी—एरी हूँ, तो आस न गइकी, पास न गइकी,
लोगवा धरे मैंका नाँव ।

अन्तरा—जब ते पिया परदेसँ गँवन कीन्हो,
देहरी न दीन्हो पाँव ॥

स्थायी

×				२				०				३			
											रि॒	म॑	ध॒	निं	–
											ए	री	हूँ	तो	ऽ
नि	–	सां	रिं॒	सां	नि	सां	–	ध॒ सां	नि रिं॒	नि	~	प	प	प	–
आ	ऽ	स	न	ग	इ	की	ऽ	पा	•	स	म	ग	इ	की	ऽ
प	पध॒	–	म॑	ग	रि॒	ग	रि॒	सा	–	–	सा	रि॒रि॒सा	नि॒सा	–	सा
•	••	ऽ	•	•	लो	•	ग	वा	ऽ	ऽ	ध	रे••	••	ऽ	मैं
सा प	–	प –म॑	ध॒	म॑	ग	रि॒	ग	ग रि॒	–	सा	रि॒	म॑	ध॒	नि	–
का	ऽ	ऽ•	•	•	•	•	•	नाँ	ऽ	व	ये	री	हूँ	तो	ऽ

अन्तरा

×				५				०				११			
·		-	म	म	सों (ध)	–	सां	सां	–	–	–	निसां	–	निरिं	–
			ज	ब	ते	ऽ	पि	या	ऽ	ऽ	ऽ	••	ऽ	प•	ऽ
सां	–	–	रिंसांसांनि	–	रिं	गं	गंरिं	गं	रिं	रिं	सां	नि	–रिं	नि	ध
र	ऽ	ऽ	दे•••	ऽ	स	•	ग•	य	•	न	•	•	ऽ•	की	•
धमम	–	·	ध	नि	–रिं	सं	रिं	रिं (ध)	नि	ध	–	प	–	मर–	–
नो••	ऽ	ऽ	दे	ह	ऽरी	•	न	दी	••	•	ऽ	न्हो	ऽ	••ऽ	ऽ
पध–	–	–	म	ग	–	रि	ग	रि	सा		रि	म	ध	नि	–
••ऽ	ऽ	ऽ	•	•	ऽ	पाँ	•	व	•	ऽ	ये	री	हू	तो	ऽ

नोट :—जो लोग भी के आरोह में 'रिमपनि' बरतते हैं, वे इस गीत में भी 'रिमधनि' के स्थान पर 'रिमपनि' लेते हैं।

तानें

	×	–		५				०				१३			
१)				सासा	सा, रि	रिरि	पप	प, रि	गम	रिसा	ए	रो	˙	तो	•
२)				निसा	रिम	पध	मग	रिग	रिसा	निसा	,,	,,	,,	,,	,,
३)				सासा	सा, रि	रिरि,	मम	धध	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
४)				गरि	रि, प	मम,	धध	ग	रिसा	निसा	,,	,,	,,	,,	,,
५)				निसा	रिम	धनि	नि, ध	निनि,	धप	मग	रिसा	परी	ऽहूँ	,,	,,
६)				निसा	रिम	धनि	स नि	धप	मग	रिसा	ए	री	,,	,,	,,
७)				रिम	धनि	मध	मनि	धप	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
८)				रि	–	–	मप	धध	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
९)		रिरि	रि, प	पप,	रिरि	रि, म	मम	धध	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,

X				५				०				१३			
१०) रि॒रि॒	रि॒,म्	म्म्,	रि॒रि॒	रि॒ प	पप,	रि॒रि॒	रि॒, ध	ध्ध्	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
११) रि॒ग	रि॒,रि॒	गरि॒,	रि॒ग	गरि॒	म्ध्	म्,म्	ध्म्	म्ध्	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
१२) नि॒सा	रि॒म्	धनि	नि,ध्	निनि	म्ध्	ध्,म्	ध्ध्,	म्ग	रि॒सा	नि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
१३) नि॒नि॒	नि॒,रि	रि॒रि॒	म्म्	म्,ध्	ध्ध्	निनि	ध्प	म्ध्	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
१४) नि॒सा	रि॒म्	ध्नि	सां -	- नि	ध्प	म्ग	रि॒सा	ध्प	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
१५) रि॒रि॒	रि॒, प	पप,	रि॒रि॒	रि॒, नि	निनि	रि॒रि॒	रि॒, रि॒'	रि॒'रि॒'	सांनि	ध्प	म्ध्	म्ग	रि॒सा	हूँ	तो
१६) रि॒रि॒	रि॒, म्	मम,	रि॒रि॒	रि॒, प	पप,	रि॒रि॒	रि॒, ध	धध,	रि॒रि॒	रि॒, नि	निनि	रि॒रि॒	रि॒,रि॒'	रि॒'रि॒'	निध्
निनि	धम्	ध्ध्	म्ग	मम्	गरि॒	गग	रि॒सा	नि॒सा	रि॒म्	ध्नि	सां -	ए	री	हूँ	तो ऽ
१७) नि॒सा	रि॒म्	रि॒म्	म्ग	रि॒सा,	रि॒म्	पध्	रि॒ध्	ध्म्	गरि॒	म्ध्	निसां	म्सां	सांनि	ध्प,	ध्नि
सांरि॒'	ध्रि॒'	रि॒'नि	ध्प,	म्नि	निध्	म्ग,	रि॒ध	ध्म्	गरि॒	नि॒म्	म्ग	रि॒सा	ऐ री	- हूँ	तो -

× ५ ० १२

१८) रिग | ग, रि | गग | रिग | रिसा, | मग | प, म | पप | मध | मग, | रिं'गं | गं, रिं' | गंगं | रिं'गं | रिं'सां, | निसां

सां, नि | सांसां | निरिं' | निध, | मग | प, म | पप | मग | मग | मग | रिग | रिसा | निसा | ए | ऽ हूँ | तो ऽ

१९) रिग | ग, रि | गग | रिसा, | मग | प, म | धध | मग, | निसां | सां, नि | रिं'रिं' | निध, | रिं'गं | गं, रिं' | गंगं | रिं'सां,

निसां | सां, नि | रिं'रिं' | निध, | मप | प, म | धध | मग | रिग | ग, रि | गग | रिसा | ए | री | हूँ | तो

२०) गरि | रि, ग | रिरि | गग | रिसा | निसा, | निध | ध, नि | धध | निनि | धप | मग | गंरिं' | रिं गं | रिंरिं' | गंगं

रिं'सां | निसां | निध | ध, नि | धध | निनि | धप | मग | गरि | रि, ग | रिरि | गग | रिसा | निसा | हूँ | तो

२१) रिरि | रि, प | पप | मम | म, ध | धध, | पप | प, सां | सांसां, | निनि | नि, रिं' | रिं'रिं' | रिं'रिं' | रिं, पं | पंपं | रिं'गं

रिं'सां | निसां, | सांरिं' | सांरिं | धप, | मध | मग | रिग | रिसा | निसा | ये | री | • | हूँ | तो | •

२२) गरि | रि, ग | रिरि | धप | प, ध | पप, | गरि | रि, ग | रिरि | सांनि | नि, सां | निनि | गरि | रि, ग | रिरि | रिं'सां,

सां, रिं' | सांसां, | गंरिं | रिं, गं | रिंरिं | गंरिं' | रिं', गं | रिं'रिं' | रिं'नि | नि, रिं' | निनि | निध | ध, नि | धध, | धम | म, ध

मम, | मग | ग, म | गग, | गरि | रि, ग | रिरि | रिसा | सा, रि | सासा | ये | री | • | हूँ | तो | •

×				५				०				१३			
२३) गरि॒	रि॒, ग	रि॒रि॒,	रि॒सा	सा, रि॒	सासा,	धप	प, ध॒	पप	पम॒	म॒, प	मम,	मग	ग, म॒	गग,	गरि॒
रि॒, ग	रि॒रि॒,	रि॒सा	सा, रि॒	सासा,	सांनि	नि, सां	निनि	निध॒	ध॒, नि	धध॒,	प	प,ध॒	पप,	पम॒	म, प
मम॒,	मग	ग, म॒	गग	गरि॒	रि॒, ग	रि॒रि॒	रि॒सा	सा,रि॒	सासा,	गंरि॒ं	रि॒ं, गं	रि॒ंरि॒ं	रि॒ंसां	सां,रि॒ं	सांसां
सांनि	नि, स	निनि	निध	ध॒, नि	धध॒,	धप	प, ध॒	पप,	पम॒	म, प	मम॒,	मग	ग, म॒	गग,	गरि॒
रि॒,ग	रि॒रि॒,	रि॒सा	सा, रि॒	सा,सा,	सा	सां	–	सा	सां	–	सा	सां	–	ध॒	नि
					ये	री	ऽ	ये	री	ऽ	ये		ऽ	हूँ	तो
२४) निग	गरि॒,	रि॒सा	सा,रि॒	सा सा,	रि॒ग	पम	मग	ग, ग	रि॒रि॒,	रि॒ध॒	धप	पम॒	म, म॒	गग,	म॒नि
निध॒	धप	प,प	मम,	पसां	सांनि	निध॒	ध, ध॒	पप,	परि॒ं	रि॒ंसां	सांनि	नि,नि	धध॒	रि॒ंगं	गंरि॒ं
रि॒ंसां	सां,सां	निनि,	निध॒	ध, ध	पप,	पम॒	म, म॒	गग,	गरि॒	रि॒, रि॒	सासा	ये	री	[illegible]	तो
२५) रि॒ –	– प	– प	रि॒ग	रि॒सा	निसा,	म॒ –	– ध॒	– ध॒	मध॒	मग	रि॒सा,	प –	– सां	– सां	निरि॒ं
निध॒	मप	रि॒ं –	– पं	– पं	रि॒ंगं	रि॒ंसां	निसां,	नि –	– रि॒ं	– रि॒ं	निरि॒ं	निध॒	मप	म॒ –	– ध॒
– ध॒	मध॒	मग	रि॒सा	ये	री	हूँ	तो	–	–	हूँ	तो	–	–	हूँ	

राग श्री

ध्रुपद—सूलताल

गीत

स्थायी—गौरी अरधांग, नाचत संगीत, शंकर त्रिपुर हर ॥

अन्तरा—त्रिशूल डमरू नाद, व्याघ्राम्बर अम्बर,
गज चर्माम्बर परिधानकर ॥

स्थायी

×		•		५		७		०	
नि	–	सां	–रिं॒	नि	ध॒	म॒	प	ध॒	प
गौ	ऽ	री	ऽ •	अ	र	धा	•	•	ग
(रि)म॒	ध॒	म॒	ग	(प)रि॒	–	–	(ग)रि॒	–	सा
ना	•	च	त	सं	ऽ	ऽ	गी	ऽ	त
(रि॒)प	–	प	प	(प)रि॒	रि॒	रि॒	(ग)रि॒	–	सा
शं	ऽ	क	र	त्रि	पु	र	ह	ऽ	र

अन्तरा

म॒	ध॒	नि	सां	रिं॒	रिं॒	सां	नि	सां	सां
त्रि	•	शू	ल	ड	म	रु	ना	•	द

×		०		५		७		०	
नि	—	र्रिं	र्गं	र्रिं	सां	ध़ नि	र्रिं	नि	ध
व्या	•	भ्रा	•	म्ब	र	धं	•	म्ब	र
प	प	प	प	म़	प	ध़	नि	ध़	प̄
ग	ग	च	र	मा	•	•	•	म्ब	र
प	प	ध म़	ध़	म़	ग	प रि	रि	सा	सा
प	रि	धा	•	•	•	•	न	क	र

राग श्री

ध्रुवपद—चौताल

गीत

स्थायी—प्रथम नाद सुर साधे,
आराधे सोई गुनियन में गावे ॥

अन्तरा—सप्त सुर, तीन ग्राम, एकीस मूर्च्छना,
तिन के ब्योरे सब कछु पावे ॥

संचारी—आरोही अवरोही उलट पुलट के होत
द्रुत मध्य विलम्बित आवे ॥

आभोग—"तानसेन" के प्रभु प्रसाद दीजे।
तातें गायन विद्या कंठ करावे ॥

स्थायी

×		०		२		०		३		४	
(ग) रि	(ग) रि	सा	प	-म्	ध्	(नि) ध्	मग	(प) रि	(ग) रि	(ग) रि	सा
प्र	थ	म	ना	ऽ॰	द	सु	र॰	॰	सा	॰	धे
सा	(नि) रि	-	(ग) रि	(ग) रि	सा	रि	प	म्	ध्	म्	ग
आ	॰	ऽ	रा	॰	धे	सो	॰	ई	॰	गु	नि
नि	रि	नि	ध्	म्	ग	रि	ध्	(ग) म्	ग	(ग) रि	सा
य	न	में	॰	॰	॰	गा	॰	॰	॰	वे	॰

अन्तरा

×		०		५		०		९		११	
प	म्	ध्	नि	सां	सां	(गं) रिं	(गं) रिं	स	नि	स	सां
स	•	स	सु	•	र	ती	•	न	मा	•	म
नि	सां	रिं	(गं) रिं	(गं) रिं	सां	नि	रिं	नि	ध्	म्	ग
ए	•	•	की	•	स	मू	•	र्च्छे	ना	•	•
रि	ध्	म्	ग	(प) रि	—	सा	—	रि	प	म्	ध्
नि	न	के	•	ज्यो	ऽ	रे	ऽ	त	ब	फ	छु
नि	रिं	नि	ध्	म्	ग	रि	ध्	म्	ग	(प) रि	सा
पा	•	•	•	•	•	वे	•	•	•	•	•

संचारी

सा - नि	रि	—	(ग) रि	(ग) रि	(सा) रि	प — म्	ध्	—	(नि) ध्	(नि) ध्	प
आ ऽ•	•	ऽ	रो	•	ही	अ ऽ •	ब	ऽ	रो	•	ही
प	म्	ध्	(नि) ध्	(नि) ध्	प	नि	सां	रिं	(गं) रिं	(गं) रिं	सां
उ	ल	ट	पु	ल	ट	के	•	•	हो	•	त
नि	सां	रिं	नि	सां	रिं	(नि) रिं	नि	ध्	प - म्	ध्	प
दृ	त	•	म	•	ध्य	नि	ल	•	निऽ•	•	स
रि	रिं	नि	ध्	म्	ग	रि	ध्	(ग) म्	ग	(प) रि	सा
आ	•	•	•	•	•	वे	•	•	•	•	•

आभोग

×		०		५		०		९		११	
सा - नि	रि॒	रि॒	प - म॒	ध॒	ध॒	सां - नि	रिं॒	—	गं	रिं॒ गं रिं॒ —	सां
वा ऽ ०	०	न	से ऽ ०	०	न	के ऽ ०	०	छ	म	मु ० ० ऽ	०
नि	नि	रिं॒	रिं॒	गं रिं॒	गं रिं॒	सां	—	नि	रि	नि	ध॒
प्र	सा	०	द	ही	०	जे	ऽ	ता	०	ते	०
म॒	ध॒	म॒	ग	ग रि॒	—	सा	—	रि॒	प	म॒	ध॒
गा	०	य	न	वि	ऽ	द्या	ऽ	कं	०	ठ	क
नि	रिं॒	नि	ध॒	म॒	ग	रि॒	ध॒	ग म॒	ग	प रि॒	सा
रा	०	०	०	०	०	वे	०	०	०	०	०

———

पूर्व कल्याण

आरोह-अवरोह—निरिगम् धनिसां, सांनिधपम्गरिसा ।

जाति—षाडव-संपूर्ण ।

ग्रह—निषाद ।

अंश—पञ्चम । ऋषभ, धैवत अनुगामी ।

न्यास—पञ्चम । धैवत के उच्चार के बाद ही पञ्चम पर न्यास ।

अपन्यास—गान्धार । धैवत का दीर्घोच्चार ।

विन्यास—मध्य षड्ज ।

मुख्य-अंग—निरिगम्धऽप ।

समय—सूर्यास्त के बाद रात्रि के पूर्व । मारवा के बाद और कल्याण के पूर्व ।

रस, भाव—अनिश्चित । द्रष्टव्य विशेष विवरण ।

विशेष विवरण

पूर्वकल्याण सायंतन का राग है । सूर्यास्त के बाद रात्रि के पूर्व यह राग बरता जाता है । इसका नाम स्वयं ही यह सूचित करता है कि कल्याण के पूर्व यह व्यवहृत होता है । कुछ लोग इसे पूर्वी या पूर्वाकल्याण भी कहते हैं । कुछ अन्य लोग इसे पूरियाकल्याण कहते हैं । किन्तु एक परम्परा ऐसी भी है जिस में यह माना जाता है कि जिस प्रकार 'पूर्वकल्याण' में पंचम से कल्याण-अंग प्रकट किया जाता है, उसी प्रकार पूरियाकल्याण में शुद्ध ऋषभ से कल्याण-अंग दिखाया जाता है । यथा—निरेगग ऽ म्गऽ गमरेगम्ऽग, म्धनि ऽऽ धमम् ऽ ऽ ग, म्गरि ऽ सा । इसलिए इस राग को पूरिया-कल्याण न कह कर पूर्व-कल्याण कहना चाहिए । इन दोनों रागों की भिन्नता स्पष्ट है, क्योंकि पूर्वकल्याण में पञ्चम द्वारा तथा पूरिया-कल्याण में शुद्ध ऋषभ द्वारा कल्याण अंग की अभिव्यक्ति होती है । कर्णाटक संगीत में पूर्वकल्याण को ही 'गमनाश्रम' कहते हैं ।

इसमें ऋषभ कोमल और मध्यम तीव्रतर लगते हैं। अन्य सब स्वर शुद्ध हैं। इसके आरोह में पञ्चम का त्याग है।

इस राग में 'रि - म', 'ग - ध' और 'म - नि' ये संवादी स्वर-जोड़ियाँ हैं। आरंभ में 'सा' कहने के बाद 'सा ऽ नि ध नि रि नि ध ऽ प' ये स्वर समूह लेते ही पूर्वकल्याण का रूप आविर्भूत हो जायगा।

'निरिग' लेने के बाद यदि 'रिगरिसा' लिया जायगा तो पूरिया या पूरिया-धनाश्री से बचा सकेंगे। ऋषभ लेते ही शीघ्र ही षड्ज पर आ जाएँ। अधिक मात्रा में ऋषभ लेने से भी राग के रागत्व को हानि पहुँचेगी, क्योंकि 'मारवा' अपना सिर ऊँचा करेगा। इस प्रकार पूरिया, मारवा तथा पूरिया-धनाश्री से बचने के लिए प्रायः निरिग ऽऽनिरिसा (पूरिया), निरिऽऽ गमगरिऽऽ (मारवा) एवं निरिग ऽ मरि गऽ मगमरि गऽऽ (पूरिया धनाश्री) इन स्वर संयोगों से सदैव सावधान रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त यथाशीघ्र पूर्वांग को छोड़ कर उत्तरांग के शुद्ध धैवत को दिखा कर पञ्चम पर न्यास करना चाहिए। उसीसे कल्याण अंग प्रस्फुटित होगा और पूर्वकल्याण का रूप कर्णगोचर होगा।

निरिगमधऽप, मगमधऽप, मगरि गमधऽप, निरि रिग गम मधऽप, मधमप ऽ म ग रि ग मधऽप, मगऽऽरिगऽरिऽसा । इन स्वरावलियों से यह राग स्पष्टतया परिस्फुट होगा। मारवा के सदृश यह भी उत्तरांग की ओर ही अधिक झुकता रहेगा और उसे उत्तरांग की ओर झुकता रखने से ही अन्य समप्रकृतिक रागों से उसे दूर रखने में अधिक सरलता होगी।

कुछ गुणी लोग स्थूल-भाव से यह कहते हैं कि मारवा में पंचम लगाने से और ऋषभ कम बरतने से पूर्वकल्याण होता है।

इसमें पञ्चम 'कल्याण' की अभिव्यक्ति करता है तो 'रि' 'कल्याण' अंग को तिरोहित करता है। शुद्ध 'ध' 'पूरिया धनाश्री' से भिन्नत्व प्रदान करता है तो पञ्चम इसे 'मारवा' अंग से बचाता रहेगा।

यह द्विधा प्रकृति का राग प्रतीत होता है। पूर्वांग में ऋषभ कोमल तथा तीव्रतर मध्यम के प्रयोग से कुछ ध्यान का अनुभव होता है और उत्तरांग में शुद्ध धैवत के साथ पञ्चम पर ठहराव होने से कुछ जागृति का भाव खड़ा होता है। इसलिए इसके रस का निर्णय नहीं हो पाया है।

घ नि रि ग म् ध
(७) निरि म्मग रि गम्धऽप, धनिरि रि नि धनिरि गम्धऽप, म् धनिनिध म् ध नि रि ग म् धऽप,

ग म् प रि ग म् ध ध
ग नि धसा निरि, निग रि म् गप म्धऽप, धपम् म् ऽ ग म् धऽप, पम्ग गऽ रि ग म् धऽप, गरि निनि ऽ

रि ग म् ध
नि रि ग म् धऽप, धपम्ग ऽ पम्गरि ऽ म्गरिसा ऽ निरिगम्धऽप, धम्प ऽ म्ग ऽ रिगम्गरिऽसा।

म् म्
(८) निरिनिरि रिगरिग गम्गम् म्पम्प म्धपध प, निरिनिरि ऽ रिगरिग ऽ गम्गम् ऽ म्पम्प ऽ म्धपध ऽ प,

धपम्धऽऽप, धपम्ग ऽ पम्धऽप, धपम्ग ऽ गरि म्ग पम् धऽप, धपम्ग ऽ रिनि गरि म्ग पम् धऽप, म्पधपम्ग ऽ,

गम्पम् ऽ म्पधपम्ग ऽ, रिगम्ग ऽ गम्पम् ऽ म्गधपम्ग ऽ, निरिगरि ऽ रिगम्ग ऽ गम्पम् ऽ म्पधपम्ग ऽ, धपधम् ऽ

नि रि ग
पम्पग ऽ म्गगरि ऽ म्ग पम् धऽऽप, निगरि रिम्ग गपम् म्धप, निरि रिग गम् म्ध ऽ म्धम्प ऽ धपम्ग ऽ रिगम्ग ऽ

रिग ऽ रिऽसा।

रि ग म् ध नि म् ग ※ म् ※
(९) नि रि ग म् ध नि ऽ निध ऽ प, निनिध ध ऽ नि ऽ निध ऽ प, पपम् म् ऽ ध निनिध ध ऽ नि नि ऽ

रि ※ ग ※ म् ※ ध रि ग
निध ऽ प, म्म्ग ग ऽ म पपम् म् ऽ ध निनिध ध ऽ नि नि ऽ निध ऽ प, सासानि नि ऽ म्म्ग ग ऽ पपम् म्

म् प
ऽ धधप प ऽ निनिध ध ऽ नि ऽ निध ऽ प, निधपम्गरि गम्धनि ऽ निध ऽ प, निध धप पम् म्ग गरि म्ग पम् धप

नि ऽ निध ऽ प, धधपम्प ऽ म्ग ऽ रिगम्ग ऽ रिग ऽ रिऽसा।

म् म् ग
(१०) रिनि गरि म्ग पम् धप निध नि, निध निम् निध नि, पम् धप निध नि, निध धप पम् म्ग ऽ

गरि म्ग पम् धप निध नि, धनिनि ऽ म्धध ऽ म्पप ऽ गम्म् ऽ रिगग ऽ रिगम्धनि, निरिगम्धनि रि निधऽप, म्धऽप,

धपम्ग ऽ रिग ऽ रिऽसा।

रि̣ म̣ नि

(११) नि̣रि̣गम̣धनि ऽ नि̣, गरि̣ गम̣ धनि ऽ नि̣, निधपम̣गरि̣नि̣ध̣ नि̣रि̣गम̣धनि ऽ नि̣, निधऽपऽ धप ऽ धम̣ ऽ पग ऽ रि̣गम̣ग ऽ रि̣गऽरि̣ऽसा ।

ग म̣ म̣

(१२) ध̣नि̣रि̣ग ऽ गरि̣नि̣ध̣ ऽ रि̣ गम̣ध ऽ धपम̣ग ऽ गम̣धनि ऽ निधमग ऽ म̣गरि̣नि̣ ऽ रि̣नि̣ध̣प̣ ऽ प, ध ऽ निध ऽ प, धम̣प ऽ म̣ग ऽ, पऽऽम̣ धम̣ध ऽऽ म̣ग ऽ, म̣ऽऽग पऽऽम̣ धम̣प ऽ म̣ग, गऽऽरि̣ म̣ऽऽग पऽऽम̣ धम̣प ऽ म̣ग, रि̣ऽऽनि̣ गऽऽरि̣ म̣ऽऽग पऽऽम̣ धम̣ध ऽऽ म̣ग, रि̣गम̣ध ऽ धप ऽ म̣ग ऽ गरि̣ ऽ रि̣सा ।

ध नि ध नि

(१३) नि̣रि̣गम̣धनि ऽ धम̣प ऽ म̣ग म̣ ध सां ऽऽ निसां, म̣म̣गरि̣गम̣धनि ऽ धम̣प ऽ म̣ग ऽ म̣ ध सां ऽऽ निसां, सांनिधपम̣गरि̣गम̣धनि ऽ धम̣प ऽ म̣ग म̣ ध सां ऽऽ निसां, रि̣ंनिधऽ म̣गरि̣सा ऽ रि̣नि̣ध̣प̣ ऽऽ प सां ऽऽ निसां, रिंऽऽनि धपम̣ग ऽ पऽऽम̣ म̣गरि̣सा ऽ साऽऽनि̣ धपम̣ ग̣ ग गं रि̣ंगंरि̣ंऽसां, धनिरि̣ंनिधऽप, म̣धऽप धम̣प ऽ म̣ग ऽ रि̣ग ऽ रि̣ऽसा ।

(१४) नि̣रि̣गम̣धनिरि̣ंगं ऽ गंरि̣ंसांनिधपम̣ग, नि̣रि̣गम̣धनिसां ऽ सांनिधपम̣गरि̣सा, सानि̣ध̣ म̣ ध̣नि̣रि̣ग ऽ गम̣धनि ऽऽ धनिरि̣ंगं ऽ गंरि̣ं ऽ रि̣ंनि ऽ निध ऽ धप ऽ पम̣ ऽ म̣ग ऽ गं ऽ गरि̣ रि̣ंनि निध धप पम̣ म̣ग ऽ गं ऽऽ रि̣ंगंरि̣ंऽ सां, धनिधऽप, रि̣ गरि̣ ऽसा ।

राग पूर्वकल्याण

मुक्त तानें

निरिगगरिसानिसा, निरिनिसा सानिधप म घनिसा धनिधसा निरिनिसा गगरिगरिसानिसा, निनिधनि धपम प पम म धपप निध सानि रिसा गगरिसा। म पधप म धनिध धनिसानि निसारिसा निरिगगरिसानिसा। धनिसारि गगरिग रिगमग मगरिसा। निरिगम धधमग धगमग मगरिसा। गरिगम गमगम पधपध पधमग मगरिसा, गरिमग पमधप धपमग मगरिसा। मगरिग ममगम पगमग धधधध पधमग पमगम मगरिसा। निरिगम निनिधप पधमग मगरिसा। गरिऽग मगरेसा, निमऽध निनिधप पधमग मगरिसा। निरिगम धनिमध मनिधप मगरिसा। गगरिगरिसा पगमपमग धधपधपम निनिधनिधप मगरिसा। निरिगमगरि रिगमगमग गमपधपम मपधनिधप मधनिनिधपमग धपमग मगरिसा। गगरिसा ममगरि पपमग धधपम निनिधप पधपम पपमग मगरिसा। निरिगम निनिधप पधपम मगरिसा, गरिरि मगग पमम धप निसांनि धपमग मगरिसा, गरिमग मगरिसा, मगपम धपमग, धमनिध सांनिधप, धपमग मगरिसा। मगमग मगरिसा, पमपमधपमग, सांनिसांनिरिंसांनिध, सांनिधप निधपम धपमग मगरिसा। निरिगग रिगग रिगगरिसा, गमधप मपप मपपमग, मपधध पधध धधधपम मधनिनि धनिनि धनिनिधप, धनिसांसां निसांसां निसांसांनिध, निसांरिंरिं सांरिंरिं सांरिंरिंसांनि, निसांसां निसांसांनिध, धनिनि धनिनिधप, पधध पधधपम, मपप मपपमग, गमम गममगरि रिगग रिगगरिसा, निरिगमधनि सांरिंसांनिधप मगरिसा। सांसांऽरिं सांनिधप मगरिसा, निगऽग धनिऽनि निगंऽगं रिंसांनिसां सांनिधप पधमग मगरिसा। मगरिसा सांनिधप मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। मगऽग मगरिसा, सांनिऽनि सांनिधप, मंगंऽगं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। मगग मगग मग मग मग मगरिसा, सांनिनि सांनिनि सांनि सांनि सांनि सांनिधप, मंगंगं मंगंगं मगं मगं मगं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। सामऽम मगरिसा, मनिऽनि निधपम, सांमंऽमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। निमऽम मनिऽनि निमंऽमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा, रिसानिसा पमगम धपमग सांनिधनि रिंसांनिसां पंमंगंमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। निसांरिंसां, धनिसांनि निसांरिंसां, मधनिध धनिसांनि निसांरिंसां, गमपम मपधप मधनिध धनिसांनि निसांरिंसां, रिगमग गमपम मपधप मधनिध धनिसांनि निसांरिंसां, निरिगरि रिगमग गमपम मपधप मधनिध धनिसांनि निसांरिंसां, सांनिधप मगरिसा। रिग रिगमगरिसा, धनि धनिसांनिधप, रिंगं रिंगंमंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। रिऽऽग मगरिसा, धऽऽनि सांनिधप, रिंऽऽगं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा। रिगरिग गमगम मपमप पधपध मपमप गमगम रिगरिग मगरिसा, निरिनिरि रिगरिग गमगम मपमप पधपध धनिधनि पधपध मपमप गमगम रिगरिग मगरिसा। रिगरिग गमगम मपमप

पधपध धनिधनि निसांनिसां धनिधनि पधपध मृगमृग गमृगमृ रिगरिग मृगरिसा, रिगरिग गमृगमृ मृपमृप पधपध धनिधनि निसांनिसां सांरिं सांरिं निसांनिसां धनिधनि पधपध मृगमृग गमृगमृ रिगरिग मृगरिसा, रिगरिग गमृगमृ रिगरिग मृगरिसा, रिगरिग गमृगमृ मृगमृप पधपध धनिधनि निसांनिसां सांरिं सांरिं रिंगरिंगं सांरिं सांरिं निसांनिसां धनिधनि पधपध मृपमृग गमृगमृ रिगरिग मृगरिसा। रिगगग मृगरिसा, धनिनिनि सांनिगग, रिंगंगंगं मृंगरिंसा सांनिधप मृगरिसा। गरिऽग मृगरिसा, निधऽनि सांनिधप, गंरिंऽगं मृंगरिंसा सांनिधप मृगरिसा। रिगऽग मृग मृगरिसा, धनिऽनि धनिसांनिधप, रिंगंऽगं मृंगं मृंगंरिंसां सांनिधप मृगरिसानिसा। निनिनि गगग, रिरिरि मृमृमृ, गगग पपप, मृमृमृ धधध, मृमृमृ निनिनि, धधध सांसांसां, निनिनि रिंरिंरिं, गंगंरिंसां सांनिधप मृगरिसानिसा। निरिगमृगरि रिगमृगरिसा, गमृपधपमृ मृपधपमृग मृधनिसांनिध धनिसांनिधप, धनिसांरिं सांनि निसांरिं सांनिध, धनिसांनिधप मृधनिधपमृ मपधपमृग रिगमृगरिसा। रिंगंरिं रिंगंरिं, सांरिंसां सांरिंसां, निसांनि निसांनि, धनिध धनिध, पधप पधप मृपमृ मृपमृ गमृग गमृग, रिगमृगरिसा। निरिगमृग रिगरि सारिसा, रिगमृपमृ गमृग रिगरि, गमृपधप मृपमृ गमृग, मृधनिसांनि धनिध पधप, धनिसांरिंसां निसांनि धनिध, सांरिंसां निसांनि धनिध पधप मृपमृ गमृग मृगरिसानिसाऽ।

राग पूर्वकल्याण

ख्याल—विलम्बित आड़ा चौताल

गीत

स्थायी—बुला ला आली, श्यामसुन्दर वनमाली ।

अन्तरा—देखहुँ नैन भरी, रसिया की सोहनी सूरत
निराली मतवाली ॥

स्थाई

		११	
		— — — निसा	म्‌-म्‌गरि ग - - ध धम्‌गम्‌ - -
		ऽ ऽ ऽ बु •	लाऽ•• • • ऽ ऽ • ऽ •• •• ऽऽ

नि निधम्‌ध - स-र्सानिधनि - -	- - - ध निरि निध		
• ऽ •• •• ऽऽ • ऽ •• •• ऽऽ	ऽऽऽ • • • ला •		

×		३	
नि — निध —	प — म्‌प —	म्‌—म्‌गरि गम्‌प —	पधम्‌ — — म्‌धग— ऽ
आ ऽ • • ऽ	ली ऽ • • ऽ	श्या ऽ•• •• •• ऽ	म ••ऽ ऽ •• • ऽ ऽ

०		७	
रि गम्‌ग गरि म्‌ध ग	रि — — —	सा — — —	रि सानिधनिसाम्‌ —
सु • • • • • • • •	द ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	र • • • • • • ऽ

राग पूर्वकल्याण

त्रिताल

गीत

स्थायी—दुह दे रे, लाल मोरी गैया ।

अन्तरा—कारी कामर, चौरी घूमर, एहो 'प्रणव' गोपाल,
नन्द दुलाल, कुँवर कन्हैया ॥

स्थायी

×				५				०				११				
															ग	रि
															[illegible]	ह
ग	म्	[illegible]	म्	म्	ग	रि	सा	प	म्	ध	प	म्	ग	ग	रि
दे	०	०	०	रे	०	०	०	०	०	०	०	०	०	दु	ह
ग	म्	प	म्	म्	ग	रि	सा	नि	रि	ग_	रि	ग	म्	प	म
दे	०	०	०	रे	०	०	०	ला	०	०	ल	मो	०	री	०
ग	म्	ध	प	नि	ध	नि	रिं	सां	नि	ध	प	म्	ग	ग	रि
गै	०	०	०	या	०	०	०	०	०	०	०	०	०	दु	ह

अन्तरा

×				५				०				३			
मृ ग	—	मृ	ध	सां	—	सां	सां	नि	प	नि	रिं	नि	ध	प	प
गा	ऽ	री	•	पा	ऽ	ब	र	चौ	•	री	•	घू	•	म	र
मृ	ग	रि	ग	ध	मृ	ग	म	नि	ध	मृ	ध	सां	नि	ध	नि
दे	•	हो	•	प्र	ण	ब	गो	पा	•	•	ल	न	•	द	दु
रिं	सां	नि	सां	ध	नि	ध	रिं	सां	नि	ध	प	मृ	ग	ग	रि
ए	•	•	ल	कुँ	व	र	क	न्है	•	या	•	•	•	दु	द

———

मुखड़े के प्रकार

	×				५				०				१३			
१)									प	म्	ध	प	म्	ग	ग	रि
									ए	•	•	•	•	•	दु	ई
२)							म्	ग	प	म्	ध	प	म्	ग	,,	,,
							ए	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
३)							ग	म्	प	ध	ग	ध	प	म्	,,	,,
							ए	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
४)							नि	रि	ग	म्	ध	प	म्	ग	,,	,,
							ए	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
५)							म्	ग	–	म्	ध	प	म	ग	,,	,,
							ए	•	ऽ	•	•	•	•	•	,,	,,
६)					नि	रि	ग	म्	ध	नि	ध	प	म्	ग	,,	,,
					ए	•	•	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
७)	ध	नि	ध	ध	नि	ध	म्	ध	म्	नि	ध	प	म्	ग	,,	,,
	दे	•	•	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
८)									धप	प	–	म्	म्	ग	रि	,,
									ए•	•	ऽ	•	•	•	दु	ई
९)	प	–	–	म	म्	ग	प	म	धम	प	–	म्	म्	ग	रि	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	ए	•	••	•	ऽ	•	•	•	दु	ई

×				५				०				११			
१०) प	–	–	म्	म्	ग	म्	प	म्	ध	प	म्	म्	ग	रि	ग
दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	ए	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह
११) प	–	–	म्	म्	ग	ग	म्	ग	ध	प	म्	म	ग	रि	ग
दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	मो	री	गै	•	•	•	यां	•	दु	ह
१२) प	–	–	म्	म्	ग	नि	ध	सां	नि	ध	प	म्	ग	रि	ग
दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	मो	री	गै	•	यां	•	•	•	दु	ह
१३) प	–	–	म्	म्	ग	नि	रिं	सां	नि	ध	प	म्	ग	रि	ग
दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	मो	री	गै	•	या	•	•	•	दु	ह
१४) प	–	–	म्	म्	–	नि	–	सां	नि	ध	प	म्	ग	रि	
दे	ऽ	ऽ	•	मो	ऽ	री	ऽ	गै	•	यां	•	•	•	दु	ह
१५) प	–	–	म्	म्	–	नि	–	रिं	नि	ध	प	म्	–	रि	ग
दे	ऽ	ऽ	•	मो	ऽ	री	ऽ	गै	•	यां	•	•	•	दु	ह
१६) प	ध	प	प	ध	प	म्	प	म्	म्	प	म्	म्	ग	रि	ग
दे	•	•	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह
प	–	–	म	म्	ग	रि	ग	प	–	–	म्	म्	ग	रि	ग
दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	दु	ह	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	ः	ह
१७) नि	रि	ग	म्	ध	नि	म्		म्	नि	ध	प	म्	ग	रि	ग
दे	•	•	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह

तानें

	×				५				०				१३			
१)					निरि	गम्	निम्	मग	रिसा,	निरि	गम्	पगा	पम्	मग	रिसा	निरि
	गम्	धग	निनि	धप	मग	रिसा	निरि	गम्	धनि	सांसां	–सां	सांनि	धप	मग	रिसा	निरि
	गम्	धनि	सांरिं	सांनि	धप	मग	रि	ग	प	– म्	रि	ग	प	– म्	रि	ग
							दु	द	दे	ऽ •	दु	द	दे	ऽ •	दु	द
२)									निरि	गरि	रिग	मग	गम्	ऽम्	मध	निध
	धनि	सांनि	धनि	सांरिं	सांनि	धप	मग	रिसा	धनि	सांरिं	सांनि	धप	मग	रिसा	धनि	सांरिं
	सांनि	धप	मग	रिसा	निध	मध	पम्	मप	रिसा	निध	मध	पम्	मग	रिसा	रि	– ग
					दु द	दे •	• •	• •	• •	दु द	दे •	• •	• •	• •	ऽ दु	ऽ द
३)					गग	रिग	रिसा	मम्	गम्	गरि	धध	पप	पम्	निनि	धनि	धप
	सांसां	निसां	निध	रिंरिं	सांरिं	सांनि	सांसां	निसां	निध	निनि	धनि	धप	धध	पध	पम्	पप
	मप	गग	मम्	गम्	गरि	गग	रिग	रिसा	धप	धप	पम्	गरि	धप	मप	पम्	गरि
									दे •	• •	रे •	दु द	दे •	• •	रे •	दु द

×				५				०				१३			
४)										निृरि	गग	रिग	मम्	गम्	धध
मध	निनि	धनि	सांसां	निसां	रिं'रिं'	सांनि	सांसां	निध	निनि	ध	धध	पम्	पप	मग	मम
गरि	गग	रिसा	रिरि	सानि	सासा	–	निरिं'	निध	निध	प	पध	पम्	पम	मग	गरि
							दुइ	दे•	••	रे•	दुइ	दे•	••	रे•	दुइ
गम्	प	–	म	म	ग	रि	सा								
दे•	•	ऽ	•	रे	•	•	•								
५)		निृरि	गग	रिग	रिसा	रिग	मम्	गम्	गरि	गम	पप	मप	मग	मप	धध
पध	पम	मध	निनि	धनि	धप	धनि	सांसां	निसां	निध	निसां	रिं'रिं'	रिंरिं'	सांनि	धनि	सांसां
निसां	निध	मध	निनि	धनि	धप	मप	धध	धध	पम्	म	पप	मप	मग	रिग	मम्
गम्	गरि	निृरि	गग	रिग	रिसा	गरि	मग	धम	निध	सांनि	रिं'सां	निध	पम्	गरि	मग
						दुइ	दे•	••	••	रे•	••	••	••	दुइ	दे•
धम्	निध	सांनि	रिं'सां	निध	पम	गरि	मग	पम्	निध	सांनि	रिं'सां	निध	पम्	–ग	–रि
••	••	रे•	••	••	••	दुइ	दे•	••	••	रे•	••	••	••	ऽदु	ऽइ
६)										निरि	रिसा	रिग	गरि	गम्	मग

×				५				०				११			
मध	धम्	धनि	निध	निसां	सांनि	सांरिं'	रिं'सां	रिं'गं	गंरिं'	सांरि'	रि'सां	निसां	सांनि	धनि	निध
पध	धप	मप	पम्	गम्	मग	रिग	गरि	सारि	रिसा	गम्	धनि	सांरि	सांनि	धप	मग
रिसा	गम्	धनि	सांरि'	सांनि	धप	मग	रिसा	गम्	धनि	सांरि'	सांनि	धप	मग	रिसा	गरि दुह
७)						मग	— म्	मग	रिसा	निसा	सांनि	— रि'	सांनि	धप	मग
म्'गं	— म्'	म्'गं	रिं'सां	निसां	सांनि	ध	मग	रिसा	निरि	गम	धनि	सां	सा	सां	गरि दुह
८) ध										निरिग	मगरि	रिगम	धमग	गमध	निधम
मधनि	सां नध	धनिसां	रिं'सांनि	धनिरि'	गंरिं'सां	सांरिं'सां	निसांनि	धनिध	पधप	मपम	गमग	सा	मध दुह	प दे	—म ऽ•
मग रे•	रिसा ••	निसा ••	मध दुह	प दे	— म् ऽ•	मग रे•	रिसा ••	निसा ••	मध दुह	प दे	— म् ऽ•	मग रे•	रिसा ••	निसा ••	मध दुह
९)				निरिग	निगरि	रिगम	रिमग	गमप	गपम्	मपध	मधप	मधनि	मनिध	धनिसां	धसांनि
निसांरिं'	निरिं'सां	निसांरिं'	सांनिध	धनिसां	निधप	मधनि	धगम	मपध	पमग	गमप	मधरि	रिगम्	गरिसा	— ग ह	— रि ऽह

राग पूर्वकल्याण

तराना—त्रिताल

गीत

स्थायी—ना दिर दिर दानि तदानि ता देरे ना,
ना दिर दिर दानि, तु दिर दिर दानि, दिर दिर दानि,
तननन देरे ना, तारे तारे दानि, धा किट तक धुम किट तक गदि गन,
धागे धिगन धा, धागे धिगन धा, धागे धिगन धा।

अन्तरा—ना दिर दिर दिर तु दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर,
यलालि यालि यलालि यालि यलाया,
नग धेत् धिरकिट तक् धा, धीना दिर किट नग धिर किट तक्,
धान धान धा, धान धान धा, धान धान धा॥

स्थायी

×				२				०				३			
–								सा	निनि	धध	नि	ध	प	म्	गम्
								ना	दिर	दिर	दा	नी	त	दा	नि०
प	–	म्ग	म्	ग	रि	सा	–	सा	निनि	रिरि	ग	–	ग	ग	रिरि
सा	ऽ	००	दे	०	रे	ना	ऽ	ना	दिर	दिर	दा	ऽ	नि	तु	दिर
गग	म्	–	म्	गग	म्म्	ध	ध	म्	नि	ध	नि	ध	प ध	म् प	म्
दिर	दा	ऽ	नि	दिर	दिर		नि	त	न	न	न	दे	रे	ना	०
म	रि	ग	म्	ग	रि	सा	सा	सा	सासा	सासा	धध	गग	गग	म्म्	म्म्
दा	०	रे	त	दा	रे	दा	नि	धा	किट	तक	धुम	किट	तक	गदि	गन

×				५				०				११			
ग	नि	ध	नि	ध	प	म्	ग	ग	प म्	—	ध	म	ग	रि_	ग
धा	गे	•	धि	ग	न	धा	•	धा	गे	ऽ	धि	ग	न	धा	•
रि	ग	—	म्	ग	रि_	सा	—								
धा	गे	ऽ	धि	ग	न	धा	ऽ								

अन्तरा

×				५				०				११			
ग	गग	गग	गग	म्	मम	धध	धध	सांसां	सांसां	सांसां	सांसां	निनि	रिंरिं	सांसां	सांसां
ना	दिर	दिर	दिर	तु	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
ध	नि	रिं	नि	—	ध	म्	ध	नि	ध	—	प	म्	ध	प	—
य	ल	लि	या	ऽ	लि	य	ल	लि	या	ऽ	लि	य	ल	ला	ऽ
पप	गं	-गं	मंमं	गंगं	रिंरिं	सां	—	नि	रिं	निनि	निनि	धध	निनि	धध	पप
नग	धे	ऽत्	धिर	किट	तक	धा	ऽ	धी	ना	तिर	किट	नग	धिर	किट	तक
म्	—	ध	ध	नि	ध	प	—	प	—	प	प	म्	ध	म	ग
धा	ऽ	न	धा	•	न	धा	ऽ	धा	ऽ	न	धा	•	न	धा	•
ग	रि	ग	म्	ग	रि	सा	—								
धा	•	न	धा	•	न	धा	ऽ								

राग बसन्त

आरोह-अवरोह—सा मऽमं ग, म॒ ध॒ सां ऽ नि ध॒ ऽ ऽ प मंमंप ऽ मंग मं ऽ ऽ ग, मं ग रे॒ ऽ सा ।

जाति—औडव वक्र-संपूर्ण । क्योंकि आरोह में 'रि - प' का प्रयोग नहीं होता और अवरोह वक्र रहता है ।

ग्रह—आलाप में मध्यम, और तान-क्रिया में गान्धार ।

अंश—तार षड्ज । ऋषभ, धैवत उपांश ।

न्यास—पञ्चम ।

अपन्यास—गान्धार ।

विन्यास—षड्ज ।

मुख्य-अंग—मध॒सां ऽ निध॒प, मंमंप ऽ मंग मऽग ।

प्रकृति—गंभीर और तरल मिश्र ।

समय—बसन्त ऋतु में चौबीसों घंटे एवं सामान्य रूप से मध्य रात्रि के पश्चात् ।

विशेष विवरण

बसन्त एक बड़ा प्रसिद्ध राग है । इस राग के गीतों में बसन्त ऋतु का वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलता है । राग रागिनी के वर्गीकरण को स्वीकार करने वाले कई एक ग्रंथों में बसंत को मुख्य पुरुष रागों में गिनाया गया है ।

इस राग में ऋषभ-धैवत कोमल, दो मध्यम (शुद्ध और तीव्रतर) एवं अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं । परज, गौरी, पूर्वी वगैरह रागों में भी सामान्यतः यही स्वर लगते हैं । किन्तु इन सबके चलन में, स्वरों के उच्चार में, स्पर्श में, ठहराव में काफ़ी अन्तर है । इसका आरंभ प्रायः म॒ ध॒ सां ऽ नि ध॒ ऽ प, इस प्रकार मध्यम से होता है, और आरोह करते समय प्रायः निषाद को लांघकर ही तार षड्ज पर पहुंचते हैं, साथ ही तार षड्जसे गंभीर मींड के साथ निषाद-धैवत का प्रयोग करते हुए, पंचम पर कुछ देर ठहरते हैं । तत्पश्चात् 'मंग मं ऽ ग' कहकर गान्धार पर अपन्यास करते हैं और फिर मं ग रे॒ सा कहकर विन्यास यानी पूर्णविराम करते हैं । यथा म॒ ध॒

सां ऽ नि ध ऽ प, धूमप ऽ मृ ग मृ ऽ ग, मृ ग रि ऽ सा । सा मे-मृ ऽ मृ ग, मृ नि धृ ऽ प, प धृ मृ प ऽ मृ ग मृ ऽ ग, मृ धृ रिं नि धृ ऽ प, धृ मृ प ऽ मृ ग मृ ऽ ग, मृ ग रि ऽ सा।

'वसन्त' का निकटवर्ती राग 'परज' है। 'परज' का पूरा विवरण तो, उसी राग के प्रकरण में देख लेना चाहिए। यहाँ वसन्त एवं 'परज', दोनों में भिन्नत्व दिखाने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि परज के पूर्व और उत्तर दोनों अंगों में 'रिं सां रिं निसां ऽ, प प धृ मृ प ऽ ग म ग' यों 'कालिङ्गड़ा' के ढंग से स्वरों के उच्चार किये जाते हैं। इस प्रकार परज के स्वर त्वरित गति से बिना मींड के उच्चारे जायँगे और वसन्त के सभी स्वर विलम्बित गति से मींड सहित उच्चारे जायँगे। इससे दोनों की प्रकृति में भी भेद हो जाता है, और राग के अंग में भी परिवर्तन पाया जाता है। वसन्त गंभीर है, परज चंचल है। वसन्त की दूसरी विशेषता यह है कि—मृ धृ सां ऽ रिं नि धृ ऽ प यों पचंम पर उतरने के बाद, तुरन्त ही धृमृ ऽ मृ ग मृ ऽ ग यों 'मृ ग मृ ऽ ग' का पुनरुच्चार किया जाता है। इसमें एक बार 'मृ ग' कहना पर्याप्त नहीं होता, दो बार 'मृ ग मृ ऽ ग' कहना आवश्यक है। क्योंकि यह भी इस राग की अभिव्यक्ति का एक अंग है। जैसे उपर्युक्त 'मृ धृ सां' वाले स्वर वसन्त को अभिव्यक्त करते हैं, वैसे ही 'मृ ग मृ ऽ ग' यह स्वर-क्रिया भी इसमें रागवाची है। जब मध्य-सप्तक के 'सा' पर पहुंचना होगा, तब 'मृ ग मृ ऽ ग' के पुनरुच्चार के बाद आलाप में 'मृ ग रि ऽ सा' करना होगा। षड्ज के बाद पुनः उत्तरांग की ओर जाते समय साम ऽ मृ ऽ मृग, यों ,बाग सा ललित का आभास देकर मृ नि ध ऽ प, मृ धृ सां, यों पुनः तार षड्ज पर जाना पड़ेगा। वसन्त को छोड़कर ललितांग का यह छोटा-सा टुकड़ा अन्य किसी राग में नहीं लिया जाता है। कुछ गुणीजन इस टुकड़े को लिये बिना भी 'वसन्त' को प्रस्तुत करते हैं। इसलिए प्रचार में यह स्वराग सर्वमान्य होने पर भी, ऐसा नहीं मानना चाहिए कि इस टुकड़े के बिना वसन्त हो ही नहीं सकता। पूर्वी, गौरी या परज में दो मध्यम लगाने के ढंग निराले हैं। तीनों में दो विशेष ढंग से दो मध्यम लगाये जाते हैं, और इन तीनों से वसन्त का शुद्ध मध्यम लगाने का तरीका बिलकुल भिन्न है। इन स्वरों के लगाव को प्रत्यक्ष गुरुमुख से सुन कर अनेकों बार गुरु के सम्मुख ही गा लेना चाहिए। और गले में उनकी विशेषताएँ बिठा लेनी चाहिए। तभी रागों के रूप को आत्मसात् किया जा सकता है।

कुछ लोग 'नि धृ मृ ग' या 'गमृ नि धृ मृ ग' यों पचम को छोड़कर जब ऐसे टुकड़े लगाते हैं, तब शुद्ध धैवत का उपयोग करते देखे गये हैं। संभवतः ऐसे टुकड़ों में शुद्ध धैवत का स्पर्श अनजाने हो जाता है और इसीलिए व्यवहार में यह क्रिया प्रचार-सम्मत मानी गयी है। फिर भी इस प्रयोग से बचने में ही कुशलता है। इस राग का चलन यों होगा।

म धृ सां ऽ नि धृ ऽ प, धृ मृ प ऽ मृग मृ ऽ ग, मृ धृ रिं ऽ नि धृ ऽ प, मृ धृ मृ प ऽ मृग मृ ऽ ग, धमृम् निधधृ सां ऽ नि धृ ऽ प, पधमृप ऽ मृ ग मृ ऽ ग मृ ग रि ऽ सा।

रि॒रि॒सानि॒सा मम् मृग, गम् नि धृ ऽ प, मृ धृ रि॒' नि धृ ऽ प, धमप ऽ मृग मृ ऽ ग, गम्

मृ नि॒
नि धृ मृ ग ऽ मृ ऽ ग रि॒ ऽ सा, म ऽ मृग ऽ मृ धृ सां, मृ धृ रि॒' ऽ नि धृ ऽ प।

सामान्य रूपसे इसकी आलापचारी मृ धृ सां ऽ नि धृ ऽ प, यों मध्यम से ही आरंभ होती है। इसलिए तीव्रतर मध्यम इसका ग्रहस्वर माना जायगा। हाँ, तानक्रिया में गान्धार से उठना सुविधाजनक होता है। इसलिए आलप्ति में मध्यम स्वर ग्रह मानना चाहिए और तानक्रिया में गान्धार। इसका चलन अधिकतर उत्तरांग में ही होता है। इस दृष्टि से तार-षड्ज इसका अंश-स्वर होगा, पंचम न्यास और गान्धार अपन्यास स्वर होगा। धैवत और ऋषभ उपांग स्वर होंगे। मृ धृ सां ऽ नि धृ ऽ प और मृ ग मृ ऽ ग मृ ग रि॒ ऽ सा एवं पूर्वांग में ही आनेवाली कलिंगांग की शुद्ध मध्यम की क्रिया—ये स्वर क्रियाएँ इसमें रागवाची हैं।

इसकी प्रकृति कहीं चंचल, कहीं गंभीर यों मिश्र रहती है। तारगति होने से तरल भाव सूचित होता है और मींड़ प्रयोग का बाहुल्य होने से यह गंभीर-भाव धारण करता है। ऋषभ, धैवत, कोमल, तीव्रतर मध्यम और तारगति इनसे विप्रलम्भ शृंगार, वसन्त में प्रिय का वियोग, और तज्जन्य भावनाओं का दर्शन इस राग में मुख्य रूप से प्रतीत होता है। बहार में वसन्त का जो उल्लास है, वह उल्लास वसन्त में दिखाई नहीं देता, हाँ, केवल शुद्ध मध्यम दिखाते समय, कुछ क्षण के लिए उल्लास का दर्शन हो जाता है, फिर भी पुनः वही कोमल 'रि॒ धृ' और तीव्रतर मध्यम स्वरों से विरहावस्था के भाव कर्ण-गोचर होने लगते हैं। वसन्त ऋतु में यह राग चौबीसों घण्टे गाया जाता है, और सामान्य रूप से इसे मध्य-रात्रि के पश्चात् गाने बजाने का प्रचार है।

राग वसन्त

मुक्त आलाप

(१) म॒ ध॒ सां ऽ ऽ नि ध॒ ऽऽ प, धमप ऽ मग म॒ ऽऽ ग ऽ मगरिसा, रिनिसा म ऽ म॒ मग ऽ ग नि ध॒ ऽऽ प म॒ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, धमप ऽ मग म॒ ऽऽ ग ऽ मगरिसा।

(२) मग धम॒ निध सां, मग ऽधम ऽ निध॒ सां ऽऽ धमप ऽ मग म॒ ऽऽ ग ऽ गमनि ध॒ ऽऽ प, ध॒ धगमर ऽ मग म॒ ऽ ग, मऽऽ ध सां ऽऽ निध॒ ऽऽ प, धम॒ निध॒ सां ऽऽ निध॒ ऽऽ प, ऽमग धम॒ निध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, सानिरिसा मगधम ऽनिध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, धधप म॒ ऽ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, ममग धधम॒ निध सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, रिरिसानिसा मध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, ध॒ ध॒ पमप ऽ मग म ऽऽ ग ऽ मगरिसा।

(३) रिनिसा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ, रिरिसानिसा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ, पधमप ऽऽ मग म॒ ऽऽ ग ऽ, रिनिसा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ मधमप ऽ मग म॒ ऽऽ ग ऽ, सानिरिसा म॒ ऽऽ ग प ऽऽ म॒ धमप ऽ मग मऽऽ ग ऽ, गमनिध॒ मग मगरि ऽ सा।

(४) रिरिसानिसा म ऽऽ म ऽ ग ऽ, गम॒ निध॒ ऽऽ प, धमप ऽ मग म॒ ऽऽ ग ऽ, सा म॒ ऽ ग रि ऽ सा, म॒ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, मग म॒ ऽऽ ग मगरि ऽ सा।

राग वसन्त

मुक्त तानें

सारिनिसा मगमगरिसा, रिरिसारिनिसा मगमगरिसानिसा, मगग म मगमगरिसा । निनिसाम् मगरिसा,
निसामगरिसानिसा, ममग ममग मगमगरिसा, रिरिसारिनिसा मगमगरिसा । रिनिसा मगग धम् धम् मगमगरिसा । मधर्सा-
निधप मगमगरिसा । रिनिसा सां ऽनिधप मगमगरिसानिसा, रिनिसा ममम् निनिधप मगमगरिसा, रिनिसा ममम मम् मग
निनिधप मगमगरिसा । मधर्सांसांऽनिधप मगमग मगरिसा । सासासा पपप मधर्सां,निधप मगमगरिसा, निसागम् धर्सांऽनि
धप मगमगरिसा । धमम् निधध् सांनिरिं सांऽनिधप मगमगरिसा । धमम् धमम् निधसांनि रिं सांऽनिधप मगरिसा ।
सासासा मम ममग मगमगरिसा । धमम् निधध् निधनिध् निधपधमप मगमग मगरिसा । पधमप मगमग मगरिसा, धमप
धमप मगमग मगमगरिसा । निसागमधनिसांरिं सांनिधप मधमगरिसानिसा । धमनिध् सांनिरिं सां सांनिधप मगमग
मगरिसा । सासासा गगग मगमगमग मगरिसा, धपनिध् सांनिरिं सां रिं सांनिध् सांनिधप धपमग मगरिसा । सासासा
ममम् गग निनिधप मगरिसा । सासा ममगग निनिधध् सांसांनिनि रिंरिं सांनिधप मगमग मगरिसा । धनि धसां निरिं-
सांनिधपमग, मधमनि धसांनिरिं सांनि धपमग, गमगध् मनिधसां निरिं सांनि धपमग, साम् गनि धसां निरिं सांनिधपमग,
मगमग मगरिसा । निधध् सांऽरिं सांनिधपमग मगरिसा, धमम् निधध् सांनिरिं सांऽनि धपमग मगरिसा, मगग धमम्
निध् सांनिरिं सांऽऽनि धपमग मगरिसानिसा । रिसासा मगग धमम् निधध् सांनिरिं सांऽनि धपमग मगरिसानिसा । सासासा
गगग मग धम् निध् सांनिरिं सां सांनिधप मगरिसा । मगग मगग मग, निधध् निधध् निध् सांनिरिं सां सांनिधप मगरिसा ।
गगग निनिनि गगं मंगंरिं सां सांनि प मगमग मगरिसा । साममगरिसा, मसांसांनिधप मगरिसा । मगरिसा सांनिधप
मंगंरिं सां सांनिधप मगमग मगरिसा । मगऽग मगरिसा मंगंऽगं मंगंरिं सां सांनिधप मगरिसा । सामऽम् मनिऽनि सांमंऽमं
मंगंरिं सां सांनिधप मगरिसा । सासासा ममम् मममम् मगरिसा, ममम् निनिनि निनिनिनि धपमग, निनिनि मंमंमं
मंगंरिं सां सांनिधप मगरिसानिसा । निसानिम मगरिसा, मधमसां सांनिधप, निसांनिमं मंगंरिं सां सांनिधप मगरिसा । निसासा
निसासा निसा निसानिम् मगरिसा, मधध् मधध् मध् मधमसां सांनिधप, निसांसां निसांसां निसां निसांनिमं मंगंरिं सां
सांनिधप मगरिसा । निसा निसा सामगम् मगरिसा, मधमध् धसांनिसां सांनिधप, निसां निसां सांमंगंमं मंगंरिं सां
सांनिधप मगरिसा ।

राग बसन्त

ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—फूली री मधुव बहारिया,
प्यारे की छबि देखी मन में ।

अन्तरा—बेला, चमेली, गेंदा, गुलाब, जाह, जुही,
और बेलरिया बन में ॥

स्थाई

			११			
				..म॒-ध॒	धसां निसां.	—— निध॒
				ऽऽफू.ऽ	ली...ऽऽ	ऽऽ री ब

×				५			
नि-ध॒.	म॒प.दप	पध॒म॒प ..म॒ग	म॒-ग-	म॒गरिसा	निसा--सा	रि-रिसा निसा--	म--म
स.ऽ.ऽ	..ऽतब	हा... ऽऽरि.	यां ऽ.ऽ	प्या...	..ऽऽरे	कीऽ.. ..ऽऽ	.ऽऽछ

०				१३			
म॒पम॒दम॒ग--	-म॒-ध॒	धसां-निसां-	--निध॒	नि ध-	प-म॒-ध॒	धसां निसां--	--निध॒
वि...... ऽऽ	ऽऽदेऽ.	खी. ऽ..ऽ	ऽऽमन	मेंऽ.ऽ	..फूऽ.	ली. ..ऽऽ	ऽऽ री ब

राग वसन्त

त्रिताल

गीत

स्थायी—फगवा ब्रिज देखन को चलो री,

फगवा में मिलेंगे कुँवर कान्ह जू, बाट चलत बोले फाग ॥

अन्तरा—आई बहार सकल बन फूली,

रसीले लाल को ले अगरा ॥

स्थायी

×				२				०				३			
						म	मध	धसां	निसां	नि	ध	प	मग	म	ग
						फ	ग•	वा•	••	ब्रि	ज	दे	••	ख	न
म	ध	नि	सां	सांरिं	नसां	म	मध	धसां	निसां	नि	ध	प	मग	म	ग
को	•	च	लो	री•	••	फ	ग•	वा•	••	में	मि	लें	••	गे	•
ग	रि	ग	म	ग	रि	सा	—	नि	रि	ग	ग	म	मध	धनि	मध
कुँ	व	र	का	•	न्ह	जू	ऽ	बा	•	ट	च	ल	त•	बो•	••
धसां	निसां	नि	ध	प	—ध										
ले•	•	फ	ग	वा	ऽ•										

तानें

	×				५				०				१३			
१)				निसां	रिं'सां	निसां	फ	ग	वा	ऽ	मि	ज	दे	•	ख	न
२)				मृध्	निसा	रिं'सां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)	मप्	निध्	धनि	स न	निसां	रिं'सां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)	मृ	–	–	–ध्	सांनि	धप	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)	रिं'सां	सां,रिं'	सांसां	्प	प, म्	पप	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)	म्'गं	म्'गं	रिं सां	सांनि	सांनि	धप	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	मग	रिंसा	सांनि	प	म्'गं	रिं'सां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	सासा	सा, म्	मम	निनि	निम्'	म्'म्'	म्'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	सांनि	धप	मग	रिसा
	पनि	धप	मग	रिसा	धनि ए•	सांनि ••	फ	ग	वा	ऽ	मि	ज	दे	ऽ	ख	न

×				२				०				३			
९) सांरिं'	मां,सां	रिं'सां	निसां	नि,नि	स न	धनि	ध,ध	निध	पध	प,प	ध प	म ग	म,म	पम	मम
ग,ग	मग	गम	निनि	धप	मग	रिसा	पग	ऽ बा	ऽ	त्रि	ज	दे	ऽ	ल	न
१०) मग	ग,म	गग	मग	मग	मग	मग	रिसा	सांनि	नि सां	निनि	सांनि	सांनि	सांनि	सांनि	धप
मं'गं	गं,मं'	गंगं	मं'गं	मं'ग	मं'गं	मं'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	मं'ग	रिसां	स नि	धप
मग	रिसा	मं'गं	रिं सां	सांनि	धप	मग	रिसा	फ	ग	बा	नि	ज	दे	ल	न
११) गं	–	–	मं'मं'	मं'गं	रिं सां	सांनि	धप	मग	रिसा	ग		–	मम	मग	रिसा
गं	–	–	मं'मं'	मं'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	पग	ऽ बा	ऽ नि	ज दे	ऽ ल	ऽ न

राग वसन्त

द्रुत एकताल

गीत

स्थायी—ऐण्डी ऐंडी गैण्डी गैण्डी फिरे ब्रजनार गोरी,
गरवा लागो, रंग बरसे रुत बसन्त में आली
जोबन मातो बैस (बयस) थोरी ॥

अन्तरा—सोलह सिंगार करि आभरन, पहर पहर भूलन,
गूँद गूँद गूँद प, अबिर गुलाल लिए भर झोरी ॥

स्थायी

×		०		५		०		९		११	
	सां	नि	ध्	म	प	प	प	म्ग	म्	–	ग
ऐ ०	०	डो	ऐ	०	डी	गैं	०	डी ०	गैं	ऽ	डी
म्	ग		ध्	नि	सां	सांरें	निसां	नि	ध् म्	–	ध्
फि	०	रे	०	ब्र	ज	ना ०	० ०	र	गो	ऽ	री
म्	म्	प	म	सां	स	ध्नि	निरें	नि	ध्	म्	ग
ग	र	वा	ला ०	०	गो	र ०	ग	ब	र	से	०
गम्	नि	ध्	म्	ग	म्	ग	–	–	रे	–	सां
० रु	त ०	ब	सं	०	त	में	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ली
सा	रे	सा	ग	–	ग	म्	–	ध्	ध्नि	म्	म्
जो	० ब	न	मा	ऽ	तो	बै	ऽ	स	थो ०	०	री

अन्तरा

×		०		५		०		९		११	
म्	धू	म्	धू	सां	सां	सां	सां	नि	रिं	सां	गां
सो	ल	ह	सिं	गा	र	क	रि	आ	म	र	न
सां	सां	सां	सां	सां	सां	ध नि	रिं	–	नि	ध	–
प	ह	र	प	ह	र	भू	०	ऽ	ष	न	ऽ
म्	–	ध्	ध् नि	निरिं	नि	ध् नू	म्	ध्	ग म्	–	ग
ग	ऽ	द	गं ०	० ०	द	गं	०	द	गं	ऽ	द
ग	म्	नि	नि	धू	म	ग	म्	गु	रि	सा	सा
प	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
सां	गं	रिं	मं	गं	रिं	सां	सां	नि रिं	नि	म्	ध्
भ	बी	र	गु	ला	ल	लि	प	भ	र	सो	री

राग परज

आरोह-अवरोह :—नि सा ग, ग मे ध नि सां, निरें निसां नि ध प ऽ गमग, म ग रे

जाति :—औडव वक्र सम्पूर्ण ।

मंद्र :—मन्द्र निषाद और मध्य तीव्रतर मध्यम । द्रष्टव्य :—विशेष विवरण ।

अंश :—पूर्वांग में गान्धार और उत्तरांग में निषाद ।

उपांश :—ऋषभ, धैवत ।

न्यास :—गान्धार, पञ्चम ।

अपन्यास :—षड्ज पञ्चम ।

विन्यास :—मध्य पञ्चम ।

मुख्य अंग :—रें सां रें निसां धपधमप ऽ गमग ।

समय :—शेष रात्रि ।

प्रकृति :—चंचल ।

विशेष विवरण

स्थूल दृष्टि से परज की स्वरावलि और बसन्त की स्वरावलि एक-सी दिखाई देती है। दोनों में 'रे ध' कोमल और दो मध्यम लगते हैं। स्वरावलि की समानता होने पर भी दोनों राग अपने चलन से भिन्न हैं। यदि स्थूल मान से बसन्त और परज की भिन्नता दिखानी हो तो यों कह सकते हैं कि बसन्त के स्वर विलम्बित गति, मींड, दीर्घ-उच्चार से प्रयोग में लाये जाते हैं, और परज में मींड रहित स्वरों के द्रुत उच्चार किये जाते हैं।

परज के स्वरोच्चार की एक विशेष खामी यह है कि उसके स्वर [illegible] के सदृश उच्चारे जायँ, यानि प ऽ ग म ग, ध प ध मप ऽ ग म ग, रें सां रें नि सां, नि रें सां रें नि सां ऽ नि ध प, ध प ध मप ऽ ग म ग, म ग रे सा। 'ध प ध म प' में यों तीव्र मध्यम का भी प्रयोग होता है। इस प्रकार की स्वरावलियों के उच्चार से परज का आविर्भाव होगा।

बसन्त में 'म् ध् सां ऽ नि ध् ऽ प इन स्वरावलियों के दीर्घोच्चार से राग का दर्शन होता है। ध्यान रहे कि परज में कभी भी 'म् ध् सां ऽ म् ध् र्रि नि ध् ऽ प', ऐसे दीर्घोच्चार से स्वरों का प्रयोग न किया जाय, अपितु म् ध् नि–सां, नि र्रि सां र्रि नि सां ऽ नि ध् प, ध् प ध् मग ऽगमग, यों द्रुतगति से स्वर लिये जायँ। पूर्वी में 'म् ग म् ऽ ग' यों 'म् ग' की जोड़ी जैसे बसन्त में दुहरायी जाती है वैसी परज में न दुहरायी जाय, और उसके स्थान पर 'प ऽ ऽ ग म ग, ध् प ऽ गमग, ध् प ध् म् प ऽ गमग, यों लिया जाय। इस 'प ऽ ग म ग' या 'ध् प ऽ ग म ग' में अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में छिपा हुआ तीव्रतर 'म्' रहता है। 'नोटेशन' में इसे ठीक से नहीं दिखा सकते। इसलिए प' के सामने लगे हुए अवग्रह के ऊपर तीव्रतर मध्यम दिखा दिया गया है। साथ ही सा म ऽ म् मग, बसन्त में यह जो छायांग का किंचित् आभास दिखाया जाता है, परज में इसका समूचा त्याग होगा। परज में जब भी शुद्ध मध्यम का प्रयोग करना होगा "प ध् म् प ऽ ग म ग" यों ही लिया जायगा। बसन्त के अवरोह में धैवत को दीर्घ करने के कारण निषाद दुर्बल दीखता है, परज में धैवत की अपेक्षा निषाद कुछ दीर्घ रहता है। परज का सामान्य आरोह अवरोह निम्नोक्त है:—

निसाग, म् ध् नि सां, र्रिसां नि ध् प ग म ग, म् ग र्रि सा अथवा म ग र्रि सा।

'प ऽ म् ग म ग' यह टुकड़ा, बिहाग, पूर्वी और परज तीनों में प्रयुक्त होता है, किन्तु तीनों रागों में इसके प्रयोग और उच्चार का ढंग निराला है। यथा—

सा प म प प
प—म् ग म ग — बिहाग

सां र्रि
प—म् ग म ग — पूर्वी

म्
प ऽ गमग — परज

परज के भिन्न भिन्न पदों की रचना, उनका उठाव, और इस राग के स्वरांग-चलन को देखते हुए, मन्द्र-निषाद और तीव्रतर मध्यम दोनों को ग्रह का स्थान देना उचित है।

इस राग का सारा चलन तार मध्य स्थान में और मध्यद्रुतगति में ही होता है। मन्द्र स्थान, विलम्बित-गति, मींड, स्वरान्दोलन आदि सर्वथा त्याज्य है।

म् म् म म् म् रि
धृपधृप् ऽऽ गमग, सागमग् पधृमृप ऽऽ गमग, मृग पमृ धृप नि ऽऽ धृपधृप, निसागमृ नि ऽऽ धृपधृ ऽ मृगमग ऽ

म् म् म
धृपधृप् ऽ मृधृनि ऽऽ धृप, धृप ऽऽ गमग ऽ मृगरिसा ।

म्
(६) रिनिसा ग ऽ मृधृनि ऽ पमृधृप नि, धृपधृमप ऽऽ गमग ऽ नि, धृपधृमृप ऽ मगमसाग ऽ गमनि,

सारिनिसा ऽ पधमृप ऽ धृमृधृप नि, रिरिसानिसा ऽ ममगसाग ऽ धृधृपमृप ऽ नि, धृनि धृनि पधृ पधृ मृप मृप गमग,

म् म्
साग साग गम गम मप मप पधृ पधृ मप मप नि ऽऽ धृपधृप ऽ ऽ गमग, सानिरिसा ऽ पमृधृप ऽ सांनिरिं सां ऽ

म् म् म म् म् म्
धृपधृप ऽऽ गमग, नि ऽ धृपधृप ऽऽ गमग, सांनि ऽऽ धृपधृप ऽ गमग, गमृपसांनि ऽ धृपधृप ऽऽ गमग, निध

रिं म म
सांनि रिंसां नि ऽऽ धृपधृप ऽऽ गमग, सागमग ऽ गमृपमृ ऽ मृपधृप ऽ धृनिसांग ऽ धृपधृप ऽऽ गमग, मग ऽ पमृ ऽ

धृप ऽ सांनि ऽ धपधृमृप ऽऽ गमग ऽऽ मृगरिसा ।

(७) निसाग ऽ मृधृनि ऽ निसांगं ऽ रिंसांरिं निसां, रिनिसा ग ऽ धृमृप नि ऽ रिंनिसां गं ऽ रिंसांरिं निसां,

सानिरिसा ग ऽ पमृधृप नि ऽ सांनिरिं सां गं ऽ रिंसांरिं निसां, रिनिसारिग ऽ रिसारिनिसा, धृमृपधृ नि ऽ धृपधमृप, रिं निसां

म्
रिं गं ऽ रिंसांरिं निसां ऽ धृपधृमृप ऽ पमृप गमग, साग साग गमृगमृ मृपमृप ऽ ऽ गमग ऽऽ मृगरिसा ।

(८) रिरिसानिसाग ऽ धृधृपमृधृनि ऽ रिंरिंसांनिसांगं ऽ गंमं गंमं रिंगं ऽ सांरिंसांरिं निसां ऽ निसांनिसां

धृनि ऽ पधृ पधृ मृप ऽ गमगमरिग, सारिसा गऽमग मृऽपमृ पऽधृप धृऽनिधृ निऽसांनि साऽरिंसां, सांरिंसां सांरिंसां

निसां ऽ पधृप पधृप मृप ऽ गमग गमग साग ऽ, साऽगसा गऽमृग मृऽपमृ पऽधृप धृपधृप ऽऽ गमग ऽ मृगरिसा ।

राग परज

मुक्त तानें

निसागग मधनिसां मधमर गमगग मगरेसा । पधरध् प गमगग मगमगरेसा, निसागग गमरधपधमर गमगग मगरेसा, गमग गमग पधपधमर गमगग मगरेसा । निसागग सागमम् साम् प पधपधमपमपगमगग मगरेसा, मगग मगग पधपधमप गमगग, गम गप मध् पधपधमप गमगग, सागमग गमपम्, पधमप गमगग मगरेसा । निनिनि सासा गग मग मग मगरेसा, मधनिसां धनिसांरें निसांधनि पधमर गमगग मगरेसा । मप पम् धप निध् सांनि रेंसां सांनिधप पधमर गमगग मगरेसा । निसागम धनिसांरें सांनिधप पधमप गमगग मगरेसा, गमग गमग धनिध् धनिध् निसांनि सां निसांनि सांरेंसां सांरेंसां निसांनिसां धनिधनि पधपध् मपमप गमगग मगरेसा । ममग गऽग मगरेसानिसा, ध सांसांनि निऽरेंसांनिधपमग, पधपधमप गमगग मगरेसानिसा । सामग गपम् मधध पनिध् धसांनि निरेंसां सांरें सांरें सांनिधरमप पधमप गमगग मगरेसा । मगरेसानिसा सांनिधपमप गमगग मगरेसानिसा । निसानि निसानि गमग गमग मपम् मपम् पधप पधप मपम् मपम् गमग गमग, निसांनि निसांनि धनिध् धनिध् पधप पधप मपम् मपम् गमग गमग सांरेंसां सांरेंसां निसांनि निसांनि धनिध् धनिध् पधप पधप मपम् मपम् गमग गमग मगरेसानिसा । सांसांऽरें सांनिधप पधमप गमगग, सांनिरेंसां सांनिधप पधमप गमगग गंगंरेंसां सांरेंनिसां धमप गमगग, गंमंगंरें रेंसांनिसां सांरेंसांनिधपमप पधमप गमगग मगरेसा, निसागम् पधनिसां गंमंगंरें सांनिधप धमप गमगग मगरेसा ।

राग परज

त्रिताल

गीत

स्थायी—बंसरी तू कवन गुमान भरी ।

अन्तरा १—सोने की नाहीं, रूपे की नाहीं, नाहीं रतन जरी ॥

अन्तरा २—जात सिफत तोरी सब कोउ जानत, मधुबन की लकरी ॥

अन्तरा ३—का री भयो जो हरिमुख लागी, भागत बिरह भरी ॥

स्थायी

×				२				०				३			
			म	–	ध	नि	धनि	सं'	नि	ध	प	धमप•	म	प	ध
			ब	ऽ	स	री	तू•	क	व	न	गु	मा••ऽ	•	न	म
प	–	–	म	–	ध	नि	धनि	सं'	नि	ध	प	धमप	– म	ग	म
री	ऽ	ऽ	बं	ऽ	स	री	तू•	क	व	न	गु	मा••ऽ	ऽ•	न	म
ग	–	–	म	–	ध	नि	धनि	–							
री	ऽ	ऽ	ब	ऽ	स	री	तू•	ऽ							

अन्तरा

×				५				०				१२			
								–	ध़	म़	ध़	नि	–	सां	–
								ऽ	सो	ने	की	ना	ऽ	री	ऽ
–	रें'	सां	रें'	नि	–	सां	–	–	मध़	–नि	सां	–	निध़	–प	धम़
ऽ	रू	पे	की	ना	ऽ	री	ऽ	ऽ	ना०	ऽहीं	०	ऽ	रत	ऽन	०ब
(	–	–	म़	–	ध़	नि	धनि								)
री	ऽ		ब	ऽ	स	रो	तू०								

अन्य अन्तरे भी इसी प्रकार रहेंगे ।

राग परज

त्रिताल

गीत

स्थायी—मैं क्यों गई जमुना पानी री, देखत ही मन मोह लियो,
मैं तो साँवल हाथ बिकानी री।

अन्तरा—मेरे मन बसी साँवरी सूरत, लोग कहें बौरानी री सखी,
प्रगट भई बलिहारी श्याम सों, लागी प्रीत न छानी री॥

स्थायी

×				२				०				३			
						म्	ध्	सांनि	रिं'सां	–नि	ध्	–	मृध्	–म्	ध्
						मैं	•	क्यों•	••	ऽग	ई	ऽ	जमु	ऽना	•
नि	–	सां	रिं'	निसां	–नि	म्	ध्	सांनि	रिं'सां	–नि	ध्	–	मृध्	–म्	ध्
पा	ऽ	नी	ऽ•	री•	ऽ•	मैं	•	क्यों•	••	ऽग	ई	ऽ	जमु	ऽना	•
नि	–	सां	–रिं'	निसां	–	–	–	नि	–	सां	रिं'	सांरिं	सांसां नि	ध्	प
पा	ऽ	नी	ऽ•	री•	ऽ	ऽ	ऽ	दे	ऽ	ख	त	ही•	••ऽ•	म	न
पध्मृप	–म्	ग	म	ग	मृग	सांरिं	निसां	–	निरिं	–ग	ग	ध् म्	ध्	नि	सां
मो•••	ऽ•	ह	लि	यो	••	मैं•	तो•	ऽ	सां•	ऽव	ल	हा	•	थ	बि
सांरिं	सांरिं'	निसां	–नि	ध्नि	सांनि	म्	ध्								
का•	••	नी•	ऽ•	री•	••	मैं	•								

तानें

	x				५				०				१२			
१)		मृध्	निसां	–	धृप	मैं	ऽ	क्यों	ऽ	•	•	•	•	•	
२)		मृध्	निसां	रें‌सां	– नि	धृप	मैं	क्यों	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,
३)	मृध्	निसां	सांरें	सांरें	निसां	– नि	धृप	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,
४)	मृध्	निसां	धनि	सांरें	निसां	– नि	धृप	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,
५)	निसां	– नि	धृप	पध्	पध्	मृप	गम	ग –	क्यों	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)	मृग	रेसा	निसा	गम्	धृनि	सां –	– मैं	– –	क्यों	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	सांनि	धृप	मृग	रेसा	मृध्	निसां	– –	मैं	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	धृप	धम	प –	– म्	गम	ग –	मृग	रेसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,	,,
९)	पप्	पध्	मृप	मृप	गम	ग, म्	मृग	रेसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

अन्तरा

×				५				०				११			
								म्	ध्	म्	ध्	नि	नि	सां	सां
								मे	•	रे	•	म	न	ब	सी
सां	रिं'	सां	रिं'	नि	—	सांरिं'	निसां	—	म्प्	— म्	ध्	नि	नि	सां	सां
सां	•	व	री	सू	ऽ	र •	त •	ऽ	मे •	ऽ रे	•	म	न	ब	सी
—	सांरिं'	— सां	रिं'	नि	—	सांरिं'	निसां	ध्	रिं'	सां	रिं'	नि	सांनि	म्	ध्
ऽ	सां •	ऽ व	री	सू	ऽ	र •	त •	लो	•	ग	क	हे	• •	बी	•
धनि	रिं' सां	नि	ध्	प	ध्	म्	प	—	निनि	— सां	— रिं'	सांरिं'सांसां	— नि	ध्	प
प •	•	नी	•	री	•	स	खी	ऽ	मग	ऽ ट	ऽ भ	ई • • •	ऽ •	ब	वि
पध्म्प	— म	ग	म्	ग	रिं	सा	—	नि	रिं	ग	—	म	ध्	नि	सां
बा • • •	ऽ •	री	श्या	•	म	सो	ऽ	वा	•	गी	ऽ	प्री	•	त	न
सांरिं'	सांरिं'	निसां	— नि	ध्नि	सांनि	म्	ध्								
छा •	• •	नी •	ऽ •	पी •	• •	मैं	•								

×				५				०				१३			
१६) सांरें'	रें'सां	निसां	सांनि	सांरें'	रें'सां	निसां	सांनि	धनि	निध्	निसां	सांनि	सांरें'	रें'सां	निसां	सांनि
धनि	निध्	पध्	धप	मप	पम्	गम	ग –	रें'सा	ऽरें'	सांनि	धप	पध्	मप	गम	ग,रें'
सांनि	धप	पध्	मप	गम	ग, रें'	सांनि	धप	पध्	मप	गम	ग –	क्योंऽ	गईं	जमु	नाऽ
१७) धप	– ध्	मप	गम	ग –	– म्	मग	रेसा,	रें'सां	– रें'	सांनि	धप	धप	– ध्	मप	गम
ग –	– म्	मग	रेसा	निसा	गम्	धनि	सां –	क्योंऽ	गईं	जमु	नाऽ	जमु	नाऽ	जमु	नाऽ

अतिरिक्त तानें

×				५				०				१३			
१)	मध्	निसां	सांरें'	निसां	– नि	धप	मैं	क्यों	•	•	•	•	•	•	•
२) सांरें'	निसां	निसां	धनि	धनि	पध्	पध्	मप	मप	गम्	गम	मग	रेसा	जमु	– ना	ऽ
३) धनि	धसां	सांरें'	सांरें'	निसां	– नि	धप	मैं	क्यों	•	•	•	•	•	•	•

	X				२				०				३			
१०)	साँरें'	साँरें'	निसाँ	निसाँ	धनि	धनि	पध	मप	"	"	"	"	"	"	"	"
११)	साँरें'	साँ,नि	साँनि	धनि	ध,प	धप,	मप	म,ग	मग	गम	मग	रेसा	क्यों–	गई	जमु	ना–
१२)	धम	प,ध	मप	निध	ध,नि	ध	धम	प,नि	धध,	साँनि	नि,रें'	साँसाँ,	रें'नि	नि,नि	धप,	पम
	प,प	मम,	पम	ग म	ग –	– म	मग	रेसा	क्यों	ऽ	क्यों	ऽ	क्यों-	गई,	जमु	ना–
१३)	साँरें'	साँनि,	निसाँ	निरें'	साँनि,	धनि	धसाँ	निरें'	साँनि	मध	मनि	धसाँ	निरें'	साँनि	साँरें'	साँनि
	धप	पध	मप	गम	ग –	– म	मग	रेसा	क्योंऽ	गई	जमु	नाऽ	जमु	नाऽ	जमु	नाऽ
१४)	साँरें'	साँ,साँ	रें'साँ,	साँरें'	साँरें'	निसाँ	निरें'	निसाँ	धनि	ध,ध	निध,	नि	धसाँ	निरें'	साँरें'	निसाँ
	मध	म,म	धम	मनि	धसाँ	निरें'	साँरें'	निसाँ	साँरें'	साँनि	धप	पध	मप	गम	ग –	जमु
	– ना	– –	पा ०	– –	नी –	– –	जमु	– ना	– –	पा –	– –	नी –	– –	जमु	– ना	– –
१५)	साँरें'	साँरें'	निसाँ	निसाँ	निरें'	साँरें'	निसाँ	निसाँ,	धनि	धनि	निसाँ	निसाँ	साँरें'	साँरें'	निसाँ	निसाँ
	धनि	धनि	मध	मध	धनि	धनि	निसाँ	निसाँ	साँरें'	साँरें'	निसाँ	निसाँ	धनि	धनि	पध	पध
	मप	मप	गम	ग,म	पध	मप	गम	ग,ध	पध	मप	गम	ग –	क्योंऽ	गई	जमु	नाऽ

राग परज

धमार

गीत

स्थायी—लाल गुलाल जिन डारो, बरजोरी न करो रघुनन्दन
छोरो जी हाथ हमारो ॥

अन्तरा—झकझोरो न मुरक जाय बैंया,
छूट जाय कचनारो, राम सखे थारे पैंया परत
मेरो घूँघट पट न उघारो ॥

स्थायी

×			•		६		•			११		०	
सां	-	नि	ध्	प	-	प	ध	प-म	ग	म	ग	-	-
ला	ऽ	ल	गु	ला	ऽ	ल	जि	नऽ०	डा	०	रो	ऽ	ऽ
सा	नि़	सा	ग	-	म	ध्	नि	सां	रें	नि	सां	नि	ध्
ब	र	जो	री	ऽ	न	क	रो	र	घु	न	०	द	न
ध्	रें	सां	रें	नि	सां	नि	म	ध्	नि	ध्	सां	म	ध्
छो	०	रो	जी	हा	०	थ	ह	मा	०	रो	०	०	०

अन्तरा

म	ग	म	प	-	प	म	ध्	नि	नि	-नि	(नि) ध्	सां	नि
झ	क	झो	रो	ऽ	न	मु	र	क	जा	ऽय	बैं	०	या

×				५				०				१३			
४) सांरिं'	निसा	धनि	पध्	मप	गम्	मप	रिसा	क्यों	गई	क्यों	गई	क्यों	गई	जमु	नाऽ
५) सांनि	नि,रिं'	सांसां,	निध्	प् , सां	निनि,	पम्	म,ध्	पप,	निध्	ध्,	सांनि	नि,रिं'	सांसां	सांनि	धप
पधू	मप	गम	ग –	मम्	मग	रिसा	मैं	क्यों	•	•	•	•	•	•	•
६) धप	– ध्	पधू	मप	गम	ग –	रिं'सां	– रिं'	सांरिं'	निसां,	धप	– धू	पधू	मप	गम	ग –
मग	रिसा	निसा	गम	धनि	सां –	निसा	गम	धनि	सां –	निसा	गम	धनि	स –	जमु	नाऽ
७) मप	ध,म्	पध्	पध	मग	गम	ग –	निसां	रिं',नि	सांरिं'	सांरिं'	सांनि	धप	पध	मप	गम
ग –	– म्	मग	रिस	क्यों	गई	जमु	ना •	क्यों	गई	जमु	ना •	क्यों	गई	जमु	ना •
८) पध	मप	गम	ग –	– म्	मग	रिसा,	सांरिं'	निसां	धनि	पध्	मप	गम	ग –	– म	मग
रिसा	मैं	क्यों	गई	ऽऽ	ऽऽ	मैं	क्यों	गई	ऽऽ	ऽऽ	मैं	क्यों	गई	जमु	नाऽ

राग ललित

आरोह अवरोह—निरि्गम् धनिर्सां निधम् मगरि्सा । द्रष्टव्य—विशेष विवरण

जाति—षाडव षाडव।

ग्रह—मन्द्र निषाद और मध्य तीव्रतर मध्यम।

अंश— शुद्ध मध्यम , अनिवार्य सहवर्ती तीव्र मध्यम। उपांश पूर्वाङ्ग म गा बार, उत्तराङ्ग में धैवत ।

न्यास—शुद्ध मध्यम।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य अंग—नि्रि्गम मSम ।

प्रकृति—गंभीर।

समय—शेष रात्रि।

विशेष विवरण

ललित एक प्रसिद्ध और मधुर राग है। इसमें ऋषभ धैवत कोमल और स्थूल रूप से दो मध्यम का प्रयोग
होता है, ऐसा माना जाता है। पञ्चम का समूचा त्याग होने से, इस राग के प्रयोग के समय तानपूरे पर शुद्ध मध्यम ही
मिला रहेगा। इसलिए शुद्ध मध्यम से षड्‌श्रुति अन्तर से सवाद करने वाला कोमल 'ध' इस राग में प्रयुक्त होता है।
तद्वत् म म म' करते समय शुद्ध म' से एक श्रुति के अन्तर पर स्थित तीव्र 'म' का प्रयोग हो जाता है। और 'म् ग
रि् सा' अथवा 'म् ध् र्मा' ऐसी अन्य क्रिया करते समय शुद्ध मध्यम से दो श्रुत्यन्तर पर स्थित तीव्रतर मध्यम सहज रूप से
लगता है-स्वरों के परस्पर संवाद सम्बन्ध के आधार पर ऊपर लिखे स्वर अनायास स्वाभाविक-रीति से लग जाया करते हैं।

भारत भर में सभी हिन्दू मुस्लिम गायक वादक जो ख्याल अङ्ग से गाते बजाते हैं, वे ललित में कोमल धैवत
का प्रयोग करते हैं। हमारी परम्परा में हमें ऐसे 'ध्रुपद' और 'धमार' की भी शिक्षा मिली है जिनमें धैवत कोमल ही रखा
गया है, फिर भी भारत में कहीं कहीं कुछ 'ध्रुपद' गायक शुद्ध धैवत ही प्रयोग में लाते हैं। पञ्जाब की ओर प्रचलित
'ललित पंचम' नाम का जो राग प्रचार में है उसमें शुद्ध धैवत का प्रयोग होता है।

×		०			५		०			११		०	
धृ	सां	नि	प–	–मृ	गम	ग	मृ	धृ	नि	–	धृ	सां	नि
छू	•	ट	बा ऽ	ऽ •	• •	य	क	च	वा	ऽ	रो	•	•
नि	–	रें	गं	गं	रें-गं	मं	गं	रें	सां	रें सां	–रें	नि सां	नि धृ
रा	ऽ	म	स	खे	या ऽ •	री	पैं	•	या	पर	• त	ने •	रो •
धृ	रें	सां	रें	नि	सां	नि	मृ	धृ	नि	धृ	धृ सां-नि	मृ	धृ
घूं	•	घ	ट	प	ट	न	उ	घा	•	रो	• ऽ	•	•

इस राग का दर्शन 'नि़ रि॒ ग म म॑ ऽ म' इतने ही स्वरों में पूर्ण रूप से हो जाता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए उत्तरांग के किसी स्वर की अपेक्षा नहीं है। ऊपर लिखे अक्षरों का उच्चार होते ही स्पष्ट राग प्रत्यक्ष हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि ललित पूर्वांग प्रधान राग है उत्तरांग प्रधान नहीं। जो राग जिस अंग में स्थापित होता है, वही उसका प्रधान अंग है, चाहे वह पूर्व हो या उत्तर। पण्डित भातखण्डे ने इस राग को उत्तरांग प्रधान माना है, यद्यपि यह निस्सन्देह पूर्वांग प्रधान है, जैसा कि ऊपर कह आये हैं। हाँ, यह शेष रात्रि के समय गाया जाता है, इसलिए उन्हें अपने ही बनाये हुए स्थूल नियम से बाध्य होकर इसे उत्तरांग प्रधान मानना पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं है। वास्तव में तोड़ी, देवगिरि, देसी, भैरव आदि कई ऐसे राग हैं, जो पूर्वांग प्रधान ही हैं और प्रातः काल में गाये जाते हैं।

अपना कोई ढाँचा बनाकर, उसी में सब रागों को ढालने का यत्न करने के बजाय, राग के निजी रूप, प्रकृति, गति, अभिव्यक्ति आदि का विचार करके रागों की रचना में निहित नियमों को खोजना चाहिए, और उन्हें शास्त्रीय रूप देना चाहिये। तभी लक्ष्य और लक्षण का समन्वय हो सकता है। शास्त्र पहले नहीं, कला पहले है, प्रचार पहले है।

पण्डित भातखण्डे ने इस को मारवा थाट में रखा है। ध्यान रहे, जिस मारवा थाट में शुद्ध मध्यम है ही नहीं उससे ललित को सम्भूत बताकर भी इसका वादी स्वर उन्होंने शुद्ध मध्यम ही कहा है। पण्डित भातखण्डे के विधान की असंगति आश्चर्य में डालने वाली है, जिसकी ओर हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं। जो मूल में ही नहीं, वह अंकुर में या फल फूल में कहाँ से आया? इससे यह स्पष्ट है कि उनकी थाट व्यवस्था भी असंगत, असमञ्जस्य अवैज्ञानिक और अपूर्ण है।

'म म॑ ऽ म' या 'ध॒ म॑ ऽ म' यों दो मध्यमों का सह प्रयोग इस राग का प्राण लिया है। इस राग का ग्रह स्वर निषाद और तीव्र मध्यम है शुद्ध मध्यम इसका अंश स्वर है और तीव्र म' उसका अनिवार्य सहवर्ती है। न्यास-स्वर भी शुद्ध मध्यम ही है और षड्ज विन्यास है। इसकी प्रकृति शान्त गम्भीर है। शुद्ध मध्यम का अंशत्व, दीर्घोच्चार और विपुल प्रयोग इस राग में सर्वथा प्रौढ़ गम्भीर भाव को अभिव्यक्त करने वाले तत्व हैं।

इसका आरोहावरोह 'नि़ रि॒ ग म॑ ध॒ नि सां नि ध॒ म॑-म ग रि॒ सा' होने पर इस राग के चलन में, उसकी आलापचारी में 'ध॒ नि सां' कभी नहीं आते हैं, अपितु म॑ ध सां' ही आना चाहिए। मन्द्र मध्य की आलापचारी में हमेशा 'म॑ ध॒ सां' ही होगा। और वहाँ पर 'म' तीव्रतर ही रहेगा। यही लक्ष्य है।

– (१७) निरिगमधु निरि'ग ऽऽ गरि'म, ममगरि'ग ऽ ममु'म ऽ मु'मु'मगम ऽ गरि' मु'मरि'ऽसा, धऽ रि'सानिध ऽ सानिधमु ऽ निधमुम ऽ धमुमग ऽ गममुम ऽ ममधमु ऽ मधुनिधु ऽ धनिरि'नधऽमुऽम, ममुमगमु ऽ ममगरि

ऽ गरिमुगरिऽसा ।

राग ललित

विलम्बित ख्याल—एकताल

गीत

स्थायी—रैन का सपना,
कासे कहूँ मोरी आली।

अन्तरा—जोवत सोवत आँख खुली जब,
कोउ न पायो अपना ॥

स्थायी

		१		११	
				– ग म् ग	रि॒सासानि॒ रि॒ ग म
				ऽ रै ० न	का ० ० ० ० स प

×		०		५	
ध॒ म् – – –	म – – – म्	ग ग ममग – – – रि॒	रि॒ ग – मग रि॒	सा – – –	रि॒ नि॒ रि ग म
ना ऽ ऽ ऽ	० ऽ ऽ ऽ ऽ ०	० ०० ऽऽऽ ०	० ऽ ०० ०	० ऽ ऽ ऽ	पा ० से क

०		९		११	
ध॒ म् ∿∿	म – – म म्	मग नि ध॒ धम् –	ममग – म ग	ध॒ – – नि ध॒ धम् – ग	रि॒साऽनि॒ – रि॒गम
हूँ ∿∿	० ऽ ऽ मो ०	री ० ० ऽ आ ऽ०० ऽ	ली ००० ऽ ० ०	ऽऽ ० रै ऽ ० ऽ न	का ००० ऽ ० सप

राग ललित

त्रिताल

गीत

स्थायी—पियु पियु करत पपीहरा,
उड़ री कोयलिया कवन देस मोरे पिया को मिलन कब होवे।

अन्तरा—झिंगर झिन.र-दादुर बोले, मुरवा बोले बन बन के।
आवन सुनी प्रीतन मन रंग की, मगन भए सब घर के बिचरा।

स्थाई

				२				०				१२				
									ग	रि॒	ग	म॑	ग	रि	रि॒नि॒	रि॒
									पि		पि	यु	क	र	त•	प
म	–	–	म॑	म॑	–	म	–	म॑	ध॒	म॑	नि ध॒	सां	सां	सां	–
पी	ऽ	ऽ	इ	रा	ऽ	•	ऽ	उ	ड़	रि	को	य	लि	या	ऽ
नि रिं	नि	ध॒	नि म	ध	म॑	म	ग	म॑	ध॒	म॑	नि ध॒	सां	सां	ध॒ नि	रिं
क	व	न	दे	•	स	मो	रे	पि	या	को	मि	ल	न	•	•
नि	ध॒	म॑	म॑ध॒	म॑	–	ग म	ग								
क	ब	•	••	हो	ऽ	•	वे								

तानें

×				५				०				१३			
१)					रि_ग	मग	रि_सा	पि	यु	मि	यु	र	ट	त	प
२)				निरि_	गम	मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)			निरि_	गम	म।	मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)			निरि_	गम	–म	मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)		निरि_	गम	धूधू_	मूम	मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६) निरि_	गरि_	रि_ग	मग	गम	मूम	ग मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७) निरि_	गग	रि_ग	मम	गम	मूम	ग मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८) गरि	निरि_	म।	रि_ग	मूम	गम	ग म।	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९) निरि_	रि_ग	गम	मध	धूम_	मूम	ग मग	रि_सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

अन्तरा

×				५				०				११			
							-	म्	ध्	म्	ध्	सांसां	-	-	सां
								झि	ग	र	झि	गा॰	ऽ	ऽ	र
सां	सांनि	सां	रिं	रिंनिनि	-		-	रिं	नि	ध्	-नि	धन	धनि	म्	ध्
दा	॰॰	दु	र	बो॰॰	ऽ	ले	ऽ	मु	र	वा	ऽ॰	बो	॰	के	॰
म्	म्ध्	रिं	नि	म्	म्	म	-	-	म्म	म	म	म	-	म	-
ब	न॰	ब	न॰	के	ऽ	॰	ऽ	ऽ	साव	न	सु	नी	ऽ	मी	ऽ
											नि				
ग	रिं	ग	म्	ग	रिं	सा	-	-	म्ध्	म्	ध्	सां	-	सां	सांनि
ह	म	म	न	रं	ग	की	ऽ	ऽ	मग	न	भ	ये	ऽ	स	ह॰
रिं	नि	ध्	म्ध्	नि	ध्	म्	म								
घ	र	के	॰ऽ॰	झि	य	रा	॰								

राग ललित

धमार

गीत

स्थायी—लाल हो कैसे जाउं आली निकसी ननद की चोरी।

अन्तरा—वा दिन को डर मेरे हिरदिया (हृदय) में ता दि बाँह मरोरी ॥

स्थायी

×			०		२		०			११	०		
										–़नि	–रि़	ग	म
										ऽला	ऽल	हो	•
म	—	—	म	—	म	म	म	म़म	म़ग	–म	ध़	सां	—
कै	ऽ	ऽ	से	ऽ	जा	उँ	आ	ली •	• •	ऽनि	क	सी	ऽ
नि	रिं़	नि	म़	ध़	म़	गम	ग	म	ग	–नि़	–रि़	ग	म
न	न	द	की	•	—	• •	चो	—	री	ऽला	ऽल	हो	•

अन्तरा

म़	ध़	—	सां	—	सां	—	सां	—	—	सां	—	सां	—
वा	•	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ	को	ऽ	ऽ	ड	ऽ	र	ऽ

			म					ध्					नि		
ध्म्	धम्	म्ध्	ध्म्,	ध्नि	ध्, ध्	निध,	ध्नि	निध्,	निरि'	नि, नि	रि नि,	निरि'	रि'नि	ध्नि	ध्,ध्

		ध्					म्								
निध्,	धनि	निध्,	म्ध्	म्, म्	धम्	म्ध्	ध्म्,	मम्	म, म	मम,	मम्	मम,	गम	ग, ग	म ग

	ग					रि		नि							
गम	मग,	रिग	रि, रि	गरि	रिग	गरि	निरि	रिसा	गरि	– ग	म र	ग	रि	नि	रि
									निमु	ऽ वि	र ऽ	क	र	त	व

परिशिष्ट

X			•		१		•			११		•	
नि	–	–	रि'	–	गं	रि'	स	–	–	नि	रि'	नि	ध्
मैं	S	S	रे	S	हि	दि	या	S	S	मैं	•	•	•
म	ध	म	ग	–	म	–	सां	–	–	छां	–		–
•	•	•	•	S	•	S	वा	S	S	दि	S	न	S
नि	–	रि'	नि	ध्	म्	ध्	ग	म	ग	–नि्	–रि	ग	म
माँ	S	•	ह	म	दो	•		•	पी	ध	Sल	हो	•